[परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री नानेश के २५वें आचार्य पद-वर्ष के उपलक्ष्य मे]

अष्टमाङ्ग

अन्तगडदसाओ

(अन्तकृद्दशांग सूत्र)

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, जावपूर्ति, परिभाषा, जिज्ञासा एव समाधान परिशिष्टादि युक्त]

*

व्याख्याता

आचार्य श्री नानेश

*

सपादक-अनुवादक

मुनि ज्ञान

*

प्रकाशक

श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

[परम श्रद्धेय आचाय प्रवर श्री नानेश के२५वें आचाय पद के उपलक्ष में]

व्याख्याता
आचाय श्री नानेश

सपादक-अनुवादक
मुनि ज्ञान

ग्रथ सौजन्य
श्रीमती उमरावबाई भण्डारी
मातुश्री प्यारेलाल जी भण्डारी

प्रकाशन तिथि
वीर निर्वाण सवत् २५११
विक्रम सवत् २०४२, अक्टूबर १९८५

प्रकाशक
श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

मुद्रक
अग्रवाल प्रिण्टस, उदयपुर

मूल्य

Published at the Holy Occasion
of
25th Acharya Pada-year of Acharya Shri Nanesh

ANTAGAD-DASĀO
(ANTAKRITDASANGA-SUTRA)

(Origional Text Hindi Version Variant Readings Defination of some difficult words question & Answers etc)

Annotator
ACHARYA SHRI NANESH

Editor & Translator
MUNI GYAN

Publishers
Shri Akhil Bharatvarsiya Sadhumargi Jain Sangh Bikaner

(Published at the Holy Occasion of 25th Acharya Pada-year of AcharyaShri Nanesh)

☐ Annotator
Acharya Shri Nanesh

☐ Editor & Translator
Muni Gyan

☐ Financial Assistance
Mrs Umrao Bai Bhandari
M/o Shri Pyare Lal Bhandari

☐ Date of Publication
Vir Nirvan Samvat 2511
Vikram Samvat 2042, Oct , 1985

☐ Publishers
Shri Akhil Bharatvarsiya Sadhumargi Jain Sangh Bikaner

☐ Printer
Agrawal Printers, Udaipur

☐ Price

अर्थ सहयोगी सुश्राविका उदारमना
श्रीमती उमरावबाई भण्डारी

प्रस्तुत ग्रन्तकृद्दशाग सूत्र की छपाई मे अर्थ सहयोगी बम्बई के निकटस्थ, अलीबागवासी, मारवाड के सोजत नगर के निवासी, स्वर्गीय सुश्रावक, धर्मनिष्ठ श्री प्रेमराज जी भण्डारी की धर्मपत्नी, सुश्राविका भद्रिक स्वभाविका, उदारहृदया श्रीमती उमराव बाईजी भण्डारी हैं। उमराव बाईजी भण्डारी का जीवन अत्यन्त सादगीयुक्त, सरल एव धर्मनिष्ठ है। आपका ही नहीं आपका सारा परिवार धर्मनिष्ठ है। आप वर्षों से जहा पर भी आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म सा का चातुर्मास होता है, वहा अपना स्वतन्त्र चौका लगाकर, दर्शन, व्याख्यान श्रवण आदि का लगभग चारो मास लाभ लेती हैं। आपके दो सुपुत्र हैं—श्री प्यारे लालजी भण्डारी एव श्री रतनलाल जी भण्डारी, साथ ही पोते-पोतियो से भरा-पूरा परिवार है।

श्री प्यारे लालजी भण्डारी सघ के उत्साही एव सक्रिय कार्यकर्ता हैं। वर्षों से आप आचार्य प्रवर एव सत-सतियांजी के दर्शनार्थ तथा सघ के कार्यों मे सक्रिय भाग ले रहे हैं। बोरीवली (बम्बई) चातुर्मास मे भी वहा रहकर सघ के कार्यों मे तन-मन धन से महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य के अन्दर आपकी विशेष रूचि रही है। आपका मानना है कि महापुरुषो के सत्-साहित्य के बल पर ही जन-जन के मानस को परिवर्तित किया जा सकता है। आज भगवान महावीर नही है लेकिन उनके आगमो की अक्षुण्णधारा ने धर्म एव समाज को टिकाए रखा है। अत समाज मे सत्साहित्य एव आगमो की प्रामाणिक एव सरल व्याख्याएँ अभिप्रेत हैं। इन्ही विचारो से प्रेरित होकर अन्तकृद्दशागसूत्र के पत्राकार एव पुस्तकाकार दोनो रूप मे प्रकाशित करने के लिए आपकी मातुश्री ने इसकी छपाई के लिए अर्थ सहयोग दिया है जो कि निश्चय ही प्रशसनीय एव अन्यो के लिए अनुकरणीय है। सघ आपका आभारी है। आपसे समय २ पर यही अपेक्षा है कि सत्साहित्य जसे पवित्र महायज्ञ मे अपने अर्थ का सदुपयोग कर आदर्श उपस्थित करते रहे।

श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

प्रकाशकीय

छद्मस्था (अपूर्व व्यक्तियां) के उपदेश की अपेक्षा वीतराग देव की देशना सर्वथा सत्य होती है। छद्मस्थो के द्वारा अन्यथा कथन लेखन भी हो सकता है, किन्तु सर्वज्ञो के कथन मे एकाश रूप से भी असत्य का अश नही आ पाता। छद्मस्थो का कथन एव लेखन भी यदि वीतराग देवों के सिद्धान्तो के अनुकूल है तो ही उनका कथन विश्वसनीय माना जाता है। यद्यपि वीतराग देव, वर्तमान मे इस भरतखण्ड मे विद्यमान नही है, तथापि जो वीतराग हो चुके है, उनकी देशना आज भी विद्यमान है। जितनी मात्रा मे देशना दी गई है, उतनी अवस्था मे तो विद्यमान नही है, फिर भी आत्मिक साधना एव ससिद्धि के लिये पर्याप्त रूप मे आज भी विद्यमान है।

वर्तमान मे प्रवहमान शासन के आद्य-प्रवर्तक, चरम तीर्थंकर महाप्रभु महावीर स्वामी रहे हैं। जिन्होंने लगभग 12½ वर्ष की अनवरत साधना के बाद घनघातिक कर्मो का क्षय कर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र और अनन्तशक्ति रूप अनन्त चतुष्टय को आत्मा मे अभिव्यक्त किया था। अभिव्यक्ति के बाद ही महाप्रभु 'तिन्नाण' के साथ 'तारयाण' के पथ पर बढे। देशनाधारा प्रवाहित हुई। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि महाप्रभु का प्रथम उपदेश त्याग तप की दृष्टि से खाली चला गया। क्योंकि उपस्थित सभासदो में से एक भी सभासद ऐसा नही था, जो नवकारसी जैसा छोटा सा दिखने वाला तप भी अगीकार कर सके। इसका कारण स्पष्ट है कि उस सभा मे एक भी मानव नही था देवता कितने ही क्या न उपस्थित हो, वे सुनकर अपने जीवन मे तपत्याग को नही अपना सकते। मानव ही एक ऐसा विशिष्ट प्राणी है, जो सुनकर समझकर एव उसे जीवन म उतारकर, अपने जीवन को बदल सकता है। ऐसा हुआ भी और हो भी रहा है। जब महाप्रभु ने अपनी देशना दी थी उस समय श्रोताओ मे मानव भी थे। इसीलिए एक ही दिन मे ४४०० मानवो ने एक साथ ससार को छोडकर सन्यासी जीवन अगीकार कर लिया था। आगार से हट कर अनगार बन गये थे। इस प्रमाण से मानव जीवन की श्रेष्ठता प्रमाणित हो जाती है।

मानव जीवन का वस्तुत लक्ष्य भौतिकता मे हटकर आध्यात्मिक जीवन मे अपने आपको रमाकर चरम लक्ष्य, शाश्वत शाति को पाना है। उस शाश्वत शाति का मूल उद्गमस्त्रोत, बाहरी जीवन नही अपितु भीतरी आत्मिक शक्ति ही है। आत्मिक शक्ति के बल पर ही परम लक्ष्य, शाश्वत शाति को प्राप्त किया जा सकता है। महाप्रभु महावीर ने आत्मशक्ति को जगाने के लिए विशेष जोर दिया है। जैसा कि महाप्रभु का उद्घोष रहा है—"अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ" आत्मा से ही युद्ध करो, बाहरी युद्ध से क्या प्रयोजन? महाप्रभु महावीर ही नही जितने भी श्रेष्ठ पुरुष इस जगतीतल पर हुए है उन सबका लक्ष्य

भीतरी रहा है किन्तु वतमान युग मे अधिकाश मानवो का लक्ष्य बाहरी होता चला जा रहा है। आज के व्यक्ति भौतिक साधनो से ही शाति पाने के लिये विशेष प्रयत्नशील हैं। ऐसे युग मे आध्यात्मिक पक्ष को विशेषत उभारने के लिये वीतरागवाणी को यथावस्थित रूप मे प्रस्तुत कर अधिकाधिक प्रचार-प्रसार अपेक्षित है ताकि जन-जन का जागरण हो सके। अभी तक भगवान महावीर का निर्वाण हुए 2½ हजार वष से कुछ अधिक ही व्यतीत हुए हैं। अभी तो लगभग 18½ हजार वष तक महाप्रभु का शासन निर्बाध रूप से चलने वाला है।

वतमान मे महाप्रभु की पाट परपरा के 81वे पाट पर समता विभूति, विद्वद् शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धमपाल प्रतिबोधक आचाय श्री नानश के सान्निध्य मे धम सघ सवतोमुखी निरन्तर विकास कर रहा है। आचाय प्रवर ने जब से शासन की बागडोर सभाली है, तब से शासन मे निरन्तर विकास हो रहा है। लगभग २३ वर्ष के अल्पकाल मे आपश्री के सान्निध्य मे लगभग २१८ दीक्षाएँ सपन्न हो चुकी हैं। एक साथ ५, ८, १२, १५ आदि दीक्षाएँ तो कई बार हुई हैं, किन्तु अभी सन् १९८४ चार माच को एक साथ २५ भव्य दीक्षाए सपन्न हुई थी। स्थानकवासी समाज मे लगभग ४०० वर्ष पूव ऐसा बतलाया जाता है कि लोकाशाह् के समय एक साथ ४५ दीक्षाएँ हुई थी, उसके बाद पहली बार आचार्य प्रवर के सानिध्य मे एक साथ २५ दीक्षाएँ सपन्न हुई है। केवल दीक्षा दे देना, ले लेना और बात है, किन्तु दीक्षित साधु-साध्वियो को सयमीय साधना क साथ सम्यक्ज्ञान की दिशा को प्रशस्त करते हुए उनका सफल सचालन करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु आचाय प्रवर मुमुक्षुओ को दीक्षित कर सयमीय साधना के अक्षुण अनुपालन के साथ उनका सफल सचालन भी कर रहे ह। इसीलिये अल्प समय मे ही सघ के कई श्रमण-श्रमणी वग उच्चकोटि के विद्वान् आगमज्ञ-गवेषक-चिन्तक हो गए हैं, तो कई दशन शास्त्र के ज्ञाता हैं तो कई सस्कृत, प्राकृत व्याकरण-साहित्य आदि विषयो पर विशेष अधिकार रखते हैं।

आचाय प्रवर ने एक ही क्षेत्र में नहीं अपितु अनेक क्षेत्रो में आश्चर्यजनक प्रगति की है। दलित और शोषित वर्ग का उत्थान करने के लिये धमपाल अभियान चलाया है। उन सस्कारित लोगो की सख्या वतमान म एक लाख के आसपास है। विश्व म विषमता का निवारण करने के लिये समता-दर्शन एव मानवो के मानसिक तनाव को समाप्त कर आत्मशाति पाने के लिये समीक्षण ध्यान का अभिनव चिन्तन प्रस्तुत किया है।

ऐसी अनेकानेक विशेषताओ से युक्त प्रभु महावीर के अधिकृत अधिकारी आचाय प्रवर ही महाप्रभु के द्वारा प्रवेचित आगमो पर आगम सम्मत, हृदयस्पर्शी विवेचना दे सकते हैं। ऐस ही महापुरुषो की विवेचनाएँ प्रमाणित होती है।

वर्षा पूव जय सघ के प्रमुख अधिकारियो ने देखा कि समता-विभूति आचाय प्रवर अपने शिष्य समुदाय को आगमो का अध्ययन करवा रहे हैं। आगम सम्मत विवेचन जिनमें कई व्याख्याए, जो अब तक परिलक्षित नही हुई, वैसी भी लिखवा रहे ह, जिसे पढकर सुनकर सघ के चिन्तनशील महानुभावो को सुखद हर्षानुभूति हुई और सघ के लोगो न गुरुदेव से निवेदन किया

कि आप श्री की प्रखर प्रतिभा का लाभ केवल सत-सतियो को ही मिले, श्रावक-श्राविका उससे वचित रहे, यह कैसे उचित होगा ?

तब गुरुदेव ने फरमाया-देखिए ! मैं तो अपनी सीमा में सयमीय मर्यादाओ को सुरक्षित रखते हुए सत सतियो को सम्मुख रख कर प्रयत्नशील हूँ। श्रावक श्राविकाओ के लिये इसे कैसे उपयोगी बनाया जाय ? यह मेरी सीमा का काय नहो है। ज्यो ज्यो आचाय प्रवर शास्त्रो पर विवेचना लिखवाते और सत मुनिराजा द्वारा सयम की मर्यादाओ को सुरक्षित रखते हुए उनका सपादन, अनुवाद का काय चलता रहा। अब तक आचायप्रवर, आचाराग सूत्र, भगवती सूत्र अतगडसूत्र, कल्पसूत्र आदि शास्त्रो पर विवचना लिखवा चुके हैं। जिनका सत मुनिराजो ने सकलन सपादन एव अनुवाद किया है। हम आचाय प्रवर की इस अनन्त उपकृति एव सत मुनिराजो के अथक परिश्रम को कभी विस्मृत नही कर सकते। सघ उनका अत्यन्त आभारी है।

शास्त्रो की इसी श्रृखला मे समता विभूति आचाय प्रवर श्री नानेश ने प्रस्तुत अतकृद्दशाग सूत्र पर प्रश्नात्तर शैली मे व्याख्याएँ प्रदान की है जिसम सभी भाई-बहिना को आगमिक सिद्धान्तो का सहज-सुगम बोध हो सक। प्रश्नात्तर की इस शैली मे आचाय प्रवर न कई ऐसे जटिल प्रश्नो का भी सहज, सरल प्रामाणिक एव सयुक्तिक तरीके म आगमिक धरातल पर समाधान प्रस्तुत किया है, जिससे कि विपय का हृदयगम किया जा सके।

प्रस्तुत सूत्र के मूलपाठ का अनुवाद एव सपूर्ण शास्त्र का सभी प्रकार से सपादन आचाय प्रवर के अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्वय श्री ज्ञान मुनि जी म सा ने किया है। आप ही ने भगवतीसूत्र जैसे विशाल काय आगम का सपादन एव अनुवाद भी इसी ढग से किया है ताकि शब्दो के स्पष्ट अथ के साथ भावा का अवबाध हो सके। विद्वद्वय श्री ज्ञानमुनि जी को आचाय प्रवर ने सतो मे सबसे अल्पवय मे अर्थात् चौदह वर्ष को उम्र में दोक्षित किया था। यह आचाय प्रवर की दीघ दृष्टि एव सतत सफल सचालन का ही परिणाम है कि किस प्रकार साधु-साध्वी आगे बढ रहे है। विद्वद्वय श्री ज्ञानमुनी जी ने १४ वप की अवस्था मे दीक्षित होकर छ वप मे ही बीकानेर बोर्ड की परिचय मे लेकर अन्तिम रत्नाकर तक की सभी परिक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की थी। छ वप मे सभी परीक्षाओ के १६ वप का उम्र मे पूर्ण कर देने वाले विद्यार्थी, धार्मिक परीक्षा बोड मे नहीवत् हैं। यह सब आचाय प्रवर के सफल अनुशासन एव शिष्यो के प्रति सम्यक्ज्ञान दशन-चारित्र की अभिवृद्धि की सजगता का ही परिणाम है।

शात क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचाय श्री गणेशीलाल जी म सा की स्मृति मे श्री अ भा सा जन सघ के श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार मे अनेकानेक प्रकाशित एव हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह हुआ है। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्था का सचयन कर उन्हे सघ की साहित्य समिति सवजनहिताथ प्रकाशन करती रही है। इसी सकल्प की कियान्विति मे इस शासन कृति को भी भण्डार से प्राप्त कर इसकी पाण्डुलिपि के साथ मूल पाठ निकालने, परिभाषाओ तथा जावपूर्ति के पाठो के सकलन मे आगम अहिंसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर के प्रभारी

श्री मानमल जी कुदाल एव उनके सहायक श्री सुभाष कोठारी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । साथ ही प्रकाशन भी उदयपुर मे ही होने से शास्त्र के प्रुफ सशोधन एव प्रकाशन सबधी कार्यों को सुन्दर ढग से सपन्न कराने मे सस्थान के मत्री श्री फतहलाल जी हिंगर तथा सस्थान के प्रभारी श्री मानमल जी कुदाल विशेष रुप से कार्यकारी रहे है अत सघ उनका आभारी है ।

प्रस्तुत सूत्र का पर्यु षण मे आठ दिनो तक वाचन होने से, सुविधा की दृष्टि से पुस्तकाकार एव पत्राकार दोनो प्रकार से प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि स्वाध्यायी आदि सभी के लिये उपयोगी बन सके ।

प्रस्तुत शास्त्र को प्रकाशित करते हुए सघ अपने आप मे गौरव का अनुभव कर रहा है । क्योकि साधुमार्गी सघ की ओर से वैसे साहित्य तो अनेक प्रकार का प्रकाशित हुआ है पर शास्त्र प्रकाशित करने का यह प्रथम ही प्रयास रहा है । शास्त्र प्रकाशन की इस शृ खला मे भगवती सूत्र आदि का प्रकाशन कार्य भी चल रहा है । आचार्य देव के आचार्य पद के दो वर्ष बाद आने वाले २५ वें वर्ष के उपलक्ष्य मे अभी से आगम प्रकाशन का कार्य गतिशील है ।

प्रस्तुत शास्त्र प्रकाशन मे होने वाले व्यय का सुश्राविका श्रीमती उमराव बाई भण्डारी, मातुश्री प्यार लाल जी भण्डारी, अलीनाग निवासी, मारवाड मे सोजत नगर ने वहन किया है । जिनका परिचय अलग से प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सघ साहित्य समिति आपकी इस उदारता का आभारी है । अन्त मे जिज्ञासु लोग प्रस्तुत सूत्र से जितना अधिक लाभ उठाएँगे, उतनी ही हमारे प्रकाशन की सफलता होगी ।

गुमान मल चोरडिया
सयोजक
साहित्य समिति
श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

परम श्रद्धेय चारित्र चूड़ामणी
बाल ब्रह्मचारी
जिन शासन प्रद्योतक
धर्मपाल प्रतिबोधक
समता विभूति
विद्वद् शिरोमणी
समीक्षण ध्यानयोगी
आचार्य प्रवर

श्री नानालाल जी म. सा.

के 25वे आचार्य पद वर्ष
के उपलक्ष्य मे
प्रकाशित

अन्तकृद्दशाग सूत्र : एक परिचय

दुविहे धम्मे पण्णत्ते–तजहा–आगार धम्मे चेव अनगार धम्मे चेव ।

धर्म दो प्रकार का प्रज्ञापित किया गया है । यथा-आगार धर्म और अनगार धम ।

आगार धम मे सावद्य क्रियाओ का देशत त्याग होता है । परन्तु अनगार धम मे सभी प्रकार की सावद्य क्रियाओ का सवथा त्याग होता है । सागार धम श्रावको के लिये होता है, अनगार धम साधुओ के लिय हाता है ।

ग्यारह अगा मे से सातवें अग उपासकदशाग सूत्र मे आगार धम की आनन्दादि दस प्रमुख श्रावका के जीवन वृतान्त के साथ व्याख्या की गयी है और प्रस्तुत अष्टमाङ्ग-अन्तकृनदशाङ्ग सूत्र मे ६० पवित्र आत्माओ के जीवन वृतान्त से अनगार धम की व्याख्या की गई है ।

उदाहरण के माध्यम से किसी भी गभीर से गभीर विषय को सरलता से बोध गम्य बनाया जा सकता है । प्रभु ने भी अपनी देशनाओ मे धर्म कथाओ का पर्याप्त उपयोग किया है । जिन धर्म कथाओ द्वारा हमे जीवन की उलझी हुई ग्रन्थियो का विमोचन करने के साथ मुक्तानदवरण करने का दिग्बोध प्राप्त होता है ।

जिस प्रकार मुख पर लगी कालिमा को दूर करने के लिये दपण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आत्मा पर लगे कम-कालिमा को दूर करने के लिये परम पवित्र आत्मा के जीवन रुप, स्वच्छ दपण की आवश्यकता होती है, जिसे समक्ष रखकर अपनी आत्मा का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके ।

नाम का रहस्य

प्रस्तुत सूत्र का नाम अन्त + कृत + दशा + अग + सूत्र है ।

क्योंकि प्रस्तुत सूत्र मे उन ६० महापुरुषो का जीवन वृत व्याख्यापित किया गया है, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट सयम-साधना द्वारा सभी कर्मों का अन्त कर जीवन के अन्तिम क्षणो मे मोक्ष पद प्राप्त किया था । इसी अथ के परिचायक के रुप मे अग के नाम का प्रथम शब्द 'अन्तकृत' है ।

अन्तकृत के बाद दूसरा शब्द आता है-दशा । जैन सस्कृति मे दशा शब्द के दो अर्थ विशेषत प्रचलित हैं-

'दशा' शब्द का अर्थ— अवस्था लिया जाता है। नदी चूर्णि मे दशा का अर्थ— अवस्था किया है।[1] जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन अर्थात् शुद्ध दशा–अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति करना दशा है।

प्रस्तुत सूत्र मे ऐसी दशा की ही प्रधानता होने से इस अग मे वर्णित सभी अन्तकृत साधक निरन्तर भोग से योग की ओर प्रगति करते है। इस शुद्ध अवस्था का परिचायक 'दशा' शब्द है।

(२) 'दशा' शब्द से दूसरा अर्थ 'दस की सख्या' भी लिया जाता है जिस सूत्र मे दस अध्ययन हो उसे भी दशा कहा जाता है। यद्यपि प्रस्तुत सूत्र मे आठ वर्ग है, किन्तु प्रथम, चतुर्थ, पचम, अष्टम वर्ग में दस-दस अध्ययन हैं। प्रथम वर्ग से शास्त्र का आदि (प्रारभ) है, चतुर्थ वर्ग शास्त्र का मध्य है, और अष्टम वर्ग शास्त्र का अन्तिम भाग है। इन सभी के दस-दस अध्ययन होने मे भी प्रस्तुत शास्त्र के नाम के साथ दशा शब्द सयोजित किया गया। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने नदी चूर्णि मे और आचार्य हरिभद्र सूरि ने प्रथम वर्ग के दस अध्ययन होने से ही प्रस्तुत सूत्र का नाम 'अतगडदसाओ' बतलाया है।[2]

'दशा' शब्द के अनन्तर तृतीय 'अग' शब्द सयोजित किया गया है।

शरीर के एक अवयव विशेष को अग कहा जाता है, या किसी वस्तु विशेष के एकाश को भी उस वस्तु का अग कहा जाता है। तदनुसार तीर्थंकरो के देशना रुपी विशिष्ट देह का एक अग प्रस्तुत सूत्र भी होने से इसके साथ 'अग' शब्द सयोजित किया गया है।

तीर्थंकरो की देशना-धारा अर्थत प्रवाहित हुई थी। जिस धारा को सूत्र रुप में नियोजित करने वाले मुख्यत प्राज्ञ पुरुष गणधर थे।

अग के बाद चतुर्थ 'सूत्र' शब्द सयोजित किया गया है।

अल्पाक्षर युक्त हो, असदिग्ध हो, सार पूर्ण हो, अनवद्य (दोष रहित) हो, उसे सूत्र कहा जाता है।[3] प्रभु की वाणी भी अल्प शब्दो मे असदिग्ध, गभीर और सार पूर्ण अर्थ को प्रकट करने वाली होने से, उस वाणी का सकलन सूत्र रुप मे किया गया है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत सूत्र के नामान्त मे सूत्र शब्द दिया गया है।

---

[1] दस त्ति अवत्था - नन्दीसूत्र चूर्णि सहित पृष्ठ 68

[2] पढम वग्गे दसज्झयण त्ति तस्सक्खतो अतगडदसत्ति ॥ —नदी सूत्र चूर्णि सहित पृष्ठ 68

[3] अल्पाक्षर असदिग्ध सारवत् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यञ्च, सूत्रं सूत्रविदो विदु ॥

इस प्रकार इन साथक चार शब्दो का एकीकरण कर प्रस्तुत सूत्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित प्राय सभी महापुरुप, केवलालोकित अर्थ को आयुष्य की अल्पता के कारण अभिव्यक्त नही कर पाने से भी उन्हे 'अन्तकृत केवली' कहा गया है।

सूत्र परिचय–

प्रस्तुत सूत्र के परिचय के सन्दभ मे अनक दृष्टिकोण पटने को मिलते है।

'समवायागसूत्र' मे इस सूत्र के दस अध्ययन और सात वग कहे गये है।[1]

आचाय देववाचक न नन्दीसूत्र मे आठ वग का प्रतिपादन किया है किन्तु दस अध्ययनो का नही।[2] आचाय अभयदेव ने समवायाग वृत्ति मे दोनो ही सूत्रो का सामजस्य करते हुए लिखा है कि—प्रस्तुत सूत्र के प्रथम वग मे दस अध्ययन हाने से समवायाग सूत्र मे दस अध्ययन तथा अवशेप सात वर्गो का पृथक रूप से सात वर्ग के रूप मे परिगणित किये हैं। नदी सूत्र मे प्रथम वग के अध्ययन न वतलाकर प्रथम वग और सात वर्गो को मिलाकर आठ वर्ग परिगणित कर लिये हैं।[3]

किन्तु इस सामजस्य का अन्त तक निवहन सभावित नहीं लगता। क्योकि समवायाग मे ही प्रस्तुत सूत्र के शिक्षा काल (उद्देशन काल) दस वतलाए गये है। जवकि नन्दी सूत्र मे आठ ही प्रतिपादित है। इसीलिये आचाय अभयदेव ने यह स्वीकार किया है कि उद्देशनकालो के अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नही है।[4]

अध्ययना के नामो के भी पाठ भेद मिलते है।

प्रस्तुत आगम मे एक श्रुतस्कन्ध, आठ वग, ९० अध्ययन, आठ उद्देशन काल, समुद्देशन काल और परिमित वाचनाएँ हैं। इसमे अनुयोगद्वार, वेदा, श्लोक, नियुक्तियाँ, सग्रहणियाँ एव प्रतिपत्तिया सख्यात–सख्यात है। पद सख्यात और अक्षर सख्यात हजार वताये गए हैं। वतमान मे प्रस्तुत सूत्र ९०० श्लोक परिमाण वतलाया गया है।

अष्ट वर्गो मे से प्रथम–द्वितीय वग मे दस–दस अध्ययन, तृतीय वग मे तेरह अध्ययन,

---

[1] दस अज्झयणासत्त वग्गा। —समवायाग प्रकीर्णक समवाय सूत्र–96

[2] अट्ठ वग्गा। —नदी सूत्र –88

[3] दस अज्झयणत्ति प्रथमवर्गा पेक्षयैवघटन्ते, नन्द्या तथैव व्याख्यातत्वात् यच्चेह पठयते 'सत्त वग्ग' त्ति तद् प्रथम वर्गादन्य वर्गापेक्षयायताध्यष्टवर्गा नन्द्यामपि तया पठितत्वात्।—समवायाग वृति पत्र—112

[4] तता भणित अट्ठ उद्देशन काला इत्यादि, इह च दश उद्देशन काला अधीय ते इति नास्यमभिप्रायम वगच्छाम।—समवायाग वति पत्र—112

चतुर्थ और पचम वर्ग मे दस–दस अध्ययन, षष्टम वर्ग मे सोलह, सप्तम वग मे तेरह और अष्टम वर्ग मे दस अध्ययन प्रतिपादित हैं ।

प्रस्तुत आगम मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान एव सवज्ञ सवदर्शी महावीर भगवान के तीर्थंकर कालीन युग की घटनाएँ प्रतिपादित की गयी हैं । जबकि प्रस्तुत सूत्र अनादि–शाश्वत ह । अर्थात् प्रभु अरिष्टनेमि स भी पूर्व का ह । तातपय यह है कि सूत्रगत शाश्वत सदेश प्रारभ मे चला आ रहा है, पश्चात् प्रासगिक रूप से घटनाओ का सयोजन किया गया है ।

एतद् विषयक विस्तृत चर्चा आगे प्रश्नोत्तर के रूप मे की गई है ।

वर्ग–परिचय—

प्रथम वग के दस अध्ययन तथा द्वितीय वग के आठ अध्ययन कुल मिलाकर अठारह अध्ययनो मे वृष्णि कुल के अट्ठारह राजकुमारो का वणन आया है । जो राजकुमार प्रभु की देशना श्रवण कर विरति के पथ पर अग्रसर हुए थे । प्रथम के दस राजकुमारा ने बारह-बारह वप तथा अवशिष्ट आठ राजकुमारो ने सोलह-सोलह वप पर्यन्त सयम–पर्याय का पालन किया था । सभी राजकुमारा ने श्रमण धर्म का पालन करते हुए उत्कृष्ट तपाराधना के साथ अन्त मे एक मास के सलेखना–सथारा पूवक सभी कर्मों का अन्त करके मुक्तावस्था प्राप्त की थी ।

तृतीय वग मे तेरह अध्ययन हैं । ये तेरह अध्ययन भी तेरह राजकुमारो के नाम मे बतलाए गये हैं । इन्होने भी ससार की क्षणिकता का बोध प्राप्त कर सयम–पर्याय मे आकर सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया था ।

चतुथ वग के दस अध्ययन भी दस राजकुमारो के नाम से हैं । इन्होने भी दीक्षा अगीकार कर, सर्व कम क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया था ।

पचम वग मे पद्मावती आदि दस रानिया का वणन है । राजमहलो मे रहने वाली इन रानिया ने ससार की असारता का बाघ प्राप्त कर, सयम पर्याय अगीकार कर सभी कर्मों का क्षय किया और मुक्तावस्था प्राप्त की ।

षष्ठम अध्ययन मे सालह अध्ययन है, ये सोलह ही अध्ययन विभिन्न अवस्था वाले महा-पुरुषो के जीवन–वृत्त से सबधित है ।

जहाँ मकाई, किकम जैसे बडे श्रेष्ठियो का वणन आता है, वहाँ (उसी मे) मुद्गरपाणि जैसे (यक्ष) अजुनमाली का वणन भी आता है । इसी प्रकार अतिमुक्त जैसे कुमार की प्रवज्या का वणन भी आता है ।

सातव वग के यारह ही अध्ययन तथा आठवें वर्ग के दसो अध्ययन रानियो के नाम स है । इन सभी रानियो ने राजपाट, वैभव-विलास का त्याग कर कटकाकीर्ण सयमपथ स्वीकार किया

था, और साधनापथ पर आरूढ होकर उग्र तपाराधना से अपनी-अपनी आत्मा को निर्मल बनाते हुए मोक्षावस्था को प्राप्त किया ।

प्रथम वग से लेकर पाचवें वग पयन्त सवज्ञ–सवदर्शी अहन्त अरिष्टनेमि के साथ विशेपकर कृष्ण वासुदेव का वणन आता है ।

जैन ग्रथो मे जिस प्रकार कृष्ण वासुदेव की चर्चा की गई है, वैसे ही श्री कृष्ण की चर्चा वैदिक एव बौद्ध ग्रथो मे भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है ।

वैदिक परपराओ मे कृष्ण–वासुदेव के विष्णु, नारायण, गोविन्दप्रभृति अनेक नाम मिलते है । श्री कृष्ण वासुदेव के पुत्र थे, इसलिये वे वासुदेव कहलाए ।

गीता मे श्री कृष्ण, विष्णु के पूव अवतार के रूप मे माने जाते है ।[1] महाभारत मे उनकी नारायण के रूप मे स्तुति की गई है ।[2] तैत्तियारण्यक मे श्री कृष्ण को सवगुण सपन्न बतलाया है ।[3]

पद्मपुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, कूमपुराण, ब्रह्मवैवतपुराण, हरिवशपुराण एव श्रीमद्-भागवत् मे सविस्तृत श्री कृष्ण का वणन किया गया है ।

इसी प्रकार बौद्ध साहित्य के घट जातक मे श्री कृष्ण का वर्णन मिलता है ।[4]

जैन परम्परा मे श्री कृष्ण अत्यन्त दयालु, नीति प्रधान, मातृभक्त, कर्त्तव्य परायण एव तेजस्वी व्यक्ति के रूप मे प्रतिपादित किये गये है ।

श्री कृष्ण वासुदेव अहन्त अरिष्टनेमि के परम भक्त थे । तीन खण्ड का सचालन करने का गुरूत्तर दायित्व होते हुए भी कृष्ण-वासुदेव जब अरिष्टनेमि भगवान का द्वारिका के बाहर पदार्पण होता, तब-तब अपने अन्य सभी कामो को स्थगित कर प्रभु को वदामि-नमसामि करने एव उनकी दिव्य वाणी का श्रवण करने प्रभु शरण मे पहुच जाते । अरिष्टनेमि प्रभु से श्री कृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे । तो आध्यात्मिक दृष्टि से श्री कृष्ण से अरिष्टनेमि प्रभु ज्येष्ठ थे ।

प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त कर श्री कृष्ण इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी राज-पाट छोडकर दीक्षा लेने का विचार करने लगे, किन्तु श्रामण्य पर्याय अगीकार नही कर सके, क्यो कि उनका वासुदेव पद निदान कृत था । इसी कारण वे चतुथ गुणस्थान से आगे नही बढ सके ।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता–म —48

[2] महाभारत, अनुशासन पव—147/19,20

[3] तैंतियारण्यक वन पव —16-47, उद्योग पर्व—49, 1

[4] जातक कथाए चतुथ खण्ड–454 मे घट जातक भदन्त आनन्द कौशल्यायन ।

श्री कृष्ण वासुदेव की तरह ही अरिष्टनेमि प्रभु का उल्लेख भी जैन परपरा के अतिरिक्त वदिक परपरा मे भी अनेक स्थलो पर किया गया है । जैसे ऋग्वेद मे 'स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि' 'तार्क्ष्य अरिष्टनेमि' आदि[1] इस प्रकार अनेक स्थलो पर प्रभु अरिष्टनमि का नाम मिलता है । यजुर्वेद, सामवेद आदि मे भी स्थाथ-स्थान पर प्रभु अरिष्टनेमि का नाम उपलब्ध हाता है ।

यजुर्वेद के स्थल पर तो जैन परम्परा मे प्रतिपादित अरिष्टनेमि के गुण वर्णन के सदृश्य ही वर्णन प्राप्त होता है । जो कि इस प्रकार है—

"आध्यात्म यज्ञ को प्रकट करने वाले, ससार के सभी भव्य जीवो को उपदेश देने वाले, जिनके उपदेश से सभी जीवो की आत्मा बलवान होती है, उन सर्वज्ञ नमिनाथ के लिये आहुति समर्पित करता हू ।[2]

प्रथम के पाँच वर्ग मे विवेचित ५१ महान् साधको ने भगवान अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे साधना सिद्धि की थी । तदनन्तर छट्ठे से आठवें वर्ग गत ३९ भव्यात्माओ ने चरमतीर्थकर प्रभु महावीर के सान्निध्य मे साधना–सिद्धि की थी ।

प्रस्तुत सूत्र की कुछ विशेषताएँ—

अध्ययन —प्रथम-द्वितीय वर्गगत १८ राजकुमारो ने सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करके केवल्य प्राप्त किया था । तृतीय वर्गगत तेरह अध्ययनो मे से गजसुकुमाल अनगार को छोडकर शेष बारह अध्ययन गत महान साधको ने चतुर्दश पूर्वधारी होकर केवल्य को प्राप्त किया था । गजसुकुमाल अनगार ने किसी भी शास्त्र का अध्ययन किये बिना केवल्य प्राप्त किया था ।

चतुर्थ वर्ग गत सभी अध्यात्म साधक ने द्वादशाङ्गी का अध्ययन कर केवल्य प्राप्त किया था । शेष सभी महापुरुष एकादश शास्त्रो का अध्ययन करके केवली, अतकृत हुए ।

दीक्षा पर्याय —सबसे अधिक दीक्षा पर्याय अतिमुक्तक कुमार की रही । जिन्होने यौवन के विस्फोट से पूर्व ही प्रव्रज्या अगीकार करली और दीर्घकाल तक सयम पर्याय का पालन कर अतकृत केवली हुए थे ।

गजसुकुमाल अनगार ऐसे महापुरुष हुए थे कि जिन्होने कुछ घटा की सयम साधना के अनन्तर सभी कर्मो का क्षय कर अन्तकृत केवली हुए थे । अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु म अन्तकृत केवली नही हुए ।

---

1 ऋग्वेद—1/14/89/9

2 वाजसनेयि–माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय—9, मत्र–15 सातवलेकर सस्करण (विक्रम–1984)।

छः माह की दीक्षा पर्याय और पन्द्रह दिनो का संथारा अर्जुन अनगार को आया था। अन्य सभी महान् आत्माओ की वर्षो की दीक्षा पर्याय रही एव एक-एक मास का सथारा आया था।

जीवन —दो महान् साधक बाल ब्रह्मचारी हुए है—गजसुकुमाल अनगार और अतिमुक्तक अनगार। शेष सभी महान् आत्माएँ भोग से निवृत्त हो योग मे प्रवृत्ति कर अन्तकृत हुई।

दो राजकुमार एक दिन के लिए राजा बने। एक द्वारिका नगरी के गजसुकुमाल और पोलासपुर नगर के अतिमुक्त कुमार। एक वाराणसी नगरी के सम्राट अलक्ष थे। इस प्रकार तीन राजा हुए। शेष सभी राजा, राजकुमार, युवराज, महारानिया और श्रेष्ठी वर्ग आदि अन्तकृत हुए।

गजसुकुमाल अनगार एव अर्जुन अनगार को प्रभूत परिषह सहने पडे, अन्य साधक-साधिकाओ को इतने नही। अर्जुन अनगार के अतिरिक्त सभी महान् आत्माएँ राजकुल और श्रेष्ठी कुल मे उत्पन्न होकर अन्तकृत हुई।

निर्वाण-स्थल —गजसुकुमार का निर्वाण महाकाल नामक श्मशान भूमि पर हुआ था। शेष सभी अनगार विपुलगिरि या शत्रुञ्जय पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे। साध्वियाँ सभी उपाश्रय मे ही निर्वाण को प्राप्त हुई।

कितने पुरुष कितनी स्त्रियाँ

पाँचवें वर्गगत दस सातवे वर्गगत तेरह एव आठवें वर्गगत दस, इस प्रकार ३३ अध्ययन राजा रानियो के है। जिन्होने सयम अगीकार कर कर्मान्त किया था। अवशेष सभी पुरुष अन्तकृत हुए थे।

शासन-किसका —भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल मे इकतालीस अनगार और दस आर्यिकाएँ अन्तकृत केवली हुई। भगवान महावीर के शासन-काल में सोलह अनगार और तेवीस आर्यिकाएँ अन्तकृत केवली हुई।

भगवान अरिष्टनमि के शासनकाल मे यक्षिणी आर्या प्रवतनी थी और भगवान महावीर के शासन काल मे चन्दन बाला आर्या प्रवतनी थी।

आदर्श-शिक्षाएं —प्रस्तुत सूत्र का अध्ययन करने से भव्य आत्माओ को जीवन की विविध समस्याओ का समाधान करने वाली हित शिक्षाएँ प्राप्त होती है। उन आदर्श महापुरुषो के जीवन से शिक्षा लेकर भव्य आत्माएँ आदर्शमय बन जाती है।

(१) कामभोगो की क्षणिकता का ज्ञान गौतमादि कुमारो की तरह होना चाहिये। जिन्होने यौवन के विस्फोट मे ही सयम जीवन अगीकार कर लिया था।

(२) सयमीय साधना के महापथ पर आने वाले घोरतम परिषह उपसर्गों को समभाव के साथ-सहन करने वाले गजसुकुमाल अनगार की तरह धैर्य एव दृढ विश्वास होना चाहिये।

(३) भव्य ग्रात्माग्रो को सयम महापथ पर ग्रग्रसर करने के लिये घमदलाली ग्रौर घम के प्रति ग्रटूट विश्वास कृष्ण वासुदेव की तरह होना चाहिये ।

(४) विशिष्ट शक्ति एव लब्धि से सम्पन्न प्रद्युम्नकुमार की तरह सब कुछ होत हुए भी शाश्वत शाति पाने के लिये सब कुछ त्याग कर सयम के महापथ पर बढ जाना चाहिये ।

(५) पुष्पो की शय्या पर शयन करने वाली, कोमलाङ्गी पद्मावती ग्रादि महारानियो की तरह महिलाग्रो का भी देह–मोह से हटकर विदेह पथ पर दृढता के साथ बढना चाहिय ।

(६) कर्मों का क्षय करन के लिए ग्रजु न ग्रनगार की तरह सहनशक्ति होनी चाहिये ।

(७) श्रमणापासक मे सुदशन श्रमणोपासक की तरह सशक्त ग्रात्मबल, प्रभु एव घम के प्रति दृढ विश्वास होना चाहिए ।

(८) सत्सघ का ग्रमिट रग एव प्रश्नोत्तर की शैली ग्रतिमुक्तक ग्रणगार की तरह होनी चाहिये ।

(९) काली–सुकाली ग्रादि ग्रार्यिकाग्रो का तरह विविध प्रकार के तप-कम मे ग्रपने शरीर को शुष्क कर, ग्रात्म तेज का जागृत करना चाहिये । इस प्रकार ग्रनेक शिक्षाएँ इस शास्त्र म जिज्ञासु ग्रात्माग्रो को प्राप्त होती हैं ।

पर्यू षण मे ही ग्रतगड का वाचन क्यो ?

शास्त्रो का गहन–गभीर ज्ञान प्राप्त करन के लिये मन ग्रौर मस्तिष्क का शात रहना उतना ही ग्रावश्यक है जितना की तलगत वस्तु को देखन के लिये सरोवर के पानी का निस्तरग रहना ।

मन ग्रौर मस्तिष्क की ऐसी शाति, समस्याग्रा के समाधान के बिना नही हो सकती । गृहस्थ जीवन मे त्यागी–साधक के लिय तो ऐसी कोई समस्या नही होती, किन्तु ससार के रग-मच पर जीने वाले मानव के मस्तिष्क मे ग्रनेक प्रकार की समस्याएँ उभरती रहती हैं । ग्रनेकविध समस्याग्रो मे प्रमुख समस्या होती ह– ग्रर्थोपाजन की । जिसकी प्राप्ति के लिये वह सदा व्यापार ग्रादि करता रहता है । किन्तु चातुर्मासिक दिनो मे वैसे भी व्यापार कम ही चलता है ग्रौर फिर पयू षणा मे ग्रौर भी कम । वे दिन तो ग्रात्म–जागरण के होते हैं ।

पयू षण के इन ग्रष्ट दिवसो मे भव्य ग्रात्माएँ वष भर के कर्म कलिमल को प्रक्षालित करने का प्रयास करती है । इस कलिमल का प्रक्षालन करन के लिए शुद्ध, निरजन स्वरूप कि सी ग्रादश की ग्रावश्यकता होती है । जिनके जीवन–वृत्तान्त को पढकर या श्रवणकर चिन्तन–मनन के साथ ग्रपनी ग्रात्मा के साथ ग्रात्मसात् किया जा सके ।

ऐसे ही पथ–प्रदशक ग्रादश महापुरुषो का वणन प्रस्तुत सूत्र मे प्रचुरता क साथ किया गया है । सभव है इसी दृष्टिकोण का ध्यान मे रखकर पूर्वाचार्यो ने ग्रन्तगडसूत्र' का वाचन

पयू पण मे रखा हो या फिर ऐसा भी हो सकता है कि प्रस्तुत सून क अष्टाह्निक पाठो के आधार पर पयू पण पव को भी अष्टाह्निक पव के रूप मे प्रचलित कर दिया गया हो। क्योकि शास्त्र के अन्त मे प्रस्तुत सूत्र की स्वाध्याय वाचना अष्टदिवसो मे ही पूरा करने का निर्देश दिया गया है।

मूल – आगम म कही पर भी पयू परा के दिनो मे ही 'अन्तगडसूत्र' की वाचना का निर्देश नही दिया गया ह। पश्चात्वर्ती आचार्यो ने ही इस प्रकार का सयाजन किया है। वैसे अन्तगडसूत्र की वाचना (स्वाध्याय) किसी भी दिन की जा सकती है।

कुशल व्याख्याकार आचार्य श्री नानेश—

प्रखर प्रतिभा सम्पन्न, आगम रत्नसदोह, श्रद्ध य गुरुदेव आचार्य श्री नानेश प्रस्तुत सूत्र के कुशल व्याख्याकार हैं। जिनकी प्रखर मेधा, आगमानुकूल गभीर अथ को सुबोधगम्य रूप मे प्रतिपादित करने की सहज अभ्यासी रही है जिनके कुशल नेतृत्व को पाकर जहा चतुर्विध सघ अहर्निश विकास कर रहा है, वहा उन्ही के द्वारा व्याख्यायित मूलानुसारी अभिनव विवेचन भी जिज्ञासुओ के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

आचाय प्रवर से आगम वाचना ग्रहरा करते समय आपश्री के मुख से सूत्रो की आगमनुकूल अभिनव विवेचना सुनने को मिली तब साधक-साधिकाओं का मानस अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठा। विचार चलने लगा कि ऐसी विवेचना हमने किसी शास्त्र की व्याख्या मे नही पढी।

समवेतस्वर प्रस्फुटित हुए—साधक-साधिकाओ के गुरुदेव! हमारी मति इतनी पैनी नही है कि हम आपश्री द्वारा व्याख्यायित विषय को हुबहू ग्रहण कर लें। अत भगवन्! शास्त्र की व्याख्याओ को लिपिबद्ध करवादे तो हम सब पर अत्यन्त उपकार होगा।

शिष्य-शिष्याओ की भावना का लक्ष्य मे रखते हुए परम कृपालु गुरदेव न शासन सबधी कार्यों मे अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी समय निकाल कर शास्त्र का विवेचन लिखवाना प्रारम्भ कर दिया। अब तक आचाराग सून की आगम-सम्मत्त विलक्षण विवेचना, इसी तरह भगवती सूत्र के कितनेक शतका की मूलानुसारी अभिनव विवेचना सम्पन्न हो चुकी है। उसी शृ खला मे गुरुदेव ने 'अन्तकृतदशाङ्गसून' की प्रश्नात्तर के रूप मे तलस्पर्शी विवेचना प्रस्तुत की ह। निश्चय ही जिज्ञासु आत्माओ के लिए यह सून निश्रेयस् की प्राप्ति मे सहायक सिद्ध होगा।

गुरुदेव के निर्देश को पाकर, उन्ही की अहेतु की असीम कृपा के परिणाम स्वरूप मैं प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुवाद एव सपादन आदि का काय सपन्न कर सका हू।

मूल पाठ, जावपूर्ति, अनुवाद और सपादन आदि का काय निम्न ग्र थो को समक्ष रखकर किया गया है —

१ अन्तकृद्दशाग सूत्र-सटीक अभयदेवसूरि
२ " " आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा
३ " " युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म सा
४ " " प्यारे लालजी म सा
५ " " (प्रश्नोत्तर) घीसू लालजी पीतलिया
६ " " पूज्य घासी लालजी म सा
७ अग सुत्ताणि-मु नथमलजी म सा
८ जैन लक्षणावली भा १, २, ३, वाल चन्द्रजी
९ निरुक्त कोश-युवाचार्य महाप्रज्ञ
१० पाइअसद्दमहण्णवो
११ जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भा १ से ८ आदि, आदि

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करने, जाव पूर्ति, मूल पाठ तयार करने एव परिभाषाओ के सकलन में आगम-अहिंसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर के प्रभारी श्री मानमलजी कुदाल एव उनके सहायक श्री सुभाषजी कोठारी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सपादन एव अनुवाद आदि करने में कहीं कुछ भी स्खलना हो गई हो तो सुज्ञ-जनो से स्पष्टीकरण की अपेक्षा के साथ—

दिनाक १-४-८४
बुधवार

मुनिज्ञान

राजेन्द्रनगर
कुलुपवाडी रोड
नेशनल पार्क के सामने
बोरिवली (ईस्ट)
बम्बई-४

विषयानुक्रम

पृष्ठ सख्या

चतुर्थ वर्ग

पंचम वर्ग

षष्ठ वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

पचमगणहर–सिरिसुहम्मसामिपणीय अट्ठम अग

अन्तगडदसाओ

पञ्चमगणधर-श्रीमत्सुधर्मस्वामिप्रणीतम-अष्टमम् अङ्गम्

अन्तकृद्दशा
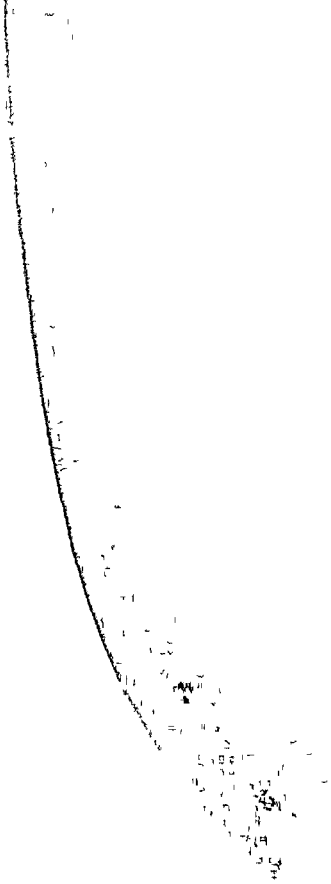
उत्थानिका

भगवान महावीर के निर्वाण होने के पश्चात उनके पाट पर पचम गणधर आय सुधर्मा स्वामी विराजे। उनके प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी थे। जब वे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चपानगरी मे पधारे तब जम्बू स्वामी ने आठवे अन्तकृद्दशाग सूत्र का बोध प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रस्तुत की।

जिसका समाधान दिया–आय सुधर्मा स्वामी ने। ज्ञान प्राप्त करने की परपरा चिरतन काल से गुरु के द्वारा चली आ रही है। सुगुरू के द्वारा प्राप्त किया ज्ञान ही शिष्य के लिये नि श्रेयस् प्राप्त करान वाला हाता है।

'अन्तकृद्दशाग सूत्र' के आठ वर्गो मे से प्रथम वग के दस अध्ययनो का वणन करते हुए सुधर्मा स्वामी ने बतलाया–

उस अवसर्पिणी काल के चतुथ आरे मे द्वारिका नामक सुरम्य नगरी थी। जिसके प्रमुख अधिपति अद्ध भरत के राजा कृष्ण-वासुदेव थे। जो विशाल ऋद्धि-समृद्धि के स्वामी थे। द्वारिका नगरी के बाहर ईशाण-काण मे रेवतक नामक पवत पर नदनवन नामक उद्यान था।

द्वारिका नगरी मे अन्य अनेक राजा-महाराजाओ मे श्रेष्ठ एक अधक वृष्णि नामक राजा भी थे, जिनकी महारानी का नाम धारिणी था। जिनके दस राजकुमार थे।

दसो राजकुमारो को धारणी नामक रानी ने शुभ स्वप्न देखकर क्रमश जन्म दिया था। इनका अच्छी तरह से लालन-पालन किया गया। ७२ कलाओ मे प्रवीण होकर जब वे युवानी की दहली पर पदचरण करने लगे तब इनका समान रूप-गुण वय वाली आठ-आठ श्रेष्ठ कन्याओ के साथ विवाह कर दिया गया। वधु-पक्ष की ओर से इन सभी राजकुमारा को प्रत्येक के यहाँ से एक-एक करोड सब मिलाकर आठ-आठ करोड सौनया प्राप्त हुआ। सभी राजकुमार सासारिक काम भोग भोगते हुए रहने लगते हैं।

अगस्स अतगडदसाण अट्ठ वग्गा पण्णत्ता ।"

"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र के आठ वग प्रतिपादित किये है ।'

3–"जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[A] सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! वग्गस्स अतगडदसाण समणेण भगवया महावीरेण जाव[B] सपत्तेण कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

जम्बू स्वामी आय सुधमा स्वामी से निवेदन करने लगे—"हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने, यावत आठवें अग अन्तकृद्दशा मे आठ वग प्रतिपादित किये हैं, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के प्रथम वग के कितने अध्ययन प्रतिपादित किये हैं ?"

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[C] सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तजहा–

हे जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अग अन्तकृद्दशा के प्रथम वग के दश अध्ययन कहे हैं। जैसे कि—

गाहा —

"गोयम, समुद्द, सागर–गभीर चेव होइ थिमिए य ।
अयले कपिल्ले खलु अक्खोभ–पसेणइ–विण्हू ॥"

"(१) गौतम, (२) समुद्र, (३) सागर, (४) गभीर, (५) स्तिमित, (६) अचल, (७) काम्पिल्य, (८) अक्षोभ, (९) प्रसेनजित और (१०) विष्णुकुमार ।"

प्रथम अध्ययन गौतम

4–उत्थानिका —

"जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[D] सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता,

आय सुधर्मा स्वामी से आय जम्बू स्वामी ने इस प्रकार निवेदन किया—'हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने, यावत् आठवें अग अन्तगडसूत्र के प्रथम वग के दश अध्ययन प्रतिपादित किये हैं तो हे

पढमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाण समणेण भगवया महावीरेण जाव[E] सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?"

भगवन् ! श्रमण, यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?"

द्वारिका वर्णन–

5–"एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवई नाम नयरी होत्था दुवालसजोयणायामा नव–जोयण[10]–वित्थिण्णा, धणवइ–मइ–णिम्माया, चामीकर–पागारा नाणा-मणि–पचवण्ण कविसीसगपरिमडिया, सुरम्मा, अलकापुरि–सकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्ख देवलोगभूया[11] पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

जम्बू अनगार के प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नामकी एक नगरी थी । वह बारह योजन आयाम—लम्बाई तथा नौ योजन विष्कभ—चौडाई वाली थी । धनपति—वैश्रमण देव कुबेर की विलक्षण मति (बुद्धि) मे निर्मित थी । चामीकर—सोने के प्राकार—परकोट वाली थी । नाना प्रकार की मणियो एव पाच वर्ण वाले कपिशिर्षक—कगूरो से सुसज्जित थी । अति रमणीय थी । अल-कापुरी—देवो की नगरी के समान थी । जो प्रमोद एव क्रिडा का स्थान थी । साक्षात् देवलोक के समान प्रतीत होती थी । देखने योग्य थी । चित्त को प्रसन्न करने वाली थी । अभिरूप थी, प्रतिरूप थी ।

तीसे ण बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ ण रेवयए नाम पव्वए होत्था । वण्णओ[A]। तत्थ ण रेवयए पव्वए नदणवणे[12]नाम उज्जाणे होत्था । वण्णओ[B] । सुरप्पिए नाम जक्खायतणे[13] होत्था, पोराणे, से ण एगेण वणसडेण सव्वओ समता सपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे0"[C]।

इस प्रकार की द्वारिका नगरी के बाहर उत्तर–पूर्व दिशा भाग मे—ईशान कोण मे, रैवतक नामक एक पर्वत था । उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था । जिसका वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जानना चाहिये । उस उद्यान मे सुरप्रिय नामक यक्ष का प्राचीन यक्षायतन था । वह अनेक प्रकार के वृक्षो से परिवृत—घिरा हुआ था । जिसके मध्य मे अशोक नामक एक प्रधान वृक्ष था ।"

6—तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे नाम वासुदेवे[14] राया परिवसइ। महया वण्णओ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव[15] पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अध्दुट्ठाणं कुमारकोडीणं सबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रूप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं, ईसर जाव[A] सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्तस्स आहेवच्चं जाव[B] विहरइ।

उस द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव नामक राजा राज्य करते थे। जो कि महान् थे। राजा के योग्य सारा वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिये।

उस द्वारिका नगरी में कृष्ण महाराज के अतिरिक्त समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह (पूज्यजन), बलदेव प्रमुख पाँच महावीर, प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ राजकुमार, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन प्रमुख छप्पन हजार सैनिक, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजा, रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देवियाँ, अनंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाएं थीं। इसके अतिरिक्त भी ऐश्वर्यशाली अनेक सेठ साहूकार, सार्थवाह निवास करते थे। इन सब पर तथा द्वारिका नगरी एवं अर्द्ध-भरत की समस्त प्रजा पर, कृष्ण वासुदेव आधिपत्य शासन कर रहे थे।

7—तत्थ णं बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नाम राया परिवसइ। महया हिमवंत0 वण्णओ।

तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नाम देवी होत्या वण्णओ।

तए णं सा धारिणी देवी

उस द्वारिका नगरी में अंधकवृष्णि नामक राजा निवास करता था। पर्वतों में श्रेष्ठ हिमवान पर्वत की तरह वह अन्य सभी राजाओं में महान् था, जिसका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र में जानना चाहिये।

उस अंधकवृष्णि राजा के धारिणी नामक रानी थी। किसी समय महारानी धारिणी, शयन शय्या पर अर्धनिद्रित अवस्था में एक शुभस्वप्न को देखती है। जिसे इसके

अण्णया कयाइ तसि तारिसगसि सयणिज्जसि एव जहा महब्बले ।

सुमिणदसण-कहणा, जम्म बालत्तण कलाग्रो य ।।
जोव्वण-पाणिग्गहण कण्णा वासा य भोगा य ।

नवर गोयमो नामेण अट्ठण्ह रायवरकण्णणा एगदिवसेण पाणि गेण्हावेंति अट्ठट्ठग्रो दाग्रो ।

जागृत हो जाती ह, और उस स्वप्न का यथावत वरान अपने पति को सुना देती है । उस स्वप्न का फल, बालक का जन्म और उसका बालत्व, कलाग्रो का अध्ययन, यौवनत्व की अवस्था, कान्ता-कान्त कुमारिकाग्रो के साथ पारिग्रहरण (विवाह), प्रासादो-महलो का निर्माण और कामभोग आदि सारा वरान भगवतीसूत्रगत महाबल के वरान के अनुसार जान लेना चाहिये ।

नवर-विशेषता इतनी है कि महाबल-कुमार के नाम के स्थान पर प्रस्तुत में वर्णित कुमार का नाम गौतम कुमार रखा गया । यौवनवय मे आठ श्रेष्ठ कन्याओ के साथ एक ही दिवस मे उनका विवाह कर दिया गया । आठ-आठ दाते (आठ-आठ करोड सौनया) दी गई ।

8—तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ । चउव्विहा देवा आगया । कण्हे वि णिग्गए । तते ण तस्स गोयमस्स कुमारस्स जहा मेहे तहा णिग्गए । धम्म[17] सोच्चा ज नवर देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि । देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वयामि एव जहा मेहे जाव इणमेव णिग्गथ पावयण पुरे काउ विहरइ ।

उस काल उस समय मे श्रुतधम का प्रारभ-प्रवर्तन करने वाले अरहा-अरिहन्त बाइसवे तीर्थंकर अरिष्टनेमि भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपने तप सयम की आराधना करते हुए द्वारिका नगरी मे पधारे । उनके समवसरण में चार प्रकार के देव, भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिष और वैमानिक उपस्थित हुए । कृष्ण वासुदेव के साथ विशाल जनमेदिनि भी उपस्थित थी । तदनन्तर मेघकुमार की तरह गौतमकुमार भी प्रभु के दशनाथ उपस्थित हुए । धम श्रवण कर अथात् एक ही उपदेश म उनका जीवन रूपान्तरित हो गया और वे बोले-भगवन् ! मैं अपने माता-पिता को पूछकर आपके पास दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ । भगवान् ने कहा जसा तुम्हे सुख हो वैसा करो, किन्तु शुभ काय मे किंचित भी ।

मत करो। आदि–सारा वर्णन मेघकुमार की तरह जानना चाहिए। गौतम कुमार ने भी माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन को सामने रखते हुए अर्थात् प्रभु के निर्देशानुसार श्रुत एवं चारित्र धर्म का पालन करते हुए विचरण करने लगे।

9— तए णं से गोयमा अणगारे अण्णया कयाइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं[18] एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव[A] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। 'तए णं' अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइ बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ पडिणिक्खमइ बहिया जणवयविहारं विहरइ।

वे गौतम अनगार किसी समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करते हैं। अध्ययन करके चतुर्थ–उपवास आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को तप संयम से भावित करते हुए विचरण करने लगते हैं।

किसी अन्य समय में अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान द्वारिका नगर के नन्दनवन से विहार कर जनपद में विचरण करने लगते हैं।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तप–संयम से भावित गौतम अनगार एकदा अर्हत अरिष्टनेमि भगवान के चरणों में उपस्थित होते हैं। उपस्थित होकर प्रभु को तीन बार विधिपूर्वक आदक्षिणा–प्रदक्षिणा वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं—

10—"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं

'हे भगवन्! आपश्री द्वारा अभ्यनुज्ञात आज्ञा प्राप्त होने पर मैं यह चाहता हूँ कि मासिकी भिक्षु प्रतिमा को ग्रहण करके विचरूँ।' भगवान की आज्ञा प्राप्त हुई।

विहरित्तए" एव जहा खदग्रो तहा बारसभिक्खुपडिमाग्रो फासेइ फासित्ता गुणरयण पि तवोकम्म तहेव फासेइ निरवसेस । जहा खदग्रो तहा चिंतेइ । तहा ग्रापुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धि सेत्तु ज दुरूहइ बारस वरिसाइ परियाए मासियाए सलेहणाए जाव[8] सिद्धे–बुद्धे–मुत्ते–परिणिव्वाए–सव्वदुक्खपहीणे ।

ग्राज्ञा प्राप्त होने पर गौतम ग्रनगार ने शास्त्र विधि ग्रनुसार मासिकी भिक्षु-प्रतिमा का ग्राराधन किया । इसी प्रकार ग्रवशेप सभी प्रतिमाएँ ग्रर्थात् बारह ही भिक्षु प्रतिमाग्रो का भगवतीसूत्र मे वर्णित स्कन्दक ग्रनगार की तरह ग्राराधन किया । ग्राराधना करके गुणरत्न सवत्सर नामक तप का ग्राराधन किया । निर्विशेप ग्रर्थात् ग्रवशेप सारा वर्णन स्कदक ग्रनगार की तरह हैं । वे भी रात्रि मे चिन्तन करते ह । प्रात प्रभु के समक्ष निवेदन करते है । प्रभु की ग्राज्ञा प्राप्त कर स्थविर ग्रनगारो के साथ शत्रुजय पवत पर ग्रारोहण करते हैं—चढते हैं, चढकर सलेखना सथारा किया । बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय एव एक मास के सलेखना सथारा मे सपूर्ण कर्मों का ग्रन्त कर सिद्ध, बुद्ध-मुक्त परिनिर्वाण एव सब दुखो को हरण करने वाली ग्रवस्था को प्राप्त करते हैं ।

2-10 अध्ययन

निक्षेप पद–

11–"एव खलु जवू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव^ सपत्तेण अट्ठमस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

एव जहा गोयमे तहा सेसा । वण्ही पिया, धारिणी माता, समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कपिल्ले अक्खोभे पसेणति, विण्हुए, एए, एगगमा ।।

॥ पढमो वग्गो दस अज्झयणा सम्मत्ता ॥

इस प्रकार 'हे जम्बू ! यावत् मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अतगडसूत्र के प्रथम वग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।"

जिस प्रकार गौतम का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार, शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु, इन नव अध्ययनों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। सबके पिता अन्धकवृष्णि थे। माता धारिणी थी। सब का वर्णन एक जैसा है। इस प्रकार दस अध्ययनों के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है।"

॥ प्रथम वग १० अध्ययन समाप्त ॥

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —"तेण कालेण तेण समएण","उस काल उस समय मे"—काल और समय एकार्थक होते हुए भी अलग-अलग क्यो कहे गये ?

समाधान —सामान्य रूप मे काल और समय एक ही अर्थ के बोधक लगते है, किन्तु इनमे अन्तर अवश्य है। काल से उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल लिया जाता है और समय शब्द से, उस काल के होने वाले व्यक्ति की ओर सकेत किया जाता है। उदाहरण के रूप मे वर्ग के प्रारभ मे आए 'तेण कालेण'—उस काल से तात्पर्य अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे से है। लेकिन वह आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। तो इतने बडे काल मे यह कथन किस काल से सबन्धित है, इस बात का सकेत 'तेण समएण'—उस समय अर्थात् उस चतुर्थ आरे मे जिस समय भगवान महावीर स्वामी निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, सुधर्मा स्वामी पाट पर विराजमान थे, वे अपने शिष्य-परिवार सहित ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चपापुर नगर पधारे, उस समय से सबन्धित कथन है।

सभी स्थानो पर प्रसगानुसार इसी प्रकार अर्थ लेना चाहिये।

जिज्ञासा —मूल पाठ मे पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर का वर्णन आता है। तो क्या पूर्व मे प्रतिमा वन्दन किया जाता था ?

समाधान —'प्रतिमा' यह किसी की भी प्रतिकृति होती है। जब से मनुष्य ने सोचना प्रारभ किया, तब से वह अनुकरणशील रहा है। जैसी भी उसने आकृति देखी, वैसी प्रतिकृति बनाली

यह क्या बनाई जा रही है ? किसलिये बनाई जा रही है ? यह वन्दनीय है या नहीं–इस विषयक कोई भी विशेष सम्यक् अवबोध नहीं रहता। कलाकृति की दृष्टि से कभी मनुष्य की, ना कभी पशु की, या फिर अन्यान्य प्रतिकृतियां बनाली जाती है। शास्त्र में जो वर्णन आया है, उस वर्णन में मुख्य प्रतिपाद्य विषय–उन मोक्षगामी आत्माओं ने रत्नत्रय की आराधना की और कर्म विनष्ट कर मोक्ष पधारे, यह रहा है।

इस विषय का प्रतिपादन करते हुए आनुषंगिक विषय भी वर्णित किया गया है। आनुषंगिक विषय प्रतिपाद्य या उपादेय के रूप में नहीं है, वह सिर्फ मुख्य विषय का प्रासंगिक वर्णन है। ऐसे वर्णनों में अमुक-अमुक स्थान का क्या वातावरण था ? जनता की कितनी समझ थी ? जनता अज्ञानता वश क्या कर लेती थी ? यह विषय भी आ जाया करता है। तदनुसार शास्त्रों में जहां भी बगीचे का वर्णन एवं उसके अन्दर यक्षादि प्रतिमा का उल्लेख भी आया है। यह उल्लेख उस समय की जनता की रूढ परंपरा का सूचक है। यह विषय ज्ञेय उपादेय और हेय का भी उल्लेख आता है।

शास्त्र में उल्लिखित है, इसलिये यह सभी आचरणीय है, ऐसा समझना भ्रांतिमूलक होगा। शास्त्र में सद्गुणों का भी वर्णन है तो दुर्गुणों का भी। पाप का भी वर्णन है तो पुण्य एवं धर्म का भी उल्लेख है। एतावता दुर्गुण एवं पाप आचरणीय नहीं हो जाता।

इस सन्दर्भ में यक्ष की प्रतिमा का वर्णन भी समझना चाहिये। न कि यह प्रतिमा सम्यग् दृष्टि आत्मा के लिये आगम में वर्णन होने मात्र से वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय बन गयी।

उक्त आगम वर्णित प्रतिमा को लेकर सम्यग् दृष्टि-जीव मोक्ष प्राप्ति हेतु अन्य कृत्रिम प्रतिमा बनाकर वन्दनीय-पूजनीय भी नहीं मानता। सम्यग्दृष्टि पुरुष के लिये तो वीतराग देव ने जिन आराधनीय सूत्रों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है, वही मोक्ष प्राप्ति हेतु उपादेय आराधनीय है। यथा—

"कई विहेण भंते आराहणा पण्णत्ता गोयमा। तीविहा आराहणा पण्णत्ता णाण आराहणाए, दंसण आराहणाए चरित्त आराहणाए"।

भगवान् महावीर ने आराधना विषयक गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में फरमाया कि

आराधना तीन प्रकार की होती है–ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चरित्र आराधना । यह तीन ही आराधना प्रतिपादित की है । इन्ही आराधनाओ को सक्षिप्त रूप मे 'स्थानाङ्ग सूत्र' मे "दुविहे धम्मे पण्णत्ते-सुय धम्मे चेव, चरित्ते धम्मे चेव" मे भी वर्णित किया गया है । श्रुत मे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा चारित्र मे सम्यक् चरित्र एव सम्यक् तप का समावेश है । वाचक उमास्वाति ने तत्वार्थ सूत्र मे भी स्पष्ट कहा है– "सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्ग ।" सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र से युक्त ही मोक्षमार्ग है, इससे भिन्न कोई मोक्ष का मार्ग नही है । इसी मोक्षमार्ग की आराधना भगवदाज्ञा आराधना है । यह जैन समाज का सर्वमान्य स्वरूप है ।

जिज्ञासा —मूल-पाठ गत "जाव" एव "वण्णओ" शब्द से क्या तात्पर्य है ?

समाधान —'जाव' शब्द मूल पाठ के सकोच का परिचायक है । जिस विषय का वर्णन अन्य स्थानो पर आ चुका है, उसे सकुचित करने के लिये अन्य स्थल पर 'जाव' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है । जैसे वर्ग के प्रारभ मे "परिसा निग्गया जाव पडिगया" मूल पाठ आया है । जाव शब्द से "धम्म सोच्चा, निसम्म जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस" इतने मूल पाठ का सकोच किया गया है । 'वण्णओ' शब्द से तत्सबन्धी अवशेष विषय यहा वर्णनीय है, इस बात का परिचायक है । वर्ग के प्रारभ मे आया हुआ "पूण्णभद्दे चेइए वण्णओ" से अवशेष पाठ निम्नाकित प्रकार से औपपातिक सूत्र से लिया जाता है—"पूण्ण भद्दे चेइए, चिराइए, पुव्व पुरिस पण्णत्त, पोराणे, सद्दिए, वित्तिए, कित्तए णाए बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्ण भद्द चेइय" इसी प्रकार अन्य स्थलो पर भी जानना चाहिये ।

जिज्ञासा —मूल अग 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' के अन्दर उपाग औपपातिक सूत्र के उद्धरण देने का क्या कारण है, क्योकि अग पहले है, उपाग बाद मे है ?

समाधान — यह सत्य है कि अग सूत्रो का स्थान सर्व-प्रथम है । अग सूत्रो से ही उपाग सूत्र निकले हैं । लेकिन अग सूत्रो मे उपाग सूत्रो का निर्देश होने का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि आगमो को जब लिपिबद्ध किया गया था तब अग-उपागो मे सबसे पहले चार मूलसूत्र, चार छेद सूत्र, औपपातिक, प्रज्ञापना, आचाराङ्ग एव स्थानाङ्ग सूत्र को लिपिबद्ध किया गया क्योकि इनमे किसी अन्य सूत्र के उद्धरण का सकेत नही किया गया है । तदनन्तर लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन पूर्व लिपिबद्ध सूत्रो मे आ चुका था, उन सूत्रो का पश्चाद्वर्ती लिपिबद्ध किये जाने वाले सूत्रो के मूल-पाठ का सक्षिप्त करने के लिये सकेत कर दिया गया ।

जिज्ञासा—भगवान् महावीर के पट्टधर शिष्य प्रथम गणधर के रहते हुए पचम गणधर

परिवार में पुत्रों के समान ही पुत्री भी एक महत्वपूर्ण अंग होती है। माता पिता पर पुत्रों का ही उत्तरदायित्व नहीं, अपितु पुत्री का भी उत्तरदायित्व होता है। बल्कि पुत्र से भी पुत्री का उत्तरदायित्व माता-पिता पर अधिक होता है। अतः पिता की चल अचल संपत्ति के अधिकारी केवल पुत्र ही नहीं होते अपितु पुत्री भी होती है। जब लड़की का विवाह होता है, लड़की पराये घर जाने लगती है, तब पिता का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह नैतिकता के साथ अपनी संपत्ति का कुछ भाग अपनी पुत्री को भी दे। और इस कर्त्तव्य एवं नैतिकता को पूरा किया जाता था तीर्थंकर कालीन युग में। शास्त्रों में चर्चित अनेक विवाह-प्रसंगों पर इस परम कर्त्तव्य को आज की आधुनिक परिभाषा में दहेज की कोटि में कदापि नहीं लिया जा सकता। आज तो लड़के के विवाह के लिए, जैसे बाजार में बोलियाँ लगायी जाती हैं, वैसी बोलियाँ लगा-लगा कर विवाह किया जा रहा है। लड़की के पिता के पास सामर्थ्य नहीं होते हुए भी जबरन उससे दहेज लिया जाता है। आज गुणों का महत्व कम, रुपयों का महत्व अधिक बढ़ गया है। जिसके परिणाम आए दिन पढ़ने एवं सुनने को मिलते हैं। किन्तु उस समय दहेज की यह स्थिति नहीं थी, वहाँ सम्पत्ति का चयन नहीं अपितु गुणों का चयन किया जाता था। शरीर को महत्व नहीं अपितु चरित्र को महत्व दिया जाता था। वर-पक्ष की ओर से दहेज माँगने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वधु-पक्ष वाले भी अपना कर्त्तव्य समझ के देते थे। वह भी अपनी पुत्री को। ऐसी स्थिति में वर-पक्ष वाले निषेध भी नहीं कर सकते क्योंकि सम्पत्ति उन्हें नहीं, बल्कि लड़की को मिल रही है। वर-पक्ष की ओर से निषेध करना लड़की को अपने अधिकारों से वंचित रखना है।

इन सारी स्थितियों पर विचार करने पर कोई भी गुण व्यक्ति शास्त्रों में वर्णित लड़की के प्रीतिदान की तुलना आज के दहेज के साथ कभी नहीं कर सकता।

यह भी नहीं कह सकते कि बड़े-बड़े श्रेष्ठी वर्ग अपनी लड़की का विवाह बड़े-बड़े श्रेष्ठी-वर्गों में यहाँ ही करते थे, गरीबों के यहाँ नहीं। क्योंकि श्री कृष्ण के छोटे भाई गजसुकुमाल कुमार का विवाह प्रसंग एक सामान्य ब्राह्मण की लड़की सोमा से होना निश्चित हुआ था। शादी नहीं हुई यह और बात है। यह स्पष्ट है कि सोमा का विवाह भी विपक्षों के यहाँ गुण-सम्पन्नता को देख कर किया जाता था।

जिज्ञासा—कृष्ण महाराज के समय के वर्णन में कृष्ण महाराज के १६ हजार रानियाँ तथा ३ ५ करोड़ कुमार की व्याख्याएँ हैं। एक व्यक्ति के १६ हजार रानियाँ और ३ ५ करोड़ कुमार की बात आज के युग में बड़ी विचित्र सी लगती है जिस पर जल्दी से विश्वास भी नहीं हो पाता। इस कथा में वास्तविकता कितनी क्या है?

समाधान—पाठका को शास्त्र मे वर्णित ज्ञेय विषय को ज्ञय रूप मे समझना चाहिये। एक व्यक्ति के वहुसख्यक स्त्रियो की उस समय एक प्रथा विशेष थी। युगो का समय-समय पर एक विशेष रूप उभरता है। प्राचीन काल मे कई ऐसी परिस्थितिया थी की जिन परिस्थितियो से बाध्य होकर अनेक स्त्रियो के साथ विवाह का प्रसग भी उपस्थित होता था। जिस वक्त शक्ति सम्पन्न सम्राट भूमण्डल पर अपना राज्य स्थापित करने की दृष्टि से चलते थे, उस वक्त वे जितने अन्य राजाओ के राज्य को अपनी अधीनता मे लेते वे अधीनस्थ राजा पुन प्रतिपक्षी नही बन जाय, इस दृष्टि से उनकी राजकन्याओ के साथ विवाह का प्रसग भी आता था।

अपनी कन्या विवाहित कर देने पर प्रतिपक्षी के रूप मे वह, उन शक्ति सम्पन्न सम्राट क साथ सघर्ष मे नही उत्तर सकते। कुछ व्यक्ति शक्ति से निबल होने के साथ ही साथ किन्ही अन्य सबला से तथा स्वच्छदाचारियो से आतकित रहते थे। इसलिये वे निबल राजा भी अपनी कन्याओ का शक्ति सम्पन्न सम्राट के साथ अतीव अनुनय-विनय-पूवक विवाह कर देते थे। ऐसा करने म उनका निभयता का अनुभव होने लगता था जो आक्रान्ता एव स्वेच्छाचारी राजा होते, वे उन निबलो पर आक्रमण करना छोड देते थे। इसी प्रकार की अन्य भी कई परिस्थितिया होती थी कि जिससे विशिष्ट सम्राट अनेक कन्याओ के साथ विवाह करते थे।

इसी सन्दर्भ मे त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव के विवाहो को भी समझना चाहिय। श्री कृष्ण भी विराट त्रिखण्ड के स्वामी थे। उन तीनो खण्डो को अपने शासन के अन्तगत लेने के लिये तथा शासन को चलाने की दृष्टि से इतनी रानियो के साथ विवाहा का प्रसग असभव सा प्रतीत नही होता। किन्तु जिज्ञासुओ को सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट शास्त्रो मे जिस विषय का उपादेय रूप से प्रतिपादन हुआ है, वही मुख्य विषय है, उसी की पुष्टि जिस चरितानुवाद से होती है उस चरितानुवाद को प्रेरणा के रूप मे लेना चाहिये। इससे भिन्न जो विषय है, वह उस-उस समय की परिस्थितिया, रीतिरिवाजो एव लौकिक प्रथाओ का परिचायक है। इन सबका वर्णन भी प्रसगोपात दिया गया है। इतने मात्र से वे सब वर्णन ग्राह्य नही हो जाते। आज की परिस्थिति म सवथा भिन्न जो सामाजिक वर्णन आगमो मे आता है, उस वर्णन की जानकारी प्राप्त कर वतमान जीवन को उस वर्णन के अनुरूप नही बनाते हुए जन-जीवन का सुगमता पूवक कल्याण कैसे हो सके, उस विषयक सामाजिक एव लौकिक व्यवस्थाओ का चिन्तन अपेक्षित है। वतमान जनता के लिये भारभूत, विकार बढाने वाले लौकिक एव सामाजिक कोई भी रीति-रिवाज प्रचलित नही करना चाहिये। इस प्रकार के रीति-रिवाज को पोषण भी नही देना चाहिये। जन-कल्याणकारी रीति-रिवाजो का ही विशेष ध्यान रखना अपेक्षित रहता है।

अब रहा प्रश्न यादवीय परिवार के ३ ½ करोड कुमारों का ? यह करोड शब्द आज की करोड की संख्या से ही सम्बन्धित है, ऐसा निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता। यह तो उस समय की गणित सम्बन्धी संख्याओं से ही जाना जा सकता है। तत्सम्बन्धी गणित उपलब्ध हो तभी स्पष्ट रूप से कोटि की संख्या निर्धारित की जा सकती है।

कदाचित आज की गणित के अनुरूप कोटि संख्या को लिया जाय तो भी वे साढे तीन करोड कुमार द्वारिका में ही थे ऐसा नहीं समझकर द्वारिका से सम्बन्धित अर्थात् यादवीय वंश से अनुप्राणित थे। उनका तीन खण्ड में कहीं भी निवास हो सकता है, किन्तु उन सबका सम्बन्ध श्रीकृष्ण वासुदेव से सम्बन्धित होता था। क्योंकि श्रीकृष्ण तीन खण्ड के अधिपति थे, एक मात्र शासक थे। उनसे सम्बन्धित जितनी भी व्यवस्थाएँ थी वे उन्हीं की कहलाती थी। किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं कि वे सब उनके पास ही रहते थे। जैसे वर्तमान में प्रयोग किया जाता है कि प्रधान मन्त्री जी के पास कितनी फौज है ? तो भारत के सैनिकों की संख्या तुरन्त बतला दी जाती है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे सभी सैनिक प्रधानमन्त्री जी के साथ देहली में ही रहते हैं। वे सब भारत में यथास्थान फैले हुए हैं। एक रूपक और भी लिया जा सकता है, जैसे कि किसी श्रेष्ठी के लिये यह कहा जाय कि यह करोडपति है अर्थात् इसके पास करोडों की सम्पत्ति है। तो वे सभी पैसे अपने पास लेकर नहीं बैठा है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके अधिकार में इतनी सम्पत्ति है। जो देश-विदेश के किसी भी स्थल पर हो सकती है। इसी प्रकार यादवीय वंश के राजकुमारों का स्वामित्व भी श्रीकृष्ण का था। अतः श्रीकृष्ण के वर्णन के साथ कुमारों का वर्णन भी कर दिया गया।

एक दृष्टिकोण यह भी हो सकता है। कई शब्दों का प्रयोग व्युत्पत्तिया भी होता है एवं रूढ़ तथा सज्ञा की दृष्टि में भी होता है। यथा-वर्तमान में बीस की संख्या को 'कोडी' शब्द से पुकारा जाता है। क्यों नहीं सोलह या पच्चीस को कोडी कहा जाता ? इसका उत्तर यही है कि ये शब्द बीस की संख्या में रूढ़ है। दर्जन भी बारह की संख्या में रूढ़ है। इसी प्रकार समय-समय पर संख्या वाचक शब्दों के अर्थ में भी भिन्नता आती रहती है। उस समय की संख्या के सूचक शब्द विभिन्न रूप में प्रयुक्त होते हों एवं इस प्रकार के करोड शब्द किसी संख्या विशेष के सूचक हों तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस विषय में अधिक प्रतिभा का उपयोग करना, विशिष्ट लाभ प्रद नहीं रहता।

जिज्ञासा — उपवास का शास्त्रों में 'चउत्थ भत्त' क्यों कहा जाता है ?

समाधान — चतुर्थ भक्त की व्याख्या के विषय में कुछ विचार धाराएँ विभिन्न रूप से प्रचलित है। उनमें से एक यह है कि उपवास करने वाला व्यक्ति उपवास के पहले दिन एक बार भोजन

करे और दूसरे दिन चौवीस घन्टो का उपवास रखे और पारणा क रोज एक वक्त भोजन करे।

यह व्याख्या सवमान्य स्थिति को प्राप्त नही होती है, क्योकि जिस युग मे मनुष्य को दो वक्त का भोजन करने का अभ्यास है, उस समय तो यह व्याख्या लागू हा सकती हे। ऐसे व्यक्ति चार समय तक आहार को छोड सकते ह, किन्तु जिस समय के मानव एक दिन मे एक ही वक्त भोजन करते थे, उस ममय चार वक्त का त्याग कैसे सम्भावित था? क्योकि मानव उस समय चौबीस घटो म एक बार ही भाजन करता था। यदि वह चार वक्त के भोजन का त्याग करेगा तो उसके एक उपवास के स्थान पर चार उपवास हो जायेगे।

भगवान ऋपभदेव के समय से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक प्राय आम जनता मे चौबीस घटा मे एक वक्त ही भोजन करने का प्रचलन था तो उस समय भी उपवास के लिये "चउत्थ भक्त" सज्ञा उपयु क्त दृष्टिकोण से घटायी जायगी। क्योकि "चउत्थ भक्त" की अलग से परिभापा आगम मे कही पढने को नही मिलती ह। इस परिभापा को अर्थात् चार समय तक आहार छोडने की परिभापा से "चउत्थ भक्त" का तात्पय लिया जायगा तो अव्याप्ति दोप आना सभावित है।

वीतराग देवा के द्वारा प्ररूपित परिभापा, सिद्धान्त निदाप—१ अव्याप्ति २ अतिव्याप्ति ३ असम्भव-विकल रहित होते ह। त्रिदोप रहित व्यास्या करते समय आगमगत शब्दो का सभी दृष्टि से चिन्तन अपेक्षित है। आगमगत शब्दो की व्यास्या व्युत्पत्तिपरक भी होती ह तथा लक्षणादि से भी व्यारया की जाती है।

जहाँ व्युत्पत्तिपरक व्यारया दोप युक्त ज्ञात हो, वहा लक्षणा व सज्ञा से व्याख्या की जाती है। यथा-'गगाया घोप' का अथ निकाला जाता है। तदनुसार 'चउत्थ भक्त' उपवास का अथ चार वक्त के भोजन त्याग का न लेकर 'चउत्थ भक्त' यह उपवास की सज्ञा का सूचक है। सज्ञा स्थिति से ही इसकी विवेचना करने पर ऋपभदेव से लेकर भगवान महावीर तक इस परिभापा मे कोई दोप आने की सभावना नही रहती।

'चार भक्त' यह उपवास की सज्ञा है। 'पष्ठ भक्त' वेले का सज्ञा वाचक है। इसी प्रकार अप्टमादिक भक्त प्रत्याख्यान के विपय म भी समझना चाहिये।

जिज्ञासा —'अन्तगड सूत्र' मे वर्णित भगवान अरिप्टनेमि एव भगवान महावीर, ऋपभदेव के समय मे नही थे। तब भगवान ऋपभदेव के ममय अन्तगड सूत्र मे क्या वणन होगा?

समाधान —अनादि अनन्तकाल से द्वादशाङ्गी चली आ रही है। इसकी सत्ता कभी भी नष्ट नहीं होने वाली है। यह ध्रुव, नियत्, शाश्वत, अक्षय, अव्याबाध, अवस्थित और नित्य है। पचास्तिकाय का अस्तित्व जिस प्रकार शाश्वत है उसी प्रकार द्वादशाङ्गी भी शाश्वत

अनादिकालीन है।[1] किन्तु उसमें आए सिद्धान्तों या जिनाज्ञाओं को सरलता से बोध कराने के लिये समय-समय पर तीर्थंकरों ने उस समय में घटित घटनाओं का वर्णन किया है। अर्थात् चरितानुवाद का सहारा लिया है। इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि, जो घटनाएँ शास्त्रों में विवेचित हैं, वे नामान्तर से उसी रूप में घटित हुई हों। हाँ! यह हो सकता है कि चरितानुवाद में जिस शाश्वत सत्य को समझाने के लिये तीर्थंकर-भगवंत उस समय की घटित घटनाओं और चरित्रों के द्वारा श्रोताओं को उद्बोधित करते हैं, वे व्यक्तिगत-चरित्र परिवर्तित हो सकते हैं, किन्तु शाश्वत सत्य परिवर्तित नहीं होते।

जिस प्रकार स्कंदक परिव्राजक की घटना भगवान महावीर के सान्निध्य में घटी, उसी प्रकार नामान्तर से पूर्व में भी घटित हुई हो, यह आवश्यक नहीं है। यह तो स्पष्ट है कि स्कंदक परिव्राजक ने जिन प्रश्नों को भगवान से पूछा, उनका जो भगवान ने समाधान दिया, वह अनादिकालीन और शाश्वत है।

जिस प्रकार कर्मबद्ध आत्माओं का भव-भवान्तरों में भी मौलिक चैतन्य शाश्वत रहता है, उसी प्रकार चरित्र तो परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु उसमें रहने वाला उपदेश शाश्वत होता है। अतः स्कंदक परिव्राजक के चरित्र में रहने वाला उपदेश, शाश्वत सत्य, अनादि-कालीन है।

इसी परिप्रेक्ष्य में अन्तगड सूत्र में वर्णित प्रभु अरिष्टनेमि एवं प्रभु महावीर आदि के वर्णन को भी जानना चाहिये। घटनाक्रम, देश, काल एवं अनेक तीर्थंकरों के समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

जिज्ञासा — बहत्तर कलाएँ क्या है ?

समाधान — कलाओं के नाम इस प्रकार हैं — [१] लेखन [२] गणित [३] रूप बनाना [४] नाटक [५] गायन [६] वाद्य बजाना [७] स्वर जानना [८] वाद्य सुधारना [९] समान ताल जानना [१०] जुआ खेलना [११] लोगों के साथ वाद-विवाद करना [१२] पासों से खेलना [१३] चौपड़ खेलना [१४] नगर की रक्षा करना [१५] जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण करना [१६] धान्य निपजाना [१७] नया पानी उत्पन्न

[1] इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ। भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे। से जहानामए पंच अत्थिकाए न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे, एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।
—नंदी सूत्र

करना, पानी को सस्कार करके शुद्ध करना एव उष्ण करना [१८] नवीन वस्त्र बनाना, रगना, सीना और पहनना [१९] विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि [२०] शय्या बनाना, शयन करने की विधि जानना आदि [२१] आर्याछन्द को पहचानना और बनाना [२२] पहेलिया बनाना और बूझाना [२३] मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा मे गाथा आदि बनाना [२४] प्राकृत भाषा मे गाथा आदि बनाना [२५] गीति छद बनाना [२६] श्लोक (अनुष्टुप छद) बनाना [२७] नई चाँदी बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि [२८] सुवर्ण बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि [२९] चूर्ण—गुलाब, अबीर आदि बनाना और उसका उपयोग करना [३०] गहने घडना, पहनना आदि [३१] तरूणी की सेवा करना, प्रसाधन करना [३२] स्त्री के लक्षण जानना [३३] पुरुष के लक्षण जानना [३४] अश्व के लक्षण जानना [३५] हाथी के लक्षण जानना [३६] गाय-बैल के लक्षण जानना [३७] मुर्गे के लक्षण जानना [३८] छत्र लक्षण जानना [३९] दण्ड लक्षण जानना [४०] खड्ग लक्षण जानना [४१] मणि के लक्षण जानना [४२] काकणी रत्न के लक्षण जानना [४३] वास्तु विद्या—मकान, दूकान आदि इमारतो की विद्या जानना [४४] सेना के पडाव का प्रमाण आदि जानना [४५] नया नगर बसाने आदि की कला जानना [४६] व्यूह—मोर्चा बनाना [४७] विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रखना [४८] सेना सचालन करना [४९] प्रतिचार—शत्रु की सेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना [५०] चक्र व्यूह—चाक के आकार मे मोर्चा बनाना [५१] गरूड के आकार का व्यूह बनाना [५२] शकट व्यूह रचना [५३] सामान्य युद्ध करना [५४] विशेष युद्ध करना [५५] अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टि युद्ध करना (५८) बाहु युद्ध करना (५९) लता युद्ध करना (६०) बहुत को थोडा और थोडे को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण चलाने मे कुशल होना (६३) चाँदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कडा—कुडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्च्छित) का जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृत तुल्य) करना और (७२) काक, घूक आदि पक्षिया की बोली पहचानना।

यह प्राचीन काल की कलाम्रा का वर्णन है। जिज्ञासुओ को हँस-चोच की बुद्धि बनाकर जीवनोत्थान एव जन-कल्याण सवन्धी कलाओ पर ध्यान देना उपयुक्त रहता है न कि सभी कलाओ पर। —प्रथम वर्ग समाप्त—

बीओ वग्गो द्वितीय-वर्ग

उत्थानिका

प्रथम वर्ग के दस अध्ययन, दस कुमारो के नाम से बतलाए गये थे। उन दस कुमारो के पिता का नाम वृष्णि एव माता का नाम धारिणी था। प्रस्तुत द्वितीय वग मे भी आठ अध्ययन प्रतिपादित किये गये है। य आठ अध्ययन भी आठ राजकुमारा के नाम से ही कह गये हैं। इनके माता-पिता का नाम भी महाराज वृष्णि एव धारिणी ही था। एक ही माता-पिता के इन आठ राजकुमारो ने भी सवज्ञ सवदर्शी अहन्त-अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे प्रवज्या अगीकार की थी।

आठो ही राजकुमार प्रथम-वग मे वर्णित राजकुमारो की तरह ससार से विरक्त हो, दीक्षित होते हैं। १६ वप पय त सयम पर्याय का पालन करते है, अन्त मे एक मास के मलेखना-सथारा के साथ सभी कर्मों का अन्त करके, सिद्धत्व को प्राप्त करते है।

आज के युग मे एक पुत्र या पुत्री को दीक्षा देने मे भी उनके माता-पिता, सगे-सम्बन्धी कितनी बाधाएँ उपस्थित करते हैं? जबकि एक ही माता-पिता के आठ-आठ, दस-दस राजकुमार जवानी की देहली पर आते-आते दीक्षा ग्रहण कर लेते थे, और माता-पिता भी उनकी योग्यता को देख कर सहप अनुमति दे देते।

आज के लोगो को ऐसे नर-श्रेष्ठ माता-पिताओ से शिक्षा लेनी चाहिये।

बीओ वग्गो । द्वितीय-वर्ग
1–8 अध्ययन

उत्थानिका

12–"जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते ! वग्गस्स अतगडदसाण समणेण भगवया महावीरेण कइ अज्झयणा पण्णत्ता?"

"भगवन् ! यदि प्रथम वग मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के दस अध्ययन फरमाये, जिन्हे मैंने श्रीमुख से सुना तो भगवन् ! द्वितीय वर्ग मे भगवान ने कितने अध्ययन फरमाये हैं ?"

"एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता ।'

"जम्बू ! मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के द्वितीय वग के आठ अध्ययन फरमाये हैं । यथा—

गाहा –

1 अक्खोभ 2 सागर खलु 3 समुद्द 4 हिमवत 5 अचल नामे य 6 धरणे य 7 पूरणे वि य 8 अभिचदे चेव अट्ठमए ।।

(१) अक्षोभकुमार (२) सागरकुमार
(३) समुद्रकुमार (४) हैमवन्तकुमार
(५) अचलकुमार (६) धरणकुमार
(७) पूरणकुमार (८) अभिचन्द्रकुमार ।

(उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी । जहाँ महाराज वृष्णि एव धारिणी नामकी रानी भी निवास करते थे)

"जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्म । सोलसवासाइ परिआओ सेत्तु जे मासियाए सलेहणाए सिद्धी ।"

जैसा कि प्रथम वग मे वणन किया गया, उसी प्रकार यहा भी आठ अध्ययनो का सार जानना चाहिये । ये आठो राजकुमार भी गुणरत्न सवत्सर नामक तप कम आदि करते हुए सोलह वष सयम पर्याय का पालन कर शत्रुजय पवत पर मासिकी सलेखना सथारा पूवक सिद्धी को प्राप्त करते है ।

"एव खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी जो मोक्ष को प्राप्त हो चुके है, उन्होने आठवें अग अतकृद्दशागसूत्र के द्वितीय वग का यह अथ फरमाया है ।

।। बीओ वग्गो सम्मत्तो ।।

।। द्वितीय वग समाप्त ।।

द्वितीय वर्ग—जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — क्या प्रथम वगगत राजकुमारो के माता–पिता तथा द्वितीय वगगत वर्णित राजकुमारो के माता–पिता एक ही थे ?

समाधान — इस विषय मे निश्चित पूवक कुछ भी नही कहा जा सकता। तथापि यह बात तो स्पष्ट है कि प्रथम वगगत एव द्वितीय वगगत राजकुमारो के माता–पिता के नामों की ही समानता को देखते हुए उन्हे एक ही माता–पिता का नही कहा जा सकता। माता–पिता के नामो की समानता तो बहुत से स्थलो पर मिल जाती है, किन्तु इस समानता से एक ही माता–पिता के पुत्र हैं, यह प्ररूपण नही किया जा सकता।

दूसरी बात यह है कि यदि प्रथम वग एव द्वितीय वगगत राजकुमारो के माता–पिता एक ही होते तो प्रथम वगगत दस राजकुमारो मे से कुछेक के नामो की तुल्यता द्वितीय वगगत आठ राजकुमारो मे नही होती। जबकि अक्षोभ, सागर, समुद्र, अचल आदि नाम प्रथम–द्वितीय वग मे एक ही समान है।

यह सहज बात है कि एक ही माता–पिता अपने पुत्रो के एक समान नाम नही रखते, अर्थात् एक नाम वाले दो पुत्र नही होते। एक बात और यह है कि अगर इनके माता–पिता एक ही होते तो फिर शास्त्रकार इन सबका वणन प्रथम वग मे ही कर देते। अवशेष राजकुमारो की भूलावण की तरह इनकी भूलावण भी दे देते। लेकिन ऐसा न कर अलग से पूरा वर्ग दिया है। इन सभी तथ्यो से यह बात सत्यता के अधिक सन्निकट है कि प्रथम–वगगत राजकुमारो के माता–पिता दूसरे थे। द्वितीय वगगत वर्णित राजकुमारो के माता–पिता दूसरे थे। माता–पिता के नामो की समानता हो सकती है।

जिज्ञासा — शास्त्र मे 'सिद्ध' शब्द आया है। इस सिद्ध, मुक्त अवस्था से क्या तात्पय है ? क्या वहाँ आत्मा को सुख मिलता है ?

समाधान — अनादि अनन्त काल से यह आत्मा चतुर्गति चौरासी लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण करती हुई आ रही है। इसका मूल कारण आत्मा के साथ कर्मों का अनुबध है। लेकिन जब आत्मा अपने सत्पुरुषार्थ के बल से आत्मा से सबद्ध सभी कर्मों का अपुनर्भाव से क्षय कर डालती है, तब आत्मा का मौलिक स्वरूप उजागर होता है, जिसे परमात्म रूप, सिद्धत्व रूप, ईश्वरीय रूप कुछ भी कहा जा सकता है। उस अवस्था मे आत्मा, उर्ध्वलोक के अन्त में, जिसके बाद अलोक प्रारभ हो जाता है, कभी भी वह असिद्ध, अबुद्ध, अमुक्त नही हो सकती।

मुक्तावस्था का सुख अपरिमेय होता है, जिसकी अनुभूति की जा सकती है, अभिव्यक्ति नहीं। जैसे किसी व्यक्ति को पूछा जाय, तुमने असली घी खाया है ? बताओ उसका स्वाद कैसा है ? क्या वह बता सकता है ? नही। वह यही कहेगा कि तुम्हे भी स्वाद मालूम करना हो तो तुम भी खाकर देख लो। जब बाह्य वस्तुओ की अनुभूति से भी अभिव्यक्ति नही हो पाती तो मुक्त अवस्था के अनन्त सुखो की अनुभूति की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ? कभी नही हो सकती।

शास्त्रकार ने इस बात को समझाने के लिये एक रूपक दिया है। जिसका सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

एक जगली भील था। किसी बडे देश का राजा उस पर महरबान हो गया। उस भील ने अपनी जिन्दगी मे जगली झोपडियो के अलावा कभी शहर नही देखे थे। वह एक बार राजा से मिलने शहर मे जा पहुँचा। उसने वहाँ के बडे-बडे महलो को देखा। जब वह राजा के पास पहुँचा तो राजा ने उसका बहुत स्वागत किया। अच्छी से अच्छी मिठाइयाँ एव सुस्वादु भोजन खाने को मिला। रहने के लिये आलीशान महल और सोने के मखमली कालीन। आदेश को पालन करने वाले नोकरो की भरमार। इस माहौल मे दो-चार दिन रह कर जब वह भील पुन अपने स्थान पर लौटा तो उसके अन्य भाइयो ने उसे पूछा कि तुम कहा गये थे ? जिन्होने कभी महल को नही देखा एव उन मिष्ठानो का स्वाद भी नही चखा, ऐसे लोगो को वह भील कभी नही समझा सकता कि मैं कहा गया था और वहाँ क्या अनुभव किया ?

कूप मडूक को समुद्र मडूक कभी समझा नही सकता कि समुद्र कितना बडा है। इसी प्रकार ससारी व्यक्ति को मोक्ष सुख समझाया नही जा सकता, वह तो अनुभूति का विषय है।

मोक्ष का सुख इन्द्रियातीत है। ससार का सुख इन्द्रियो से सम्बन्धित है। अत ऐन्द्रिक सुख की उपमा मोक्ष सुख के लिये नही दी जा सकती। फिर भी इस तथ्य को समझने के लिए एक रूपक और दिया जा सकता है—

दस कोस तक चलकर अत्यन्त थक जाने वाला व्यक्ति घर पर आकर स्नान आदि से निवृत हो भोजन करके जब सो जाता है, तब उसे गहरी नीद आने लगती है। पर्याप्त नीद लेकर जब उठता है तो वह यह कहते पाया जाता है कि मुझे आज नीद मे बहुत आनन्द आया। उसे पूछा जाय-भाई ! क्या नीद मे कोई स्वप्न देखा ? गीत-गाने सुनें? मिठाइया खायी ? तो वह कहेगा कि नही, मैंने नीद मे न तो स्वप्न देखा, न मिठाइयाँ खायी और न ही गीत-गाने सुनें, फिर भी जिस आनन्द की अनुभूति उसने की वह बता नही सकता। जब नीद मे भी इन्द्रियातीत जिस सुख की अनुभूति होती है, उसकी अभिव्यक्ति भी मानव नही कर सकता तो उसमे

अनन्त-अनन्त गुणा अधिक सुख की अभिव्यक्ति जो मुक्तावस्था मे होती है उसकी अभिव्यक्ति तो की ही नही जा सकती। और न ही उसे एन्द्रिक सुखो की उपमाओ से उपमित ही किया जा सकता है।

शास्त्रकारो ने स्पष्ट कहा है—

तक्का तत्थ न विज्जइ,
मइ तत्थ न गाहिया।

तर्क द्वारा जिसे जाना नहीं जा सकता, मति उसे ग्रहण नही कर सकती।

ऐसी सिद्धावस्था ही आत्मा का चरम एव परम लक्ष्य है। प्रत्येक भव्य आत्मा इसके लिये प्रयत्नशील रहती है। इस सुख को पा लेने के बाद किसी सुख की कामना ही अवशेष नही रह जाती। इच्छाओ के स्रोत को ही सशोधित कर दिया जाता है। आत्मा अजर, अमर, अविकार, अशरीरी, अविनाशी परम स्वरूप को उजागर कर लेती है। ससार की कोई भी भयानक से भयानक आँधी या तूफान आत्मा के उस स्वरूप मे तनिक भी प्रकपन नही ला सकता।

तइओ वग्गो तृतीय-वर्ग

उत्थानिका

तृतीय-वग की चर्चा, तेरह अध्ययनो मे विभक्त करके की गयी है। उन तेरह अध्ययना के नाम इस प्रकार है —

(१) अनीयस कुमार (२) अनन्तसेन कुमार (३) अनहित कुमार (४) विद्वत् कुमार (५) देवयश कुमार (६) शत्रुसेन कुमार (७) सारण कुमार (८) गजसुकुमाल कुमार (९) सुमुख कुमार (१०) दुमुख कुमार (११) कूपक कुमार (१२) दारुक कुमार (१३) अनादृष्टि कुमार।

प्रथम के छ कुमारो के पिता का नाम महाराज वसुदेव एव माता का नाम देवकी महारानी था। और उनके पालक पिता का नाम नाग गाथापति एव सुलसा नामक गाथा-पत्नी था।

इन छ कुमारो की कथावस्तु के साथ ही कृष्ण-वासुदेव के जीवन की झलक दर्शाना भी अप्रासगिक नही होगा —

कस[1] का एक छोटा भाई था अतिमुक्तक। उसे एवता कुमार भी कहते है। पिता को वदी के रूप मे देखकर उसे बडा आघात लगा। उसने कस को ऐसा न करने के लिये बहुत समझाया, पर जब कस ने कान न दिया तो वह गृह त्याग कर साधु हो गया। उसने तपस्या करके अतिशय ज्ञान प्राप्त कर लिया।

कस ने एक बार विचार किया-वसुदेव जी मेरे परमोपकारी हैं। उन्होने मेरा पालन-पोषण किया है, शस्त्र विद्या मे पारगत किया है, राजा बनाया है। यह सारा वैभव उनकी ही कृपा का फल है। मुझे उनका प्रत्युपकार करना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उसने अपने काका देवक की कन्या देवकी का वसुदेवजी के साथ विवाह कर देने का निश्चय किया। वसुदेवजी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विवाह का मुहूत निश्चित किया गया। नियत समय पर वसुदेवजी वर बनकर उपस्थित हुए। मगल वाद्य बजने लगे। नगर सुदर ढग से सजाया गया। जीवयशा मस्त और उन्मत्त हो रही थी।

सयोगवशात् अतिमुक्त मुनि घुमते-घुमते वही आ पहुँचे। देवरजी को आते देख जीवयशा प्रसन्न हुई। उसने मुनि से कहा-देवरजी! देवकी का विवाह हो रहा है। आपके ज्येष्ठ भ्राता बडे शूरवीर, बुद्धिमान और कुशल है। विशाल राज्य के स्वामी और प्रतापशाली हैं। इनर

[1] आत्मदर्शन—पृष्ठ–146

आप भीख माँग-माग कर जिन्दगी बिता रहे है । देवरजी ! आपको यह शोभा नही देता । यह भिक्षुक वृत्ति त्याग कर महल मे पधार जाओ ।"

मद मे चूर जीवयशा कहती है—"एक बाप के दो बेटे हो, एक राज्य करे और दूसरा भीख माँगता फिरे ? लालाजी ! आप कुल को कलक लगा रहे हो । कमाने की शक्ति नही तो क्या चिन्ता है । आपके भाई समर्थ हैं और वे आपका पेट भर देंगे । अतएव छोडो इस वेष को । महल मे रहो । देखो, आपकी बहिन देवकी का विवाह हो रहा है ।"

ससार मे बहुत से अज्ञानी हैं, जिनकी धारणा है कि अकर्मण्य लोग ही साधु बनते हैं । जो कमा खा नही सकते, वे भीख माँगकर पेट पालने के उद्देश्य से साधु बन जाते हैं । ऐसे लोग साधुओ की अवहेलना करते हैं, हँसी करते है । उन्हे जीवन के उच्च कर्त्तव्य का भान नही है । वे पशुओ की तरह खाने-पीने और विषयभोग मे ही व्यस्त रहते हैं । जीवयशा भी इसी श्रेणी मे थी ।

अतिमुक्त मुनि तपस्वी थे, ज्ञानी थे, लब्धिधारी थे । किन्तु जीवयशा की अहकार पूर्ण बातें सुनकर छद्मस्थ होने के कारण क्षुब्ध हो उठे । बोले–"रानी ! आज तू अपने भाग्य पर इतरा रही है, मदोन्मत्त हो रही है, अपने पति को बडा शक्तिशाली समझकर सराह रही है, पर यह क्यो भूलती है कि तेरे श्वसुर कारागार में बन्दी है । वे भयानक यातनाएँ भोग रहे हैं और तुम दोनो गुलछर्रे उडा रहे हो ! तू अपने पिता के साथ निर्दय व्यवहार करने वाले पति से कुछ भी नहीं कहती । उसके अन्याय अत्याचार का प्रतिकार नही करती और महात्मा की अवहेलना करती है ! मैं यही देखने को आया था कि तुम लोगो के हृदय का जहर निकला है या नही ? पर मालूम होता है, वह अन्त तक निकलने वाला नही । लेकिन रानी, याद रखना, तुम्हारे यह राग-रग थोडे समय के ही हैं । तू आज जिस देवकी के विवाह का उत्सव मना रही है, उसी का सातवा पुत्र तेरे पति और पिता को परलोक का पाहुना बनाएगा ।"

मुनि के अन्तिम शब्द सुनकर जीवयशा का कलेजा काँप उठा । उसके हृदय को गहरा आघात पहुँचा । उसने सोचा-मुनि ने शाप दे दिया है । प्रभो ! अब क्या होगा ?

सयोग की बात समझिये कि उसी दिन एक अद्‌भूत घटना और घट गई । कस दरबार मे बैठे थे । सभासद उपस्थित थे, उसी समय एक विद्वान् नैमित्तिक सभा मे आया । कस ने उससे प्रश्न किया—बतलाइये, मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ?

आगत ज्योतिषी चापलूस नही था । वह नि स्वार्थ, सत्यप्रिय और सरल हृदय विद्वान था । उसे अपने ज्ञान से जैसा प्रतीत हुआ, बिना लाग-लपेट के उसने साफ-साफ कह दिया ।

उसने कहा—महाराज, क्षमा करें । आपके पूछने से कहता हूँ, महाराज वसुदेव की रानी देवकी के पुत्र के हाथ से आपकी मृत्यु होगी ।

कस भीतर ही भीतर भयभीत हो गया । उसका मुँह उतर गया । फिर भी ऊपर से अकड दिखलाता हुआ बोला—पण्डित ! तुम भी खूब ज्योतिष सीख कर आये हो ! मुझे मारने वाला इस ससार मे जन्म नही ले सकता ।

आवेश मे आकर कस ने अपने अमात्य से कहा—मन्त्रीजी, इन महापण्डित को कारागार मे बन्द कर दो और इनके पोथी-पत्रा छीन लो । जो मुझे मारने वाला आयेगा वही इन्हे मुक्त करेगा ।

इसके बाद कस ने ज्योतिषी से कहा—मैंने तो यो ही प्रश्न कर दिया था, बाकी तो तुम्हारा ज्योतिष शास्त्र मेरी तलवार के सामने पानी भरता है । हम ग्रहो और नक्षत्रो से नही डरते । मेरी तलवार की चमक के सामने ग्रह-नक्षत्र उसी प्रकार मन्द पड जाते हैं, जैसे सूर्य के सामने ।

थोडी देर के बाद कस दरबार मे उठ कर महल मे आया । वह मन ही मन चिन्तित और व्याकुल हो रहा था । इधर महारानी भी महात्मा की भविष्यवाणी सुनकर चिन्ताकुल हो रही थी । वह आज कोप-भवन मे जाकर बैठी थी ।

कस महारानी के पास वही जा पहुँचा । उसने रानी की उदासी का कारण पूछा तो उसने कहा—प्रियतम ! बडे दु ख की बात है । कहने का साहस नही होता । फिर भी बिना कहे रह नही सकती । बात यो हुई—आज आपके भाई आये थे । मैंने सहज भाव से कहा—महल मे ही आनन्दपूर्वक रहो । भीख मागकर क्यो अपने भाई की प्रतिष्ठा को कलकित करते हो ? यह सुनकर वे नाराज हो गये और शाप देकर चले गये कि देवकी की सातवी सन्तान तेरे पिता और पति का घात करेगी ।

तब कस ने भी सभा मे घटित घटना कह सुनाई । इसके पश्चात् दोनो थोडी देर के लिये मौन हो गये । दोनो का चित्त व्याकुल और क्षुब्ध हो रहा था ।

कस ने सोचा—देवकी स्त्री है और फिर मेरी बहिन है । उसके प्राण ले लूगा तो लोग क्या कहेंगे ? इसके अतिरिक्त वसुदेवजी का प्रभाव बहुत है । उनका मेरे ऊपर उपकार भी है । मैं उन्हे नाराज नही करना चाहता । फिर भी कुछ तो करना ही चाहिये । जीवन-मरण का प्रश्न है । इसे किसी प्रकार हल तो करना ही होगा ।

आखिर कपटी कस ने एक उपाय खोज निकाला । वह वसुदेवजी के पास पहुँचा और उनके

ज्यों-ज्यों प्रसव का समय सन्निकट आने लगा, कस ने पहरा अधिक कडा कर दिया। कितने ही सरदार पहरेदार बन कर चौकसी करने लगे। फिर भी जन्मने वाले बालक के पुण्य पर भरोसा करके वसुदेवजी और देवकी धैय धारण किये समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी आई। अर्द्धरात्रि का समय हुआ। उसी समय महारानी देवकी के उदर से कृष्णजी का जन्म हुआ। जन्म के समय भी वह अतीव तेजस्वी थे और प्रबल पुण्य लेकर जन्मे थे। उनका असाधारण तेज देखकर देवकी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

आप जानते है कि तीथकर, चक्रवर्ती, वासुदेव जसे महापुरुषों की देवता भी सेवा करते हैं। कृष्णजी का जन्म होते ही देवकी और वसुदेवजी के समस्त बन्धन टूट गये। देवकी न वसुदेव को जगान के उद्देश्य से पुकारा—'महाराज! किन्तु महाराज तो जाग ही रहे थ। दोनो न देखा-बन्धन टूट गये ह।

देवकी न उतावली होकर कहा—नाथ! "यही सर्वोत्तम अवसर है। आप गोकुल जाइये और इस बालक को यशोदा को सौप आइये। उसके कोई सन्तान हुई हो तो लेते आइये।"

महाराज वसुदेव ने देखा—कारागार के द्वार खुले हुए हैं। बडे-बड ताले टूट पड हैं और पहरेदार, सरदार खुर्राटे ले रहे हैं। वसुदेवजी कृष्ण को लेकर रवाना हो गये। एक अज्ञात छाया दीपक लेकर उनके आगे-आगे चलने लगी। वर्षा हो रही थी। बिजली चमक रही थी। मानो प्रकृति विद्युत-प्रदीप जगाकर पुण्य पुरुष कृष्ण का दर्शन कर रही थी और एक बार के दर्शन से तृप्त न होकर पुन पुन देख रही थी।

वसुदेव जी ने भाग्य पर ही भरोसा न करके पुरुषार्थ का आश्रय लिया। वे पुरुषार्थ न करते तो काय की सिद्धि होती या न होती, कौन कह सकता है? भाग्य के साथ पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के साथ भाग्य हो तो काय की सिद्धि अवश्य होती है।

वसुदेवजी चलकर जब नगर के फाटक पर आये तो वह बन्द था। बड-बडे ताले जडे हुए थे, जजीरें पडी हुई थी। वह सोचने लगे—फाटक को कैसे पार किया जाय? उसी समय कृष्ण ने अपने पर का अगूठा फाटक को छुआ दिया और तत्काल ही ताले एव जजीरे टूट कर, फाटक खुल गया।

इसी फाटक के उपर महाराज उग्रसेन अपना बन्दी जीवन यापन कर रह थे। असमय मे द्वार खुलने की आवाज सुनी तो—उग्रसेन बोले—"केई कोई" अर्थात्—कौन है? तब वसुदेवजी ने सांकेतिक भाषा मे उत्तर दिया—"तुम बन्धन खोले साई।" उग्रसेन ने मन ही-मन सजात शिशु को आशीष दी। वसुदेवजी जरा भी विलम्ब किय बिना आगे चल दिये।

जब यमुना के किनारे पहुँचे तो देखा—यमुना मे पूर ग्राया हुग्रा है। मगर वसुदेवजी हिम्मत न हारे। उन्हे विश्वास हो गया था कि जिस देवी शक्ति ने ग्रब तक ग्रसभव को सभव बनाया है, वह इस बाधा को भी दूर कर देगी। मुझे तो पुरुषार्थ करते चलना चाहिए। यह सोचकर वसुदेवजी निश्शक भाव से यमुना मे प्रविष्ट हुए। घुटनो तक पानी ग्राया। फिर कमर तक, गले तक, ग्रौर नाक तक ग्राया। तब कृष्ण ने ग्रपने पैर का ग्रगूठा लगाया कि इधर का पानी इधर ग्रौर उधर का पानी उधर रह गया। बीच मे रास्ता बन गया। उस रास्ते से वे यमुना पार कर गोकुल मे जा पहुँचे।

नन्द के घर पहुँच कर उन्होने कृष्ण को यशोदा के सुपुर्द किया ग्रौर यशोदा के उदर से उत्पन्न बालिका को लेकर वापस देवकी महारानी के पास लौट ग्राये। उनके लौटते ही यमुना ग्रपने स्वभाविक वेग से बहने लगी। द्वारा के किवाड ग्रौर ताले ग्रादि यथापूर्व हो गये। जैसे कोई नवीन घटना घटित ही नही हुई हो।

इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात् बालिका के रूदन की ध्वनि सुनकर पहरेदार जागे। उन्होने भीतर प्रवेश करके पूछा—क्या हुग्रा ? देवकी ने बालिका का पहरदारो के हाथ सौप दी। पहरेदार उसे लेकर कस के पास पहुचे।

कस ने देखा कि देवकी की सातवी सन्तान छोकरी हुई है, तो उसे ग्रनिर्वाय ग्रनिर्वचनीय सन्तोष हुग्रा। सोचने लगा—यह छोकरी मुझे क्या मारेगी ? इसका घात करना उचित नही है, तथापि इसे नकटी कर देना चाहिए। जब चाहूँगा तभी इसका गला घोट दूगा।

ग्रब कस के घमण्ड का पार न था। वह ग्रपने को मृत्युन्जय समझने लगा। उसने वसुदेव ग्रौर देवकी को बन्धनमुक्त कर दिया।

गोकुल मे बात फैल गई कि यशोदा रानी के उदर से बालक का जन्म हुग्रा है ग्रौर वह बडा ही सुन्दर तथा तेजस्वी है। पर धीरे-धीरे कस को भी ग्रसलियत का पता चल गया ग्रौर वह कहने लगा—वसुदेव ने मेरे साथ बडा धोखा किया। मगर मुझे परवाह नही। मैं इतना शक्तिशाली हूँ कि वह छोकरा मेरा कुछ भी नही बिगाड सकता।

कृष्ण सोलह वर्ष तक गोकुल मे रहे। बडे होने पर उन्होने ग्रपनी शक्ति से ग्रत्याचारियो का ग्रन्त किया। जरासध मारा गया, कस का विध्वस हुग्रा, दुर्योधन का निधन हो गया, ग्रौर शिशुपाल भी काल के गाल मे चला गया।

इन कुमारो का ग्रवशेष वर्णन तथा ग्रन्य ग्रध्ययनो का वर्णन तृतीय वर्गगत मूलपाठ मे स्पष्ट है। ग्रत पुनरुक्ति न हो इसलिए उत्थानिका मे नही दिया जा रहा है।

गजसुकुमाल अनगार के उपर खैर के अगार रखने के विषय मे एक किंवदन्ति यह भी सुनने एव पढने को मिलती है कि निन्यानवे लाख भवपूर्व एक पति के दो पत्नियाँ थी, उसमे एक के लडका था, एक के नही था । जिसके लडका नही था, वह लडके वाली से ईर्ष्या करती थी । एक दिन लडके के मस्तिष्क पर फोडे हो गये, तो इसके इलाज के लिये बिना लडके वाली ने कुटिलता के साथ बताया कि इसके मस्तिष्क पर गर्म रोटी करके रख दो, जिससे सब फोडे ठीक हो जायेंगे । उसने सोचा, ऐसा करने पर बच्चा खत्म हो जायगा और हम दोनो फिर एक समान हो जायेंगे । बच्चे की माता इस कुटिलता को समझ न पाई और उसने वैसा ही कर दिया, जिससे बच्चा खत्म हो गया । यही पर उस आत्मा ने निकाचित् कर्मो का बन्धन किया । जो निन्यानवे लाख भव के बाद उदय मे आया । बच्चे की आत्मा तो सोमिल नामक ब्राह्मण बनी और उस महिला की आत्मा, जिसने कुटिलता के साथ हिंसक उपाय बताया था, वह गजसुकुमाल अनगार की आत्मा के रूप मे आई । यहाँ पर सोमिल ब्राह्मण ने अपने पूर्वभव के सभी संस्कारो के कारण गजसुकुमाल अनगार पर खैर के अगारे रखे थे । जैसा भी हो गजसुकुमाल की आत्मा ने सम्पूर्ण कर्मो का क्षय किया तथा मुक्तावस्था प्राप्त की ।

तइओ वग्गो   तृतीय वर्ग

उत्थानिका

13— जइ ण तच्चस्स । उक्खेवम्रो^ ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण म्रट्ठमस्स म्रगस्स म्रतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स तेरस म्रज्झयणा पण्णत्ता तजहा—

1 म्रणीयसे, 2 म्रणतसेणे, 3 म्रणिहय, 4 विऊ, 5 देवजसे, 6 सत्तुसेणे, 7 सारणे, 8 गए, 9 सुमुहे, 10 दुम्मुहे, 11 कूवए, 12 दारूए, 13 म्रणादिट्ठी ।

"जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण म्रट्ठमस्स म्रगस्स म्रतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स तेरम म्रज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! म्रज्झयणस्स म्रतगडदसाण के म्रट्ठे पण्णत्ते ।"

जम्बू स्वामी न सुधमा स्वामी मे निवेदन किया-भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा तो भगवन ! प्रभु न तीसरे वग का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? तब सुधर्मा स्वामी न कहा—

हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी न तृतीय वग के तेरह अध्ययन बतलाएँ हैं । जैसे —

(१) अनीयस कुमार, (२) अनन्तसेन कुमार, (३) अनिहत कुमार, (४) विद्वन कुमार, (५) देवयस कुमार, (६) शत्रुसेन कुमार, (७) सारण कुमार, (८) गज कुमार, (९) सुमुख कुमार, (१०) दुमुख कुमार, (११) कूपक कुमार, (१२) दारुक कुमार, (१३) अनादृष्टि कुमार ।

ये तेरह अध्ययन इन तेरह राजकुमारो के नाम से व्याख्यायित किये गये ह ।

"हे भगवन् ! यदि मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी न अष्टम-अग अतकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन बतलाए ह, तो भगवन् अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन म प्रभु न क्या फरमाया ह ?"

प्रथम अध्ययन   अनीयस

14— एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण भद्दिलपुरे णाम नयरे होत्था—वण्णम्रो । तस्स ण

हे जम्बू ! उस काल उस समय म भद्दिलपुर नामक एक नगर था । उसके (ईशान कोण) उत्तर पूर्व दिशा के मध्य भाग मे श्रीवन नामक श्रेष्ठ उद्यान था ।

भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सिरिवणे णाम उज्जाणे होत्था—वण्णश्रो[B]। जियसत्तू राया।

तत्थ ण भद्दिलपुरे नयरे नागे णाम गाहावई होत्था। श्रड्ढे जाव[C] श्रपरिभूए। तस्स ण नागस्स—गाहावइस्स सुलसा नाम भारिया होत्था—सुकुमाल जाव[D] सुरूवा।

उस नगर के महाराज जितशत्रु थे। उसी भद्दिलपुर नगर मे नाग नामक ऋद्धि आदि स सम्पन्न गाथापति के सुलसा नामक भार्या-धमपत्नी थी। वह अत्यन्त सुकोमल, यावत् रूपवती थी।

15—तस्स ण नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए श्रत्तए श्रणीयसे नाम कुमारे होत्था—सुकुमाले जाव[Γ] सुरूवे पचधाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे जाव[F] गिरिकदरमल्लीणे व चपगपायवे सुहसुहेण परिवड्ढइ।

उस नाग नामक गाथापति का पुत्र सुलसा नामक भार्या का आत्मज अनीयस कुमार था, जो अति कोमल एव रूपवान था। पाँच धाय माताओ द्वारा परिपालित था। यथा-क्षीरधात्री-दूध पिलाने वाली, मज्जयनधात्री-स्नान कराने वाली, मडन धात्री-अलकार पहनाने वाली, क्रीडाधात्री-खेल खिलाने वाली, अकधात्री-गोद मे खिलाने वाली आदि जीवन वर्णन दृढप्रतिज्ञ की तरह समझ लेना चाहिये। अनीयसकुमार गिरिगुफा मे सर्वधित चपकलता (वृक्ष) के समान बढने लगा।

16—तए ण त श्रणीयस कुमार सातिरेगश्रट्ठवासजाय श्रम्मापियरो कलायरियस्स उवणेत्ति जाव[A] भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

तए ण त श्रणीयस कुमार उम्मुक्कबालभाव जाणित्ता श्रम्मापियरो सरिसियाण जाव[B] बत्तीसाए इब्भवर कण्णगाण एग दिवसेण पाणि गेण्हावेंति।

जब वह अनीयस कुमार कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता पिता ने उसे विद्या ग्रहण करने के लिये कलाचार्य के पास भेजा। कलाओ का पूर्ण अध्ययन कर बाल भाव को छोड कर, जब अनीयस कुमार भोग भोगने मे समर्थ हो गया, तब उसके माता-पिता अनीयस कुमार के उन्मुक्त बालकभाव को जानकर अर्थात् उसे यौवन की देहली पर पद धरण रखते देखकर उसके अनुरूप अवस्था, लावण्य, चतुर, रूप और गुण म निपुण बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ एक ही दिन मे उसका विवाह कर दिया।

तए ण से नागे गाहावई ग्रणीयसस्स कुमारस्स इम एयारूव पीइदाण दलयइ, तजहा-बत्तीस हिरण्णकोडीग्रो जहा महाबलस्स जाव[C] फुट्टमार्णोहि मुइगमत्थर्एहि भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ ।

विवाह के पश्चात् नागकुमार गाथापति न ग्रनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय वत्तीस करोड दिव्य कोटि आदि दिय । जिस प्रकार महावलकुमार का वर्णन ग्राता ह, उसी प्रकार इसका वर्णन भी जानना चाहिय । ग्रनीयस कुमार ग्रपने विशाल राजप्रासाद मे, ग्रनक भाँति ग्रठखेलिया करते हुए, मृदग की ध्वनि मे मस्त हो ग्रपन जीवन का व्यतीत करने लगा ।

17– तेण कालेण तेण समएण ग्ररहा ग्ररिट्ठनेमी, जाव[D] समोसढे सिरिवणे उज्जाणे । ग्रहा जाव पडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा ग्रप्पाण भावेमाणे विहरइ । परिसा निग्गया ।

तए ण तस्स ग्रणीयसस्स त महा0[E] जहा गोयमे तहा ग्रणगारे जाए नवर–सामाइयमाइयाइ चउद्दसपुव्वाइ ग्रहिज्जइ । बीस वासाइ परियाग्रो। सेस तहेव जाव[F] सेत्तु जे पव्वए मासियाए सलेहणाए जाव[G] सिद्धे ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स ग्रज्झयणस्स ग्रयमट्ठे पण्णत्ते।

उस काल उस समय मे ग्रहन्त ग्ररिष्टनेमि भगवान श्रीवन नामक उद्यान मे पधारे । समवसरण की रचना हुई । जनता उपदश सुनने को उपस्थित हुई । सुनकर प्रमुदित हाती हुई पुन लाट गई । उसी सभा म उपस्थित ग्रनीयस कुमार का, देशना सुन, वैराग्य जागत हो गया । ग्रन्त मे गातमकुमार की तरह भगवान के चरणो मे सयम जीवन ग्रगीकार किया । सामायिक ग्रादि चादह पूर्वो का ग्रध्ययन किया । बीस वप तक सयम पयाय का पालन किया । ग्रन्त मे एक मास की सलेखना सथारा द्वारा शत्रु जय पवत पर सिद्धि प्राप्त की ।

सुधर्मा स्वामी ने कहा–"ह जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी न ग्राठव ग्रग ग्रन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वग के प्रथम ग्रध्ययन का यह ग्रथ प्रतिपादित किया है ।"

2-6 ग्रध्ययन

18– एव जहा ग्रणीयसे एव सेसा वि ग्रणतसेणो जाव[A] सत्तुसेणे छ ग्रज्झयणा एक्कगमा । बत्तीसग्रो

द्वितीय, तृतीय, चतुथ, पचम, षष्ठम ग्रध्ययनो का वर्णन भी ग्रनततेन से लेकर शत्रुसेन पयन्त, ग्रनीयस कुमार की तरह जानना चाहिय । सभी का बत्तीस-

भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सिरिवणे णाम उज्जाणे होत्था–वण्णओ[B]। जियसत्तू राया।

तत्थ ण भद्दिलपुरे नयरे नागे णाम गाहावई होत्था। अड्ढे जाव[C] अपरिभूए। तस्स ण नागस्स–गाहावइस्स सुलसा नाम भारिया होत्था–सुकुमाल जाव[D] सुरूवा।

उस नगर के महाराज जितशत्रु थे। उसी भद्दिलपुर नगर मे नाग नामक ऋद्धि आदि से सम्पन्न गाथापति के सुलसा नामक भार्या-धर्मपत्नी थी। वह अत्यन्त सुकोमल, यावत् रूपवती थी।

15–तस्स ण नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नाम कुमारे होत्था–सुकुमाले जाव[E] सुरूवे पचधाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे जाव[F] गिरिकदरमल्लीणे व चपगपायवे सुहसुहेण परिवड्ढइ।

उस नाग नामक गाथापति का पुत्र सुलसा नामक भार्या का आत्मज अनीयस कुमार था, जो अति कोमल एव रूपवान था। पाँच धाय माताओ द्वारा परिपालित था। यथा-क्षीरधात्री-दूध पिलाने वाली, मज्जयनधात्री-स्नान कराने वाली, मडन धात्री-अलकार पहनाने वाली, क्रीडाधात्री-खेल खिलाने वाली, अकधात्री-गोद मे खिलाने वाली आदि जीवन वर्णन दृढप्रतिज्ञ की तरह समझ लेना चाहिये। अनीयसकुमार गिरिगुफा मे सवर्धित चपकलता (वृक्ष) के समान बढने लगा।

16–तए ण त अणीयस कुमार सात्तिरेगअट्ठवासजाय अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंत्ति जाव[A] भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

तए ण त अणीयस कुमार उम्मुक्कबालभाव जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाण जाव[B] बत्तीसाए इब्भवर कण्णगाण एग दिवसेण पाणि गेण्हावेंति।

जब वह अनीयस कुमार कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता पिता ने उसे विद्या ग्रहण करने के लिये कलाचार्य के पास भेजा। कलाओ का पूर्ण अध्ययन कर बाल भाव को छोड कर, जब अनीयस कुमार भोग भोगने मे समर्थ हो गया, तब उसके माता-पिता अनीयस कुमार के उन्मुक्त बालकभाव को जानकर अर्थात् उसे यौवन की देहली पर पद चरण रखते देखकर उसके अनुरूप अवस्था, लावण्य, चतुर, रूप और गुण मे निपुण बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ एक ही दिन मे उनका विवाह कर दिया।

तए ण से नागे गाहावई ग्रणीयसस्स कुमारस्स इम एयारूव पीइदाण दलमइ, तजहा–बत्तीस हिरण्णकोडीग्रो जहा महाबलस्स जाव[C] फुट्टमाणेहि मुइगमत्थएहि भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ ।

विवाह के पश्चात् नागकुमार गाथापति न ग्रनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय बत्तीस करोड दिव्य कोटि ग्रादि दिये । जिस प्रकार महाबलकुमार का वणन ग्राता ह, उसी प्रकार इसका वर्णन भी जानना चाहिये । ग्रनीयस कुमार ग्रपने विशाल राजप्रासाद मे, ग्रनेक भाति ग्रठखेनियाँ करते हुए, मृदग की ध्वनि मे मस्त हो ग्रपन जीवन को व्यतीत करने लगा ।

17– तेण कालेण तेण समएण ग्ररहा ग्ररिट्ठनेमी, जाव[D] समोसढे सिरिवणे उज्जाणे । ग्रहा जाव पडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा ग्रप्पाण भावेमाणे विहरइ । परिसा निग्गया ।

तए ण तस्स ग्रणीयसस्स त महा0[E] जहा गोयमे तहा ग्रणगारे जाए नवर–सामाइयमाइयाइ चउद्दसपुव्वाइ ग्रहिज्जइ । बीस वासाइ परियाग्रो। सेस तहेव जाव[F] सेत्तु जे पव्वए मासियाए सलेहणाए जाव[G] सिद्धे ।

उस काल उस समय मे ग्रहन्त ग्ररिष्टनेमि भगवान श्रीवन नामक उद्यान मे पधारे । समवसरण की रचना हुई । जनता उपदेश सुनने को उपस्थित हुई । सुनकर प्रमदित होती हुई पुन लौट गई । उसी सभा म उपस्थित ग्रनीयस कुमार को, देशना सुन, वैराग्य जागृत हो गया । ग्रन्त मे गौतमकुमार की तरह भगवान के चरणो म सयम जीवन ग्रगीकार किया । सामायिक ग्रादि चौदह पूर्वो का ग्रध्ययन किया । बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया । ग्रन्त मे एक मास की सलेखना सथारा द्वारा शत्रु जय पवत पर सिद्धि प्राप्त की ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स ग्रज्झयणस्स ग्रयमट्ठे पण्णत्ते।

सुधर्मा स्वामी न कहा–"ह जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी न ग्राठव ग्रग ग्रन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वग के प्रथम ग्रध्ययन का यह ग्रथ प्रतिपादित किया है ।"

2-6 ग्रध्ययन

18– एव जहा ग्रणीयसे एव सेसा वि ग्रणतसेणो जाव[A] सत्तुसेणे छ ग्रज्झयणा एक्कगमा । बत्तीसग्रो

द्वितीय, तृतीय, चतुथ, पचम, षष्ठम ग्रध्ययनो का वणन भी ग्रनन्तसेन स लेकर शत्रुसेन पयन्त, ग्रनीयस कुमार की तरह जानना चाहिय । सभी का बत्तीस-

दाओ। वीस वासाइ परियाओ, चउद्दस पुव्वाइ अहिज्जइ। सेत्तु जे सिद्धा।

बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ पाणिग्रहण हुआ था। बत्तीस हिरण्यकोटि आदि दिये गये थे। सभी ने बीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया था। सामायिक आदि चौदह पूर्वो का अध्ययन किया था। अन्त में एक मास की संलेखना संथारा द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया था।

सप्तम अध्ययन : सारणकुमार

19– तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए जहा पढमे, नवर-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासओ दाओ। चउद्दस पुव्वा। वीस वासा परियाओ। सेस जहा गोयमस्स जाव[B] सेत्तु जे सिद्धे।

उस काल उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी। वर्णन प्रथम वर्ग की तरह जानना चाहिये। विशेषता यह है कि वसुदेव राजा तथा धारिणी रानी निवास करते थे। धारिणी ने गर्भकाल में सिंह का स्वप्न देखा। काल की परिपक्वता पर एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। उसका नाम सारणकुमार रखा गया। उसका पचास कन्याओं के साथ विवाह किया गया। पचास प्रकार का दहेज दिया गया। भगवान अरिष्टनेमि की देशना सुनकर विरक्त हुए और संयम-जीवन अंगीकार कर चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया। अन्त समय में एक मास की संलेखना द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया। सारणकुमार का (मध्यस्थ) अवशेष वर्णन गौतम कुमार की तरह जानना चाहिये।

अष्टम अध्ययन : गजसुकुमाल

20– जइ[C] उक्खेवओ अट्ठमस्स।

एवं खलु जंबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए, जहा पढमे जाव[D] अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे।

आठवें अध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी। जैसे प्रथम अध्ययन में वर्णन किया, वैसा जानना चाहिये। यावत् अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान पधारे, समवसरण की रचना हुई। जनता उपदेश सुनने को आई और चली गई।

तेण कालेण तेण समएण अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छकियवच्छा कुसुम–कुडल भद्दलया। नलकूबर समाणा।

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि अनगार के अन्तेवासी छ अनगार थे। जो सहोदरा-एक ही माता के उदर से उत्पन्न छ भाई थे। जो सदृशा-एक समान थे, सदृश-एक समान त्वचा वाले थे। सदृश वयस-एक समान उमर वाले थे। नीलकमल भस के सीग के अन्दर का भाग गुलिका-रग विशेष, अलसी के फूल की तरह थे। कुसुमो के समान कोमल और कुण्डल के समान वतु ल-गोल अर्थात् घु घराले वाल वाले थे। नलकूवर-वैश्रमण के पुत्र के समान थे।

छह अणगारो का तपश्चरण

21– तए ण ते छ अणगारा ज चेव दिवस मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया, त चेव दिवस अरह अरिट्ठणेमि वदति णमसति वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

इच्छामो ण भते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठ छट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरित्तए।

अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह।

तए ण ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेण जाव[A] विहरति।

ऐसे ये छहो अनगार जिस दिन मुण्डित हुए थे, उसी दिन अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार बोले– आप श्री द्वारा अभ्यानुज्ञात-आज्ञा प्राप्त होने पर जीवन पर्यन्त निरन्तर छट्ठ-छट्ठ-बेले-बेले के तपकर्म और सयम द्वारा अपनी आत्मा का भावित करते हुए विचरण करना चाहते हैं। तब भगवान ने फरमाया—

हे देवानुप्रिय! तुम्हे जिसमे सुख हो वह करो। परन्तु शुभ काय मे विलम्ब नही करना चाहिये। भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर छहो अनगार बेले-बेले का तप करते हुए आत्मसाधना मे लग गये।

पारणे के लिए द्वारिका में प्रवेश

22— तए ण ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेंति जहा गोयमो जाव[B]।

इच्छामो ण भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं सघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव[C] अडित्तए।

अहा सुह देवाणुप्पिया !

तए ण ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरह अरिट्ठनेमिं वदति नमसति वदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमत्ति पडिनिक्खमित्ता तिहिं सघाडएहिं अतुरिय जाव[D] अडति।

इसके अनन्तर वे छहो अणगार किसी समय मे बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते है, यावत् गौतम अनगार की भाँति दिनचर्या करते हुए भगवान के चरणो मे निवेदन करते है— हे भगवन् ! आज हमारे बेले का पारणा है, अत आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर हम छहो अनगार तीन सिंघाडो मे विभक्त होकर द्वारिका नगरी मे भिक्षाचर्या के लिये यावत् घूमना चाहते हैं।

तब भगवान अरिष्टनेमि ने कहा— हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख हो— वैसा करो तब वे छ अनगार अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से आज्ञा प्राप्त कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार करके अर्हंत अरिष्टनेमि भगवान के पास से सहस्राम्र वन से निकलते हैं। निकलकर तीन सिंघाडो मे विभक्त होकर चपलता रहित यावत् भिक्षाचर्या के लिये घरों मे विचरण करने लगते हैं।

तीनों सिंघाडे क्रमश देवकी के महलों में

23— तत्थ ण एगे सघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

तए ण सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव[A] हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता

उन तीनों सिंघाडों में से एक सिंघाडे के दोनो मुनि द्वारिका नगरी के उच्च-नीच, मध्यम कुल मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए महाराज वसुदेव की रानी देवकी के घर में प्रविष्ट हो जाते हैं। तब देवकी देवी घर मे प्रवेश करते हुए उन मुनियो को देखकर हृदय मे अत्यन्त प्रसन्न होती है, यावत् आसन से उठती है, उठकर के सात आठ कदम सामने जाकर दक्षिण की ओर से उनको तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा

सत्तट्ठ पयाइ ग्रणुगच्छइ, तिक्खुत्तो ग्रायाहिण पयाहिण करेइ करेत्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया, सोहकेसराण मोयगाण थाल भरेइ 2, ते ग्रणगारे पडिलाभेइ वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता पडिविसज्जेइ ।

तयाणतर दोच्चे सघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव[B] विसज्जेइ ।

करती है । करके वन्दन-नमस्कार करती ह । वन्दन-नमस्कार करके, जिधर भोजन गृह था, वहाँ ग्राती है । सिहकेसरी नामक मोदको से एक थाल भरती है ग्रौर उन मुनियो को बहराती है फिर उन्हे वन्दन नमस्कार करके विदा करती है ।

तदनन्तर द्वितीय सिंघाडक भी घूमता हुग्रा, सयोगवश वही ग्रा पहुँचा । देवकी देवी ने उन्हे भी पूर्व की तरह सिंहकेसरी मोदक बहरा कर विदा करती है ।

देवकी की जिज्ञासा अनगारो का समाधान

24— तयाणतर च ण तच्चे सघाडए बारवईए नयरीए उच्चनीय जाव[A] पडिलाभेइ पडिलाभेत्ता एव वयासो—किण्ण देवाणुप्पिया ! "कण्हस्स वासुदेवस्स इमोसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव[B] पच्चक्ख देवलोगभूयाए समणा निग्गथा उच्चनोय जाव[C] ग्रडमाणा भत्तपाण नो लभति जण्ण ताइ चेव कुलाइ भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो ग्रणुप्पविसति ।

तए ण ते ग्रणगारा देवइ देवि एव वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमोसे बारवईए नयरोए जाव[D] देवलोगभूयाए समणा

उसके कुछ समय बाद ही तीसरा सिंगाडा भी द्वारिका नगर के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे घूमता हुग्रा यावत् देवकी देवी के यहाँ पहुँच जाता है । देवकी महारानी उन्हे पूर्व की तरह ग्रत्यन्त भावना के साथ सिंह केसरी नामक मोदक बहराती है। ग्राहार बहराने के पश्चात् देवकी देवी ने मुनियो से सविनय निवेदन किया—

देवानुप्रियो ! "क्या कृष्ण-वासुदेव की द्वारिका नगरी मे नौ-नौ योजन चौडी ग्रौर बारह योजन लम्बी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान नगरी मे श्रमण-निग्रन्थो को सामान्य ग्रसामान्य घरो मे घूमते हुए ग्राहार-पानी प्राप्त नही होता है ? क्या कारण है कि श्रमण-निग्रन्थो को एक ही घर मे भक्त पान के लिये वार-वार ग्राना पडता है ?"

तदन्तर देवकी देवी को ग्रनगार इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! "निश्चय ही

निग्गया उच्चनीय जाव[E] अडमाणा भत्तपाण णो लभति णो चेव ण ताइ ताइ कुलाइ दोच्च पि तच्च पि भत्तपाणाए अणुप्पविसति ।"

25– एव खलु देवाणुप्पिए ! "अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव[A] नलकूबर समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म ससारभउविग्गा भीया जम्ममरणाण मु डा जाव[B] पव्वइया । तए ण अम्हे ज चेव दिवस पव्वइआ त चेव दिवस अरह अरिट्ठनेमि वदामो नमसामो, इम एयारूव अभिग्गह अभिगिण्हामो । इच्छामो ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणा जाव[C] अहासुह देवाणुप्पिया ।

तए ण अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेण जाव[D] विहरामो । त अम्हे अज्ज अट्ठखमणपारणगसि पढमाए पोरिसीए जाव[E] अडमाणा तव गेह अणुप्पविट्ठा । त णो खलु देवाणुप्पिए! त चेव ण अम्हे, अम्हे ण अण्णे ।" देवइ देवि एव वदति वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडिगया ।

कृष्ण वासुदेव की यह द्वारिका नगरी यावत् देवलोक के समान है । श्रमण निर्ग्रथो को उच्च-नीच मध्यम कुलो मे घूमते हुए भिक्षा प्राप्त नही होती है, ऐसी बात नही है ।

हे देवानुप्रिय ! "एक ही घर मे दो बार-तीन बार प्रवेश करने का कारण यह है कि हम भद्दिलपुर नामक नगर मे नाग नामक गाथापति के पुत्र सुलसा नामक भार्या के आत्मज छ सहोदर अनगार भाई है । हम छहो एक जैसे यावत् नलकूबर के समान है । हमने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के सानिध्य मे धर्म श्रवण कर ससार भय से उद्विग्न, जन्म-मरण से भयभीत, मुण्डित यावत् प्रव्रजित हो गये । जिस दिन हम प्रव्रजित हुए थे, उसी दिन अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना-नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके कहा—हम इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करना चाहते है । हे भगवन् ! आपकी आज्ञा होने पर बेले बेले का तप करना चाहते है । भगवान ने कहा—जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो । इस प्रकार अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान की आज्ञा प्राप्त कर, हमने बेले-बेले का पारणा प्रारम्भ कर दिया । आज हमारे बेले का पारणा था । प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया, तीसरे प्रहर मे हम छहो भाई दो-दो के तीन सिघाडे बनाकर पारणे के लिए द्वारिका नगरी मे—घूमते हुए क्रमश आपके घर मे प्रविष्ट हो चुके है । हम अन्य है ।" देवकी देवी को इस प्रकार कहते है इस प्रकार कह कर, जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे चले गये ।

देवकी का प्रभू से स्पष्टीकरण

26– तए ण तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे–एव खलु अह पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेण कुमारसमणेण बालत्तणे वागरिआ–तुमण्ण देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव[A] नलकुब्बरसमाणे नो चेव ण भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्सति । त ण मिच्छा । इम ण पच्चक्खमेव दिस्सइ–भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव[B] पुत्ते पयायाओ । त गच्छामि ण अरह अरिट्ठनेमि वदामि नमसामि वदित्ता नमसित्ता इम च ण एयारूव वागरण पुच्छिस्सामित्ति कट्टु एव सपेहेइ सपेहेत्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी–लहुकरणप्पवर जाव[C] उवट्ठवेंति । जहा देवाणदा जाव[D] पज्जुवासइ ।

उन श्रमणो के चले जाने के पश्चात् देवकी देवी के मन मे आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और सकल्पित विचार उत्पन्न हुआ— मुझे पोलासपुर नामक नगर मे अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने बाल्यावस्था मे इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये ! तुम आठ पुत्रो को जन्म दोगी जो कि एक समान आकृति वाले यावत् वैश्रमण कुमार के तुल्य होगे । भारतवर्ष मे अन्य माताए इस प्रकार के पुत्रो को जन्म नही दे सकेगी । लेकिन यह कथन मिथ्या प्रमाणित हुआ क्योकि प्रत्यक्ष प्रमाणित हो रहा है कि भारतवर्ष मे अन्य माताओ द्वारा भी वैश्रमण कुमार की तरह पुत्र उत्पन्न हुए है । अत मैं जाऊँ, और अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन नमस्कार करूँ, वन्दन नमस्कार करके उनसे पूछु गी । इस प्रकार मन मे विचार करके देवी ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा कि तुम शीघ्र चलने वाले धार्मिक श्रेष्ठ लघुकरण रथ को तैयार करो । आज्ञा पाकर सेवको ने वैसा ही रथ तयार कर दिया और जिस प्रकार देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान के चरणो मे पहुँची थी, उसी तरह देवकी देवी भी पहुँच गई, और पर्यु पासना करने लगी ।

27– तए ण अरहा अरिट्ठनेमी देवइ देविं एव वयासी–"से नूण तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पण्णे–एव खलु अह

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने देवकी देवी को देखते ही कहा "हे देवकी देवी ! तुम्हे उन छ अनगारो को देखकर यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि मुझे पोलासपुर नगर मे अतिमुक्तक कुमार ने कहा था, यावत् उस विषयक वस्तुस्थिति जानने के लिये तुम घर से

पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेण जाव^A त णिगच्छसि णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतिय तेणेव हव्वमागया। से नूण देवई! अट्ठे समट्ठे?"

"हंता अत्थि।"

निकलकर शीघ्रता के साथ मेरे पास आई हो, क्या यह कथन सत्य है?" भगवान के इस कथन को देवकी देवी स्पष्ट करने लगी।

"भगवन्! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य है, मैं उसी उद्देश्य को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।"

28—एवं खलु देवाणुप्पिए! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नाम गाहावई परिवसइ—अड्ढे।

तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था। तए णं सा सुलसा बालत्तणे चेव हरिणेगमेसीभत्तया यावि होत्था। नेमित्तिएणं वागरिया—एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ।

तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ करेत्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव^B पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ या नीहारेइ या वरइ या।

भगवान अरिष्टनेमि—हे देवानुप्रिय! "उस काल उस समय में भद्दिलपुर नामक नगर में ऋद्धि आदि से सम्पन्न नाग नामक गाथापति निवास करता था। उस नाग नामक गाथापति के सुलसा नामक भार्या-धर्मपत्नी थी। उस सुलसा नामक गाथापत्नी को बाल्यकाल में ही एक नैमित्तिक ज्योतिषी ने कहा था—यह लड़की निंदू होगी अर्थात् मृत बच्चों को जन्म देगी। इस बात को सुन कर सुलसा ने तभी से हरिणेगमेषि देव की आराधना प्रारम्भ करदी। उसने हरिणेगमेषि देव की एक प्रतिमा बनवाई, बनवाकर नित्य प्रति स्नान एवं अनिष्ट परिहारार्थ प्रायश्चित्त करके आर्द्रपट्ट—गीली साड़ी से साथ पूजाह-चयनित फूलों से नित्य प्रति पूजा करती थी। तदनन्तर दोनों (जानुओं) घुटनों को भूमि पर टेककर प्रणाम करती। यह सब कुछ करने के बाद ही आहार करती, विहार करती तथा अन्य कामों में प्रवृत्त होती थी।

29—तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरिणेगमेसी देवे

तदनन्तर सुलसा की भक्ति तथा सेवा से हरिणगमेषि देव आराधित हो गया, प्रसन्न हो गया। तब प्रसन्न हुए हरिणेगमेषि देव ने सुलसा नामक गाथापत्नी की अनुकम्पा निमित्त, उस पर दया भाव लाकर, सुलसा गाथा पत्नी

सुलसाए गाहावइणीए अणुकपणट्ठयाए सुलस गाहावइणि तुम च दो वि समउउयाओ करेइ । तए ण तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए ण सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ ।

और तुम्हे (देवकी) एक साथ रजस्वला होने की व्यवस्था कर दी । अर्थात् देव माया से तुम और सुलसा एक साथ सन्तान उत्पन्न करने लगी । तुम दोनो ने ही लगभग एक ही समय मे गर्भ धारण किया, उसका परिवहन किया और प्राय एक ही समय मे बच्चो को जन्म भी दिया । सुलसा पर अनुकम्पा करके देव ने उसके मृत बच्चो को हाथो मे गृहण कर तुम्हारे पास लाकर (स्थापित) रख दिया और उस समय तुमने भी नवमास मे कुछ अधिक दिन व्यतीत होने पर सुकुमार बालको को जन्म दिया । हे देवानुप्रिय ! जो तुम्हारे बालक थे उनको देव ने दोनो हाथो से उठाकर सेठानी सुलसा के पास पहुँचा दिया ।

तए ण से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकपणट्ठयाए विणिहायमावण्णे दारए करयल-सपुडेण गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अत्तिय साहरइ । त समय च ण तुम पि नवण्ह मासाण सुकुमाल दारए पसवसि। जे वि य ण देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अतियाओ करयल-सपुडेण गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अतिए साहरइ । त तव चेव ण देवई ! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाए गाहावइणीए ।

अत हे देवकी ! वे पुत्र तुम्हारे ही है सुलसा के नही ।

पुत्र दर्शन से देवकी का हर्षातिरेक

30— तए ण सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[A] हियया अरह अरिट्ठणेमि वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि

तदनन्तर देवकी देवी अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से इस तथ्य को श्रवणकर हृष्ट हुई-सन्तुष्ट हुई और हृस्ट-तुष्ट हृदय से अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके-जहा वे छह अनगार थे, वहा पर आती है । आकर छहो ही अनगारो का वन्दन-नमस्कार करती है ।

अणगारे वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता आगयपण्हुया पप्पुयलोयणा कचुयपरिक्खित्तया दरियवलय-बाहा-धाराहय-कलव-पुप्फग विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी-पेहमाणी सुचिर निरिक्खइ निरिक्खित्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठणेमि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता तमेव धम्मिय जाणप्पवर दुरुहइ दुरुहित्ता जेणव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइ नयरिं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागया सयसि सयणिज्जसि निसीयइ ।

वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् आगत प्रस्नुता-अत्यधिक पुत्र स्नेह से उसके स्तनों में दुग्ध आ गया, उसके नेत्र आनन्दाश्रु से आर्द्र हो गये। हर्ष और रोमांच की अधिकता से शरीर फूल जाने के कारण कंचुक तंग होकर मेघधारा से आहत हुए कदम्बक नामक फूल के भांति उसकी रोमराजि विकसित हो गई। छहों अनगारों को निर्निमेष दृष्टि से स्थिर काल तक देखती है। देखकर वन्दन-नमस्कार करके जहाँ पर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान थे, उधर आती है, आकर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करती है, करके, वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके, धार्मिक कार्यों में उपयोग लाये जाने वाले श्रेष्ठ यान-रथ पर आरोहण करती है। आरोहण करके, जिधर द्वारिका नगरी थी, उधर आती है, आकर द्वारिका नगरी में प्रवेश करके जहाँ अपना महल था और जहाँ बाहर की उपस्थापन शाला-बैठने की जगह थी, वहाँ आती है, आकर धार्मिक यान (श्रेष्ठ रथ) से नीचे उतरती है, उतरकर, जहाँ पर अपना वासगृह था, वहाँ आकर अपनी शय्या पर बैठ जाती है।

देवकी द्वारा आर्त्तध्यान

31– तए ण तीसे देवईए देवीए अय अज्झत्थिए चितिए पत्थिए जाव समुप्पन्ने—एव खलु अह सरिसए जाव नलकूबर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया नो चेव ण मए एगस्स वि बालत्तणए

तदनन्तर देवकी देवी के मन में इस प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं कि मैंने वैश्रमण के पुत्रों के समान सातों पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु मैंने एक भी पुत्र के बाल जीवन का सुखानुभव नहीं किया। यह

समणुब्भूए। एस वि य ण कण्हे वासुदेवे छण्ह छण्ह मासाण मम श्रतिय पायवदए हव्वमागच्छइ। त धण्णाश्रो ण ताश्रो श्रम्मयाश्रो, पुण्णाश्रो ण ताश्रो श्रम्मयाश्रो कयपुण्णाश्रो ण ताश्रो श्रम्मयाश्रो, कयलक्खणाश्रो ण ताश्रो श्रम्मयाश्रो जासिं मण्णे णियगकुच्छि सभूयाइ, थणदुद्ध-लुद्धयाइ महुरसमुल्लावायाइ मम्मण-पजपियाइ थण-मूला कक्खदेसभाग श्रभिसरमाणाइ मुद्धयाइ पुणो य कोमलकमोलवमेहि हत्थेहि गिण्हिऊण उच्छगे णिवेसियाइ देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मजुलप्पभणिए। श्रह ण श्रधण्णा श्रपुण्णा श्रकयपुण्णा (श्रकयलक्खणा) एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता श्रोयह जाव[A] झियायइ।

कृष्ण वासुदेव भी छ छ मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आते हैं। मैं मानती हूँ कि वे माताएँ धन्य हैं, जिनकी सतति निज कुक्षि से उत्पन्न होती है, स्तन के दुग्ध मे लुब्ध होती है, मधुर तथा अव्यक्त मुनमुन, तुतलाती वाणी मे बोलते है, स्तन मूलक कक्ष भाग मे रहती हैं, जिसको माता कमल के समान कोमल हाथो से उठाती, अपनी गोदी मे बिठाती हैं तथा उन बालको के आलाप को—शब्दादि बाल सबधी प्रक्रियाओ का सुमधुर और मजुल उत्तर देती है। मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्या हूँ। क्योकि मुझे उपर्युक्त पुत्र जनित प्रक्रियाओ मे से एक का भी कर्त्तव्य, कम रूप से अनुभव नही हुआ। इस प्रकार उदासीन माता देवकी आर्त्तध्यान करने लगती है।

दुख की अभिव्यक्ति—श्री कृष्ण के समक्ष

32— इम च ण कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव[A] विभूसिए देवइए देवीए पायग्गहण करेइ करित्ता देवइ देविं एव वयासी—

श्रण्णया ण श्रम्मो! तुब्भे मम पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव[B] भवह, किण्ण श्रम्मो! श्रज्ज तुब्भे श्रोहयमण-सकप्पा जाव[C] झियायह?

इधर कृष्ण वासुदेव स्नान से निवृत्त हो, सभी अलकारा से विभूषित होकर, देवकी देवी को चरण वदन करने के लिये शीघ्र आते हैं। तब कृष्ण-वसुदेव देवकी देवी को देखते हैं, देखकर देवकी देवी के चरण-वदन करते हैं, करके देवकी देवी को इस प्रकार कहते हैं— हे माता! अन्य दिनो मे, जब मैं तुम्हारे पास आता हूँ तो आप मुझे समीप देखकर हर्षित और खुशी होती है। परन्तु हे माता! आज आप किस कारण मे योगिनी की तरह विचार निमग्न हो?

33— तए ण सा देवई देवी कण्ह वासुदेव एव वयासी—एव खलु अह पुत्ता । सरिसए जाव नलकूवरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव ण मए एगस्स वि वालत्तणे अणुब्भूए । तुम पि य ण पुत्ता ! छण्ह—छण्ह मासाण मम अंतिय पायवदए हव्वमागच्छसि । त धण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव झियामि ।

तब देवकी देवी कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोली— हे पुत्र ! निश्चय ही मैंने एक समान सात पुत्रो को जन्म दिया, किन्तु एक भी पुत्र के बालत्व आदि कर्त्तव्य-कर्म का अनुभव नहीं किया । और न तुम भी हे पुत्र ! छ छ महीने मे मेरे पास चरण-वन्दन के लिये शीघ्र आते हो । अत मैं सोचती हूँ कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने पुत्रो के बालत्व के कर्त्तव्य-कर्म का अनुभव करती हैं । किन्तु हे पुत्र ! मैं उसके अभाव के कारण आर्त्तध्यान करती हूँ ।

कृष्ण द्वारा देव आराधन

34— तए ण से कण्हे वासुदेवे देवइ देविं एव वयासी—मा ण तुब्भे अम्मो ! ओहयमण सकप्पा जाव झियायह अहण्ण तहा जत्तिस्सामि जहा ण मम सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइ देविं ताहि इट्ठाहि वग्गूहि समासासेइ। तओ पडिणिक्खमई पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जहा अभओ । नवर हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्त पगेण्हइ जाव[D] अजलि कट्टु एव वयासी—

इच्छामि ण देवाणुप्पिया । सहोदर कणीयस भाउय विदिण्ण ।

तए ण से हरिणेगमेसी देव कण्ह वासुदेवं एव वयासी-होहिइ

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव देवकी देवी को इस प्रकार कहने लगे—तुम उदासीन मत हो, यावत् आर्त्तध्यान मत करो । मैं उस प्रकार का प्रयत्न करूंगा, जिससे मेरे एक सहोदर भ्राता और होगा । ऐसा कह कर देवकी देवी को, इष्टवाणि-इष्ट वचनो द्वारा आश्वासन देते हैं । आश्वासन देकर वहाँ से चलते हैं, चलकर जिधर पौषधशाला थी, उधर आते हैं और जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया, वैसे तेला करते हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि कृष्ण-वासुदेव ने हरिणगमेषी देव की आराधना करने के लिए तेले का आराधन किया था, यावत् हरिणगमेषी देव के प्रकट हो जाने पर विधिवत् पौषध पूर्ण करके कृष्ण वासुदेव ने कहा—हे देवानुप्रिय ! मेरी इच्छा है कि मेरे एक सहोदर-एक ही माता से उत्पन्न, एक भाई और हो ।

तदनन्तर हरिणगमेषी देव ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय !

ण देवाणुप्पिया ! तव देवलोयच्चुए सहोदरे कणीयसे भाउए। से ण उम्मुक्क जाव[A] मणुप्पत्ते श्ररहश्रो श्ररिट्ठनेमिस्स श्रतिय मुण्डे जाव[B] पव्वइस्सइ। कण्ह वासुदेव दोच्च पि तच्च पि वदइ वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

देवलोक से च्युत होकर एक देव तुम्हारे भाई के रूप मे जरूर उत्पन्न होगा किन्तु वह बाल भाव को छोडकर, जब युवावस्था मे प्रवेश करेगा, उसी समय श्रर्हन्त श्ररिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित यावत् दीक्षित हो जायगा। देव कृष्ण-वासुदेव को दो बार तीन बार इस प्रकार कहता है, कहकर जिस दिशा मे श्राया था, उसी दिशा मे पुन चला गया।

कृष्ण द्वारा देवकी को आश्वासन

35– तए ण मे कण्हे वासुदेवे पोसहसालाश्रो पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवइ देवि तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहण करेइ करेत्ता एव वयासी–

होहिइ ण श्रम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवइ देवि ताहि इट्ठाहि जाव[C] श्रासासेइ श्रासासित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

तव कृष्ण-वासुदेव पोपधशाला से निकलते हैं, निकलकर देवकी देवी के पास श्राकर चरण वन्दन करते हुए इस प्रकार बोले—हे माता ! मेरे सहोदर लघु भ्राता श्रवश्य होगा। इस प्रकार देवकी देवी को इष्ट वचनो से श्राश्वस्त करते हैं, श्राश्वस्त करके जिस दिशा से श्राये उसी दिशा मे चले जाते है।

गजसुकुमाल का जन्म और विकास

36– तए ण सा देवई देवी श्रण्णया कयाइ तसि तारिसगसि जाव[A] सीह सुविणे पासित्ता पडिबुद्धा जाव[B] पाढया[C] हट्ठहियया त गब्भ सुहसुहेण परिवहइ।

तदनन्तर देवकी देवी श्रन्य किसी समय मे कोमल एव सुखद शय्या पर शयन कर रही थी। उस समय सिंह स्वप्न को देखकर जाग्रत हो उठी। उसने स्वप्न का सारा वृत्तान्त श्रपने पति वसुदेव को सुनाया। महाराज वसुदेव ने स्वप्न-पाठका को बुलाकर

तए ण सा देवई देवी नवण्ह मासाण पडिपुण्णाण जासुमण-रत्तबधुजीवय लक्खारस सरस पारिजातक-तरुण दिवायर-समप्पभ सव्वणयणकत-सुकुमाल जाव[D] सुरुव गयतालुसमाण दारय पयाया। जम्मण जहा मेहकुमारे जाव[E] जम्हा ण श्रम्ह इमे दारगे गयतालुसमाणे त होउ ण श्रम्ह एयस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले।

तए ण तस्स दारगस्स श्रम्मापियरे नाम करेंति गयसुकुमालोत्ति। सेस जहा मेहे जाव श्रल भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

स्वप्न फल के विषय म पूछा। स्वप्न-पाठकों न उसका फल एक सुयोग्य पुण्यात्मा पुत्र की उत्पत्ति होना बतलाया। महारानी देवकी स्वप्न पाठकों से स्वप्न का फल श्रवण कर प्रसन्न हुई।

समय आने पर गर्भ धारण किया और उसका उचित रीति से पालन-पोषण करने लगी। गर्भगत नव मास व्यतीत होने पर जासू के फूल के समान, रक्त बधु जीवक के समान, लाख के रग के समान, खिले हुए पारिजात पुष्प के समान, प्रात कालीन सूर्य के समान कान्ति वाले, सबके नेत्रों को प्यारे लगने वाले सुकुमार, यावत् सुरूप, गजतालु के समान पुत्र को जन्म देती है। जन्म सस्कार मेघकुमार की तरह किया गया। नाम सस्कार करते समय कहा गया कि हमारा बालक हाथी के तालु के समान रक्त वर्ण वाला है तथा कोमल अंग वाला है, इसलिये इस बालक का नाम गजसुकुमाल होना चाहिये। इसके अनुसार माता पिता द्वारा बालक का नाम गजसुकुमाल कुमार रखा गया।

गजकुमार गजसुकुमाल का अवशेष वर्णन मेघकुमार की तरह जानना चाहिये। अर्थात् गजसुकुमाल कलाओं में निष्णात हो गये तथा बालक भाव को पारकर युवावस्था में भोग भोगने में समर्थ हो गये।

राजपथ पर सोमा का खेलना

37— तत्थ ण बारवईए नयरिए सोमिले नाम माहणे परिवसइ श्रड्ढे। रिउव्वेय जाव[A] सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिल-माहणस्स

उस द्वारिका नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण भी निवास करता था। वह ऋद्धि से सम्पन्न ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि वेदों के ज्ञान में निष्णात सुपरिनिष्ठित था। उस सोमिल ब्राह्मण की पत्नी का नाम सोमश्री था। वह

सोमसिरी नाम माहणी होत्था। सूमालपाणिपाया। तस्स ण सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणिए अत्तया सोमा नाम दारिया होत्था। सोमाला जाव[B] सुरुवा। रूवेण जोव्वणेण लावण्णेण उक्किट्ठा उक्किट्ठसरोरा यावि होत्था।

तए ण सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव[C] विभूसिया, बहूहि खुज्जाहि जाव[D] परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छित्ता रायमग्गसि कणगतिदूसएण कीलमाणी चिट्ठइ।

सुदर एव सुकुमाल अङ्गोपाग वाली थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री तथा सोमश्री नामक ब्राह्मण की आत्मजा का नाम सोमा था। सोमा बालिका सुकोमल तथा रूपवती थी। रूप-लावण्य की दृष्टि से उत्कृष्ट श्रेष्ठ शरीर वाली थी। उस सोमा बालिका ने स्नान किया, आभूषणो से अपने शरीर को अलकृत किया तथा कुब्जा आदि अनेक दासियाँ अपने साथ ली। उनसे परिवृत्त होकर घर से निकली, निकल कर जिधर राज मार्ग था उधर आती है, आकर के राज मार्ग पर कनक-कन्दूकेन-सोने की गेंद से खेलने लगती है।

कन्या के अन्त पुर मे सोमा का प्रवेश

38— तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे। परिसा निग्गया।

तए ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेण कुमारेण सद्धि हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवर—चामराहि उद्धुमाणीहि बारवईए नयरीए मज्झमज्झेण अरहओ अरिट्ठनेमिस्स

उस काल उस समय मे अर्हत अरिष्टनेमि भगवान पधारे। उनके दर्शन करने के लिये जनता नगरी से निकली। तदनतर कृष्ण-वासुदेव ने भी भगवान के आगमन सदेश को सुनकर स्नान किया, यावत् सभी अलकारो से विभूषित हुए और राजकुमार गजसुकुमाल को साथ मे लेकर हाथी के स्कध पर सवार हो जाते हैं। करण्ड वृक्ष के फूलो से युक्त छत्र धारण कर रखा था। श्वेत चँवर ढुलाये जा रहे थे। इस प्रकार महाराज कृष्ण, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन करने के लिये द्वारिका

पायवदए निग्गच्छमाणे सोम दारिय पासइ पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी— 'गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोमिल माहण जायित्ता सोम दारिय गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णतेउरसि पक्खिवह । तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ । तए ण कोडु बिय जाव^ पक्खिवति ।

नगरी क मध्य मार्ग मे जा रहे थे । रास्ते म सोमा नामक बालिका को देखते हैं । देखकर सोमा बालिका के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर आश्चर्यान्वित हो गये । तत्काल उन्होंने अपने कौटुम्बिक पुरुष-कर्मचारियों को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर सोमा नामक बालिका की याचना करो । सोमिल ब्राह्मण की अनुमति मिलने पर उस सोमा बालिका को ग्रहण कर कन्याओं के अन्त -पुर मे पहुँचा दो । भविष्य म राजकुमार गजसुकुमाल के साथ इसका विवाह कर दिया जायगा । कौटुम्बिक पुरुषो ने वैसा ही किया, यावत् सोमा बालिका को कन्या अन्त -पुर में पहुँचा देते है ।

भगवान अरिष्टनेमि के चरणो मे गजसुकुमाल

39— तए ण से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झमज्झेण निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव सहसबवणे उज्जाणे जाव^पज्जुवासाइ।

तदान्तर कृष्ण-वासुदेव, द्वारिका नगरी क मध्य मार्ग स निकलते है, निकलकर जिधर सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, उधर आते हैं और दूर स भगवान के दर्शन कर हाथी स नीचे उतर कर प्रभु के चरणो म पहुँचे और उनकी पर्युपासना करने लगे ।

गजसुकुमाल पर देशना का प्रभाव

40— तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्म कहेइ । कण्हे पडिगए । तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिय धम्म सोच्चा ज नवर अम्मापियरो

तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण-वासुदेव, गजसुकुमाल कुमार तथा सम्पूर्ण सभा को उपदेश दिया, धर्मोपदेश श्रवण कर कृष्ण महाराज चले गये । राजकुमार गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर उनके चरणो मे निवेदन करने लगे । मुझे आप श्री का उपदेश श्रवण कर विरति हो गई है ।

आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्ज जाव[A] वड्ढियकुले ।

मैं माता पिता से पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त कर, आप श्री के चरणो मे दीक्षा ग्रहण करु गा । भगवान ने कहा— जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो किन्तु शुभ काय मे किंचित भी विलम्ब मत करो । प्रभु को वन्दन कर गजसुकुमाल कुमार अपने घर गये और मेघ कुमार की तरह ही अपनी विरक्ति की बात बताकर सयम के लिये आज्ञा मागने लगे । माता पिता ने समझाया— तुम अभी अविवाहित हो अत पहले विवाह करलो, फिर सतति उत्पन्न होने पर अपना उत्तर-दायित्व उन पर डालकर दीक्षा ग्रहण करना उचित है ।

गजसुकुमाल उन्हे समझाने लगे । जीवन का कोई पता नही है आदि-आदि ।

कृष्ण की समझाइश

41— तए ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गयसुकुमाल आलिगइ, आलिगित्ता उच्छगे निवेसेइ निवेसेत्ता एव वयासी—तुम मम सहोदरे कणीयसे भाया । त मा ण तुम देवाणुप्पिया ! इयाणि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे जाव[B] पव्वयाहि । अहण्ण तुमे बारवईए नयरीए महया-महया रायाभिसेएण अभिसिचिस्सामि ।

तए ण से गयसुकुमाले कण्हेण

जब कृष्ण-वासुदेव कोग जसुकुमाल की दीक्षा लेने के सकल्प के समाचार मिलते है तो वे जिधर गजसुकुमाल थे, उधर आते हैं । आकर गजसुकुमाल का आलिगन करके-गले लगाते ह और गोद मे बिठाकर कहने लगते हैं—

हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर लघु भ्राता हो । अत इस समय तुम अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का विचार छोड दो । मैं तुम्ह बहुत बडे समारोह के साथ राज्याभिषेक करा दू गा, अर्थात् द्वारिका नगरी का राजा बना दू गा ।

वासुदेवेण एव वुत्ते समाणे तुसिणीए सचिट्ठइ ।

42— तए ण से गयसुकुमाले कण्ह वासुदेव अम्मापियरो य दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया काम^A खेला सवा जाव^B विप्पजहियव्वा भविस्सति, त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए जाव^C पव्वइत्तए ।

कृष्ण-वासुदव के इस प्रकार कहने पर कुछ समयानान्तर गजसुकुमाल कुमार कृष्ण-वासुदेव के दो-तीन बार इस प्रकार कहन पर माता पिता को इस प्रकार कहने लगे—हे देवानुप्रियो ! मनुष्य का आधारभूत यह शरीर कफ-मल-मूत्र आदि का घर है, जिसे एक न एक दिन छोडना ही पडेगा । इसलिये मेरी हार्दिक इच्छा है कि, मुझे दीक्षा की आज्ञा दें, मैं अर्हत अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा ग्रहण कर प्रव्रजित हो जाऊँ । गजसुकुमाल ने अपने विचारो को दो-तीन बार दोहराया ।

राज्य पद से अनगार पद पर

43— तए ण त गयसुकुमाल कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो सचाएन्ति बहुयाहि अणुलोमाहि जाव^A आघवित्तए ताहे अकामाइ चेव गयसुकुमाल कुमार एव वयासी— त इच्छामो ण ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए ।

तए ण गयसुकुमाले कुमारे कण्ह वासुदेव अम्मापियर च अणुवत्तमाणे तुसिणीए सचिट्ठइ । जाव^B सजमेइ ।

तए ण से गयसुकुमाले अणगारे जाए ईरियासमिए जाव^C गुत्तबभयारी इणमेव निग्गथ पवयण पुरओ काउ विहरइ ।

गजसुकुमाल के विचारो को सुनकर कृष्ण-वासुदेव और माता पिता उन्हे अनुकूल-प्रतिकूल बातो द्वारा समझाने लगे । लेकिन गजसुकुमाल अपने विचारो पर अडिग रहे । तब उन्होने कहा—हे पुत्र ! हम तुम्हें राजसिंहासन पर विराजमान देखना चाहते है । अधिक नही तो कम से कम एक दिन तो राज्य श्री की शोभा बढा दो । यह बात सुनकर गजसुकुमाल मौन हो गये । तो मौन को स्वीकृति मानकर महाबल कुमार की तरह इनका भी विशाल समारोह के साथ राज्याभिषेक कर दिया गया और गजसुकुमाल के आदेश पर दीक्षा सामग्री एकत्रित की गई, तब गजसुकुमाल कुमार ने दीक्षा ग्रहण कर ली । गजसुकुमाल अनगार ईर्यासमिति आदि पाँच समिति, तीन गुप्ति का पालन कर, यावत गुप्त ब्रह्मचारी बन गये ।

महा—प्रतिमा ग्रहण

44— तए ण से गयसुकुमाले अणगारे ज चेव दिवस पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमो तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठणेमि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ करेत्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे महाकालसि सुसाणसि एगराइय महापडिम उवसपज्जित्ताण विहरित्तए ।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह ।

तएण से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरह अरिट्ठनेमि वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए सहसववणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थडिल्ल पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता ईसि पब्भारगएण काएण जाव^ दो वि पाए साहट्टु एगराइ महापडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ ।

तदनन्तर गजसुकुमाल ... दिन प्रव्रजित हुए थे, उसी दिन साय समय अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरण मे पहुँचते है, पहुँचकर तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करते है, करके वन्दन-नमस्कार करते है, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

हे भगवन ! मेरी इच्छा है, आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार कर विचरण करना चाहता हूँ ।

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कहा-जैसा तुम्हे सुख हो वसा करो, परन्तु शुभ काय मे विलम्ब मत करो । तदनन्तर गजसुकुमाल अनगार, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से आज्ञा प्राप्त हो जाने पर, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करते हैं । वन्दन-नमस्कार करके, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास से सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलते हैं, निकलकर जिधर महाकाल श्मशान था, उधर आते हैं, आकर के स्थडिल भूमि को प्रतिलेखना करते हैं, प्रतिलेखना कर मलोत्सग एव लघुशका निवृत्ति वाली भूमि का प्रतिलेखन करते हैं, प्रतिलेखन करके, कुछ झुके हुए शरीर से, दोनो पावो को सकुचित करके, एक रात्रि की महाप्रतिमा को धारण करके आत्मध्यान मे विचरण करने लगते हैं ।

वा॰

सोमिल द्वारा प्रदत्त उपसर्ग मे अडिगता

45– इम च ण सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए वारवईए नयरीओ वहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोड य गेण्हइ गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामतेण वीईवय–माणे–वीईवयमाणे सझाकालसमयसि पविरल मणुस्ससि गयसुकुमाल अणगार पासइ पासित्ता त वेर सरइ सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे एव वयासी—

इधर सोमिल ब्राह्मण पहले ही हवन के निमित्त सूखी लकडियाँ लाने के लिये नगरी से बाहर गया हुआ था। जब वह दभ-कुश-पत्त लेकर पुन लौट रहा था। उस समय महाकाल श्मशान के पास से जाते हुए उसने ध्यानस्थ गजसुकुमाल अनगार को देखा, देखते ही उसके मन मे वर जागृत हो उठा और अत्यन्त रुष्ट होकर, कुपित होकर, क्रोध मे तमतमाता हुआ इस प्रकार कहने लगा—

एस ण भो! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव[A] परिवज्जिए, जे ण मम धूय सोमसिरीए भारियाए अत्तय सोम दारिय अदिट्ठदोसपत्तिय कालवत्तिणि विप्पजहित्ता मुण्डे जाव[B] पव्वइए। त सेय खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायण करेत्तए, एव सपेहेइ सपेहेत्ता दिसापडिलेहण करेइ करेत्ता सरस मट्टिय गेण्हइ गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालि

ओ हा! श्री और लज्जा से हीन, मृत्यु को चाहने वाला, यह वही गजसुकुमाल है, जो किसी भी दोष से रहित, विवाह योग्य मेरी आत्मजा सोमा नामक वालिका को छोडकर प्रव्रजित हो गया। मुझे गजसुकुमाल कुमार से वर का वदला लेना है, ऐसा विचार कर, वह दिशा प्रतिलेखन करता है, चारो ओर देखता है, देखकर गीली मिट्टी ग्रहण करता है। ग्रहण करके जिधर गजसुकुमाल अनगार थे, वहाँ आता है, आकर के गजसुकुमाल कुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाली बाँधता है, बाँधकर जलती हुई चिता से, खिले हुए पलाश के फूल के समान लाल-लाल खैर नामक लकडी के अगारो को ठीकरे मे ग्रहण करता है। ग्रहण करके गजसुकुमाल कुमार अनगार के मस्तक के

बधइ बधित्ता जलतीम्रो चिययाम्रो फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेण गेण्हइ गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स म्रणगारस्स मत्थए पीक्खवइ पक्खिवित्ता भीए तसिए उव्विग्गे सजायभए तम्रो खिप्पामेव म्रवक्कमइ म्रवक्कमित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए ।

ऊपर डाल देता है, डालकर भयभीत, त्रसित-उद्विग्न होता हुम्रा हो वहा से भाग जाता है म्रौर जिस दिशा से म्राया था उसी दिशा मे चला जाता है ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स म्रणगारस्स सरीरयसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला जाव[A] दुरहियासा। तए ण से गयसुकुमाले म्रणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि म्रप्पदुस्समाणे त उज्जल जाव[B] दुरहियास वेयण म्रहियासेइ ।

तदनन्तर गजसुकुमाल म्रनगार के शरीर मे म्रत्यधिक दु खमयी, यावत् म्रत्यन्त म्रसाध्य वेदना उत्पन्न होती है । तब भी गजसुकुमाल म्रनगार सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष नही करते हुए उस तीव्र वेदना को सहन करते है ।

एक ही दिन में सिद्धत्व प्राप्ति

46– तए ण तस्स गयसुकुमालस्स म्रणगारस्स त उज्जल जाव दुरहियास वेयण म्रहियासेमाणस्स सुभेण परिणामेण पसत्यज्झवसाणेण तदावरणिज्जाण कम्माण खएण कम्मरयविकिरणकर म्रपुव्वकरण म्रणुप्पविट्ठस्स म्रणते म्रणुत्तरे जाव[C] केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे । तम्रो पच्छा सिद्धे जाव[D] प्पहीणे । तत्य ण म्रहासनिहिएहि देवेहि

इस प्रकार की तीव्र वेदना के सहन करने से गजसुकुमाल म्रनगार के शुभ परिणाम म्रौर प्रशस्त म्रध्यवसाय के कारण, म्रतीव गुणो के घातक, ज्ञानावरणीयादि कर्मों को नष्ट करने वाले म्रपूर्वकरण मे प्रवेश करते हैं । जिसका म्रन्त नही ऐसे म्रनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर लिया । तदनन्तर म्रायुकर्म क्षीण हो जाने पर सिद्ध, यावत् सभी दु खो से रहित हो गये । गजसुकुमाल म्रनगार के मुक्त होने पर समीपवर्ती देवो ने चरित्र की सम्यक् म्राराधना की है, ऐसा कहकर वन्नियमयी,

सम्म आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णेकुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गोयगधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सुगन्धित जल की वृष्टि की, पाच प्रकार के फूल बरसाये, वस्त्रो की वर्षा की, दिव्य गीत एव मृदगो की आवाज से आकाश गुजा दिया।

कृष्ण द्वारा वृद्ध की सहायता

47— तए ण से कण्हे वासुदेवे कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव[A] ण्हाए जाव[B] विभूसिए हत्थिखधवरगए सकोरेंटमल्ल दामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड-चडगर-पहकरवद-परिक्खित्ते वारवइ नयरि मज्झ मज्झेण जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण से कण्हे वासुदेवे वारवईए नयरीए मज्झमज्झेण निग्गच्छमाणे एक्क पुरिस जुण्ण जरा-जज्जरिय-देह जाव[C] किलत महइमहालयाग्रो इट्टगरासीग्रो एगमेग इट्टग गहाय बहिया रत्थापहाग्रो अतोगिह अणुप्पविसमाण पासइ।

तए ण से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकपणट्ठाए हत्थिखधवरगए चेव एग इट्टग गेण्हइ गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाग्रो अतोघरसि अणुप्पवेसिए।

तदनन्तर दूसरे दिन कृष्ण-वासुदेव ने प्रात सूर्य-उदित हो जाने पर स्नान किया, वस्त्रादि आभूषणो से अपने शरीर को अलकृत किया और श्रेष्ठ हस्तिस्कध पर बैठकर कोरण्ट नामक फूलो की मालाग्रो से युक्त छत्र धारण कर, श्वेत चवर डुलाए जाते हुए, महान योद्धाग्रो के समूह से परिवृत्त, जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमी भगवान विराजमान थे, उधर जाने का निश्चय किया। अपने इसी विचारानुसार कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलते हुए, एक पुरुष को देखते हैं। वृद्धावस्था के कारण जिसका शरीर जर्जरित हो रहा था, अत्यधिक परिश्रम से जिसका मुँह मुर्झाया हुआ था, ऐसा वृद्ध बाह्य प्रदेश मे स्थित विशाल इंटो के ढेर मे एक एक ईंट को उठाकर घर के अन्दर रख रहा था। ऐसा देखकर कृष्ण-वासुदेव उस पुरुष पर अनुकम्पा कर हस्ति-स्कध पर बैठे हुए, एक ईंट को उठाते हैं और घर के अन्दर रख देते हैं।

तए ण कण्हेण वासुदेवेण एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहि पुरिससहेहिं से महालए इट्टगस्स रासो बहिया रत्थापहाम्रो अतोघरसि अणुप्पवेसिए ।

कृष्ण-वासुदेव के ऐसा करने पर अन्य सैकडो पुरुषो ने भी वहा से ईंटे उठाकर ईंटो की राशि को बाहर से घरके अन्दर रख दिया ।

गजसुकुमाल दर्शन के इच्छुक—श्री कृष्ण

48— तए ण से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झमज्झेण निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए उवागच्छित्ता जाव[A] वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता गयसुकुमाल अणगार अपासमाणे एव वयासी—

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलते हैं, निकलकर जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, उधर आते ह, आकर के वन्दन-नमस्कार करते है, करके, इधर-उधर गजसुकुमाल अनगार की खोज करते हैं, खोज करने पर भी जब उन्हे नही देखा तो अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास आकर वन्दन-नमस्कार करते हैं, करके इस प्रकार बोले—

कहि ण भते । से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे ज ण अह वदामि नमसामि ?

हे भगवन् ! मेरा वह सहोदर लघु-भ्राता गजसुकुमाल अनगार कहा है ? मैं उन्हे वन्दन-नमस्कार करना चाहता हू ।

प्रभु अरिष्टनेमि का श्रीकृष्ण को समझाना

49— तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

साहिए ण कण्हा ! गयसुकुमालेण अणगारेण अप्पणो अट्ठे । तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासी—कहण्ण भते ! गयसुकुमालेण अणगारेण साहिए अप्पणो अट्ठे ?

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान, कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार बोले—हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने मोक्ष प्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध कर लिया है । तब कृष्ण-वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का इस प्रकार बोले—गजसुकुमाल अनगार ने अपना प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध कर लिया ?

सम्म आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णेकुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सुगंधित जल की वृष्टि की, पाँच प्रकार के फूल बरसाये, वस्त्रों की वर्षा की, दिव्य गीत एवं मृदंग की आवाज से आकाश गुंजा दिया।

कृष्ण द्वारा वृद्ध की सहायता

47— तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव[A] ण्हाए जाव[B] विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्ल दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड–चडगर–पहकरवंद–परिक्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं जुण्णं जरा-जज्जरिय-देहं जाव[C] किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

तदनन्तर दूसरे दिन कृष्ण वासुदेव ने प्रातः सूर्य-उदित हो जाने पर स्नान किया, वस्त्रादि आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया और श्रेष्ठ हस्तिस्कंध पर बैठकर कोरण्ट नामक फूलों की मालाओं से युक्त छत्र धारण कर, श्वेत चवर डुलाए जाते हुए, महान योद्धाओं के समूह से परिवृत्त, जिधर अर्हन् अरिष्टनेमी भगवान विराजमान थे, उधर जाने का निश्चय किया। अपने इसी विचारानुसार कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मार्ग से निकलते हुए, एक पुरुष को देखते हैं। वृद्धावस्था के कारण जिसका शरीर जर्जरित हो रहा था, अत्यधिक परिश्रम से जिसका मुँह मुर्झाया हुआ था, ऐसा वृद्ध बाह्य प्रदेश में स्थित विशाल ईंटों के ढेर में से एक एक ईंट को उठाकर घर के अन्दर रख रहा था। ऐसा देखकर कृष्ण-वासुदेव उस पुरुष पर अनुकम्पा कर हस्ति-स्कंध पर बैठे हुए, एक ईंट को उठाते हैं और घर के अन्दर रख देते हैं।

तए ण कण्हेण वासुदेवेण एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहि पुरिससहेहि से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाम्रो अतोघरसि अणुप्पवेसिए ।

कृष्ण-वासुदेव के ऐसा करने पर अन्य सैकडो पुरुषो ने भ। वहा मे इटे उठाकर ईटो की राशि को बाहर से घरके अन्दर रख दिया ।

गजसुकुमाल दर्शन के इच्छुक—श्री कृष्ण

48– तए ण से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्भमज्भेण निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए उवागच्छित्ता जाव[A] वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता गयसुकुमाल अणगार अपासमाणे एव वयासी—

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलते है, निकलकर जिधर अहन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, उधर आते है, आकर के वन्दन-नमस्कार करते है, करके, इधर-उधर गजसुकुमाल अनगार की खोज करते हैं, खोज करने पर भी जब उन्हे नही देखा तो अहन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास आकर वन्दन-नमस्कार करते है, करके इस प्रकार बोले—

कहि ण भते । से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे ज ण अह वदामि नमसामि ?

ह भगवन् ! मेरा वह सहोदर लघु-भ्राता गजसुकुमाल अनगार कहा है ? मैं उन्हे वन्दन-नमस्कार करना चाहता हू ।

प्रभु अरिष्टनेमि का श्रीकृष्ण को समझाना

49– तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

साहिए ण कण्हा ! गयसुकुमालेण अणगारेण अप्पणो अट्ठे । तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासी—कहण्ण भते ! गयसुकुमालेण अणगारेण साहिए अप्पणो अट्ठे ?

तब अहन्त अरिष्टनेमि भगवान, कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार बोले—हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने मोक्ष प्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध कर लिया है । तब कृष्ण-वासुदेव अहन्त अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार बोले—गजसुकुमाल अनगार ने अपना प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध कर लिया ?

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी–एव खलु कण्हा गयसुकुमालेण अणगारे मम कल्ल पुव्वावरण्हकालसमयसि वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–इच्छामि ण जाव[B] उवसपज्जित्ता ण विहरइ।

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोले–हे कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने कल दिन के पिछले भाग मे मुझको वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके, इस प्रकार कहा–आपकी आज्ञा हो तो एक रात्रि की महाप्रतिमा ग्रहण करना चाहता हू। तदनुसार आज्ञा प्राप्त कर, वह जगल मे गया। (वहा एक पुरुष ने उन्हें ध्यानस्थ देखा, देखकर वह क्रुद्ध हुआ, यावत् गजसुकुमाल अनगार सब कर्म क्षय करके सिद्ध हुए।)

तए ण त गयसुकुमाल अणगार एगे पुरिसे पासइ पासित्ता आसुरुत्ते जाव[C] सिद्धे। त एव खलु कण्हा! गयसुकुमालेण अणगारेण साहिए अप्पणो अट्ठे।

इस प्रकार हे कृष्ण! उन्होंने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया। यह सुनकर श्री कृष्ण अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार बोले-मृत्यु को निमन्त्रण देकर बुलाने वाला, लज्जाहीन ऐसा कौन सा धृष्ट मनुष्य है, जिसने मेरे सहोदर-लघु भाई को असमय मे ही काल-कवलित कर लिया।

50– तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासी–

से के ण भते! से पुरिसे अपत्थिय–पत्थिए जाव[A] परिवज्जिए, जे ण मम सहोदर कणीयस भायर गयसुकुमाल अणगार अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी मा ण कण्हा! तुम तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि! एव खलु कण्हा! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

भगवान ने फरमाया–कृष्ण! तुम उस पर क्रोध मत करो, उसने तो गजसुकुमाल अनगार को अपने पापो का समूलत क्षय करने के लिये बहुत सहायता दी है। भगवन्! उस मनुष्य ने गजसुकुमाल अनगार को क्या सहायता दी?

कहण्ण भते! तेण पुरिसेण

अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान बोले–

गयसुकुमालस्स श्रणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी-से नूण कण्हा । तुम मम पाय वदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नगरीए एग पुरिस जाव[B] श्रणुपवेसिए ।

जहा ण कण्हा ! तुम्मे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे एवामेव कण्हा ! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स श्रणगारस्स श्रणेगभव-सयसहस्स-सचिय कम्म उदीरेमाणेण बहुकम्म णिज्जरत्थ साहिज्जे दिण्णे ।

हे कृष्ण ! अभी तुम मुझे चरण-वन्दन करने के लिये आ रहे थे, तब द्वारिका नगरी के मध्य मे तुमने एक वृद्ध को ईंट उठाते देखा । जिसे देखकर तुम्हारा मन दयार्द्र हो उठा और तुमने एक ईंट उठाकर उस वृद्ध पुरुष की सहायता की, उसी प्रकार उस पुरुष ने भी गजसुकुमाल अनगार के अनेक भवगत सहस्र-लाखो जन्मो म सचित कर्मो की उदीरणा द्वारा वहुत से कर्मों की निजरा करने मे सहायता की ।

श्रीकृष्ण के समक्ष सोमिल की मृत्यु

51— तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं एव वयासी—से ण भते ! पुरिसे मए कह जाणियव्वे ?

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी-जे ण कण्हा ! तुम बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाण पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएण काल करिस्सइ तण्ण तुम जाणिज्जासि "एस ण से पुरिसे" ।

तब कृष्ण वासुदेव ने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार कहा—

भगवन् ! मैं उस पुरुष को किस प्रकार जान सकता हू ।

तब अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण-वासुदेव से कहा—

कृष्ण ! यहा से चलने के अनन्तर जब तुम द्वारिका नगरी मे प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हे देख-कर भयभीत होगा और वहा गिर जायगा तथा आयु समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जायगा । उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है जिसने गजसुकुमाल अनगार को सहायता दी है ।

तए ण से कण्णे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणेव आभिसेय हत्थिरयण तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थि दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण तस्स सोमिलमाहणस्स कल्ल जाव^ जलते अयमेयारुवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पणे—एव खलु कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमिं पायवदए निग्गए। त नायमेय अरहया विण्णायमेय अरहया सुयमेय अरहया, सिद्धमेय अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। त न नज्जइ ण कण्हे वासुदेवे मम केणइ कु-मारेण मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे सजायभए सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइ नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्ख सपडिदिसिं हव्वमागए।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का समाधान पाकर, प्रभु को वन्दना नमस्कार करते हैं, करके श्री कृष्ण ने वहा से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्ती रत्न पर बैठकर घर की ओर जाने का निश्चय किया। श्री कृष्ण अपने निश्चयानुसार महलो की ओर आ रहे थे, उधर अगले दिन सूर्योदय के साथ ही सोमिल ब्राह्मण के मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि निश्चय ही सूर्योदय होने पर कृष्ण वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे वन्दन-नमस्कार करने गये हैं। भगवान को सब ज्ञात है, विज्ञात है और किसी देव के द्वारा सुन भी लिया गया हो। यह निश्चित है कि वे कृष्ण-वासुदेव को सारा वृत्तान्त बता देंगे। अपने छोटे भाई का हत्यारा जानकर मुझे कृष्ण वासुदेव न जाने किस प्रकार मरवाएगे। इतना जानते ही सोमिल ब्राह्मण भयभीत हो उठा। त्रास और उद्वेग की अधिकता के कारण वह कांपने लगा, भय और उद्वेग से व्याकुल हुआ। सोमिल ब्राह्मण घर से भागने के लिये निकल पडा। उधर द्वारिका नगरी मे प्रवेश करते हुए कृष्ण-वासुदेव उनके सामने आ गये। इस प्रकार सोमिल ब्राह्मण और कृष्ण का अचानक ही परस्पर सामना हो गया।

सोमिल के शव पर श्रीकृष्ण का क्रोध

52— तए ण से सोमिले माहणे कण्ह वासुदेव सहसा पासेत्ता भोए तत्थे तसिए उव्विग्गे सजायभए ठियए चेव ठिइमेएण काल करेइ, धरणितलसि सव्वगेहिं "धस" त्ति सण्णिवडिए। तए ण से कण्हे वासुदेवे सोमिल माहण पासइ पासित्ता एव वयासी—

"एस ण भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव[A] परिवज्जिए जेण मम सहोयरे कणीयसे भायरे गजसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिल माहण पाणेहिं कड्ढावेइ कड्ढावेत्ता त भूमि पाणिएण अब्भोक्खावेइ अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सय गिह अणुप्पविट्ठे।

सोमिल ब्राह्मण अचानक श्री कृष्ण को अपने सामने देखकर भय के मारे घबरा उठा, उसका हृदय धडकने लगा। अधिक भय के कारण आयुष्य की भी समाप्ति होने से उसका शरीर धडाम से भूमि पर गिर पडा।

भूमितल पर गिरे सोमिल ब्राह्मण को देखकर श्री कृष्ण ने अपने साथियो को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भद्र पुरुषो! सामने भूमि तल पर पडा हुआ, मृत्यु का प्रार्थी, श्री एव लज्जा से विहीन, यह वही सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे सहोदर-लघु भ्राता गजसुकुमाल अनगार का अकाल मे ही प्राणापहरण किया है। ऐसा कहने के पश्चात् श्री कृष्ण ने (पाणे-चाण्डालै) चाण्डालो द्वारा सोमिल ब्राह्मण के पैरो को रस्सी मे बँधवाकर घसीटवाते हुए नगरी के बाहर फिकवा देते हैं। यह सब कुछ करने के अनन्तर सोमिल ब्राह्मण का जहा शव पडा था, उस स्थान को जल से साफ करवाते ह, तदनन्तर अपने महलो मे चले जाते हैं।

53— एव खलु जबू! समणेण भगवया महावीरेण जाव[B] सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वग के अष्टम अध्ययन का यह सार प्रतिपादित किया ह।

9वां अध्ययन

54— नवमस्स उक्खेवओ[A] ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया जहा पढमाए जाव[B] विहरइ । तत्थ ण बारवईए बलदेवे नाम राया होत्था वण्णओ[C] । तस्स ण बलदेवस्स रण्णो धारिणी नाम देवो होत्था । वण्णओ[D] । तए ण सा धारिणी देवी सोह सुविणे जहा गोयमे नवर वीस वासाइ परियाओ । सेस त चेव सत्तुजे सिद्धे ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अत्तगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

नवम्-अध्ययन का उत्क्षेप-पहले की तरह जान लेना चाहिये ।

आर्य सुधर्मा स्वामी, आर्य जम्बू स्वामी से कहने लगे-हे जम्बू ! उस समय द्वारिका नगरी में महाराज श्री कृष्ण, यावत् सुखपूर्वक विचरण करते थे । उस समय बलदेव नामक राजा के धारिणी नामक देवी थी । वह धारिणी देवी सिंह स्वप्न को देखकर गर्भ धारण करती है और समय पर पुत्र रत्न को जन्म देती है । गौतम कुमार की भांति बालक का जन्मोत्सव आदि मनाया गया । पुत्र का नाम सुमुखकुमार रखा गया । युवावस्था आने पर पचास-पचास कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया गया । पचास-पचास प्रकार का प्रीतिदान प्राप्त हुआ । वैराग्य आने पर साधु जीवन अंगीकार कर लेते हैं । चौदह पूर्वों का अध्ययन करते हैं । बीस वर्ष पर्यन्त सयम पर्याय का पालन करते हैं । अन्त में शत्रुंजय नामक पर्वत पर सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

10–13 अध्ययन

55— एव दुम्मुहे वि । कूवए वि तिण्णि वि बलदेव-धारिणी सुया ।

दारुए वि एव चेव, नवर-वसुदेव धारिणी-सुए ।

एव अणाहिट्ठी वि वसुदेव धारिणी सुए । एव खलु जबू !

इसी प्रकार द्विमुख और कूपदारुक कुमार का वर्णन भी जान लेना चाहिये । सुमुख और कूपदारुक ये तीनों राजा बलदेव एव धारिणी के आत्मज थे । इसी प्रकार दारुक कुमार के विषय में भी जानना चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था । दारुक कुमार के भाई अनादृष्टि कुमार में

समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

।। तईओ वग्गो सम्मत्तो ।।

जीवन का भी ऐसा ही वणन जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह वसुदेव राजा और धारिणी रानी का पुत्र था।

आय सुधर्मा स्वामी ने आय जम्बू स्वामी को सबोधित करते हुए कहा—हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष प्राप्त, यावत् श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वग के तेरह अध्ययनो का मार प्रतिपादित किया ह।

।। तृतीय वग समाप्त ।।

9वाँ अध्ययन

54— नवमस्स उक्खेवग्रो[A] ।

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए कण्हे नाम वासुदेवे राया जहा पढमाए जाव[B] विहरइ । तत्थ ण बारवईए बलदेवे नाम राया होत्था वण्णग्रो[C] । तस्स ण बलदेवस्स रण्णो धारिणी नाम देवी होत्था । वण्णग्रो[D] । तए ण सा धारिणी देवी सीह सुविणे जहा गोयमे नवर वीस वासाइ परियाग्रो । सेस त चेव सत्तुजे सिद्धे ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रत्तगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स ग्रज्झयणस्स ग्रयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

नवम्-ग्रध्ययन का उत्क्षेप-पहले की तरह जान लेना चाहिये ।

ग्राय सुधर्मा स्वामी, ग्राय जम्बू स्वामी से कहने लगे—हे जम्बू ! उस समय द्वारिका नगरी मे महाराज श्री कृष्ण, यावत् सुखपूर्वक विचरण करते थे । उस समय बलदेव नामक राजा के धारिणी नामक देवी थी । वह धारणी देवी सिंह स्वप्न को देखकर गर्भ धारण करती है ग्रौर समय पर पुत्र रत्न को जन्म देती है । गौतम कुमार की भाँति बालक का जन्मोत्सव ग्रादि मनाया गया । पुत्र का नाम सुमुखकुमार रखा गया । युवावस्था ग्राने पर पचास-पचास कन्याग्रो के साथ उसका विवाह कर दिया गया । पचास-पचास प्रकार का प्रीतिदान प्राप्त हुग्रा । वैराग्य ग्राने पर साधु जीवन ग्रगीकार कर लेते हैं । चौदह पूर्वों का ग्रध्ययन करते हैं । बीस वर्ष पर्यन्त सयम पर्याय का पालन करते हैं । ग्रन्त मे शत्रुजय नामक पर्वत पर सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

10–13 अध्ययन

55— एव दुम्मुहे वि । कूवए वि तिण्णि वि बलदेव-धारिणी सुया ।

दारुए वि एव चेव, नवर-वसुदेव धारिणी-सुए ।

एव ग्रणाहिट्ठी वि वसुदेव धारिणी सुए । एव खलु जबू !

इसी प्रकार द्विमुख ग्रौर कूपदारक कुमार का वर्णन भी जान लेना चाहिये । सुमुख ग्रौर कूपदारक य तीनो राजा बलदेव एव धारिणी के ग्रात्मज थे । इसी प्रकार दारुक कुमार के विषय में भी जानना चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनके पिता का नाम वसुदेव ग्रौर माता का नाम धारिणी था । दारुक कुमार के भाई ग्रनादृष्टि कुमार के

समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्ते ण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

।। तईग्रो वग्गो सम्मत्तो ।।

जीवन का भी ऐसा ही वर्णन [illegible] चाहिए। विशेषता यह है कि वह [illegible] राजा और धारिणी रानी का पुत्र था।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने आर्य [illegible] स्वामी को सबोधित करते हुए [illegible] जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष प्राप्त, यावत् [illegible] भगवान महावीर ने आठवें अन्तकृद्दशांग [illegible] के तृतीय वग के तेरह अध्ययनों [illegible] प्रतिपादित किया है।

।। तृतीय वग समाप्त ।।

तृतीय वर्ग—जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — 'चउद्दसपुव्वाइं'-चौदह पूर्व क्या है ?

समाधान — चौदह पूर्वों का वर्णन इस प्रकार है—

उत्पादपूर्व—इस पूर्व में सभी द्रव्य, सभी पर्यायों के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गयी है ।

अग्रायणीपूर्व—इसमें सभी द्रव्यों, सभी पर्यायों और जीवों के परिमाण का वर्णन है ।

वीर्य प्रवादपूर्व—इसमें कर्म सहित और बिना कर्म वाले जीवों तथा अजीवों के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है ।

अस्ति-नास्ति प्रवादपूर्व—संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान हैं, उन सबका वर्णन इस पूर्व में है ।

ज्ञान प्रवादपूर्व—इसमें मतिज्ञान आदि पञ्चविधज्ञानों का विस्तृत वर्णन है ।

सत्य प्रवादपूर्व—इसमें सत्य रूप संयम का या सत्य वचन का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

आत्म प्रवादपूर्व—इसमें अनेक नय तथा मतों की अपेक्षा से आत्मा का वर्णन है ।

कर्म प्रवादपूर्व—इसमें आठ कर्मों का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप में दिया गया है ।

प्रत्याख्यान-प्रवादपूर्व—इसमें प्रत्याख्यानों का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन है ।

विद्यानुवाद-पूर्व—इस पूर्व में विविध प्रकार की विद्याओं तथा सिद्धियों का वर्णन है ।

अवन्ध्यपूर्व—इसमें ज्ञान तप, संयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले, निष्फल न जाने वाले कार्यों का वर्णन है ।

प्राणायुष्य प्रवादपूर्व—इसमें दस प्राण और आयु आदि का भेद-प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है ।

क्रिया विशालपूर्व—इसमें कायिकी, अधिकरणिकी आदि तथा संयम में उपकारक क्रियाओं का वर्णन है ।

लोक बिन्दुसारपूर्व—संसार में श्रुतज्ञान में जो शास्त्र, बिन्दु की तरह सबमें श्रेष्ठ है, वह लोक बिन्दुसार है ।

जिज्ञासा —"सिंह केसर मोदक" किसे कहते हैं ?

समाधान —'सिंह केसरमोयगाए' का अर्थ है– सिंह केसर नामक मोदक । गुजराती कोष शब्द संग्रह के पृष्ठ ७८१ पर मोदक का अर्थ इस प्रकार किया है— "सिंह केसर पुं (सिंह केसर) सिंह नी केशो बुंदीना बनावेल लाडवा सिंह केसरिया लाडवा" अर्थात् शेर की गर्दन के बालों के समान बारीक दानों से निर्मित मोदक को 'सिंह केसर मोदक' कहते हैं ।

"सीह केसराणा मोयगाए"—सिंह केसराणा मोदकाना। चतुरशीति-विशिष्ट-वस्तु विनिर्मितामोदका सिंह केसर मोदका उच्यते। अर्थात् जिन लड्डुओ मे ८४ प्रकार की विशिष्ट वस्तुएँ प्रक्षिप्त की जाती है उसे सिंह केसर मोदक कहते है। कहने का तात्पय यह है कि "सिंह केसर मोदक" अत्यन्त गरिष्ट एव अत्यधिक ताकतवर होता है।

जिज्ञासा —सुलसा गाथापत्नी ने देव की अर्चना की तो आज देव-पूजा के लिये निषेध क्यों किया जाता है?

समाधान —सासारिक पर्याय मे रहने वाले प्राणी के मन मे सासारिक अन्यान्य भावनाओ के साथ सतान की भावना भी बलवती होती है। सुलसा गाथापत्नी की जब बाल्यावस्था थी तभी उसे किसी ज्योतिषी ने कहा कि तुम मृतवन्ध्या होगी। ये शब्द सुलसा के मानस पटल पर स्थायी रूप मे बन चुके थे। इसी भावना से वह सदा अनुप्राणित रहती थी। मन मे कई तरह के सकल्प-विकल्प भी आया करते थे—यह मेरे जीवन के लिये एक कलक का रूप है, जो कि नही रहना चाहिये। इसको दूर करने के लिये वह अनेक तरह के प्रयत्न करती थी।

जब उसे कोई अन्य विशेष उपाय परिलक्षित नही हुआ, तब उसे सहसा स्मृति मे आया कि मैं हरिणगमेषी देव की भक्ति करू। व्यक्ति जब विशिष्ट ज्ञान मे सपन्न होता है तब तो उसको भक्ति का रूप भी पाप प्रवृत्ति से रहित दिखता है। पर विशिष्ट ज्ञान के अभाव मे मन-कल्पित भक्ति का रूप भी बना लिया जाता है। सुलसा भी उसी भावना से हरिणगमेषी देव की प्रतिमा बनाकर, उसको आराधित करने की प्रक्रिया करने लगी। उसकी यह प्रवृत्ति भावावेश का परिणाम था। सामान्य आत्मा भावावेश मे आकर इच्छानुसार कल्पित कल्पना से कार्य करने लगती है। देव का वैक्रिय शरीर होता है। औदारिक शरीर की उपमा भी उसके योग्य नही रहती, तो उसकी निर्जीव प्रतिमा बनाना कैसे योग्य रह सकता है? यह तो सुज्ञ सहज ही समझ सकता है। देव उन अयोग्य साधना को देखकर के आकर्षित होता है तो भक्ति करने वाले के भावो को भी समझकर आकर्षित होता है। क्योकि भावो का सबध भावो के साथ जुडता है, भाव शून्य द्रव्य के साथ नही। सुलसा को सतान की जितनी लालसा नही थी, उतनी मृत-वन्ध्या के कलक को मिटाने की थी। उस कलक को परिमार्जित करने के लिये वह देव की भक्ति मे इतनी दत्तचित्त बन गई कि जिससे आर्त्तध्यान का रूप, तीव्रता को धारण कर चुका था। और उस आर्त्त की भावना हरिणगमेषी देव तक पहुँची, तो उस देव ने देखा कि यह नारी अपने कलक के लिये अति दु खित है। दु खी आत्मा पर अनुकपा करना सम्यक्दृष्टि का लक्षण है। इसी प्रसग से उसने अपने ज्ञान के माध्यम से देवकी महारानी की कुक्षि मे जन्म लेने वाली दिव्य आत्माओ का भी ध्यान लगाया

और उनकी भी अनुकम्पा आवश्यक समझी, तब देव ने सुलसा को दर्शन दिये और उसके त्रास को शमित करने के लिये कहा कि मैं इसके लिये प्रयत्न करूंगा, जिससे तुम्हारा यह कसर समाप्त हो जाय। तदनुसार उस देव ने शास्त्र मे वर्णित प्रक्रिया पूरी की और अनुकम्पा का आदर्श उपस्थित किया।

जिज्ञासुओ के लिये यह ध्यातव्य है कि चरित्तानुवेद मे अनेक प्रकार के प्रसग उपस्थित होते हैं, वे सभी प्रसग ग्रहण करने योग्य नही होते। जो प्रसग रत्नत्रय की अभिवृद्धि मे सहायक हो वे प्रसग स्वय के लिए एव अन्य के लिए उपादेय होते हैं।

रत्नत्रय की अभिवृद्धि रूप प्रसगो का कथन अन्यो के रत्नत्रय की अभिवृद्धि म भी करना चाहिए। साधारण व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला इस प्रकार का मन कल्पित भक्ति का रूप तथा हिंसादिक साधना मे प्रवृत्ति आदि सावद्य प्रक्रियाओ का कथन उपादेय रूप से नहीं लेना चाहिए।

इसी सदभ मे सुलसा के चरितानुवाद को ध्यान मे लेने पर उपयुक्त प्रसग का अवकाश ही नही रहता।

जिज्ञासा —श्रीकृष्ण-वासुदेव ने अनुकम्पा करके वृद्ध की सहायता के लिये एक ईंट उठाकर भीतर रख दी। लेकिन प्रभु या साधु ईंट उठाने की आज्ञा नही देते, अत कृष्ण की यह अनुकम्पा सावद्य हुई। क्या यह मानना सत्य है?

समाधान —अनुकम्पा परिणामो मे आती है और ईंट उठाने की क्रिया शरीर द्वारा होती है। ईंट उठाने की क्रिया भिन्न है और अनुकम्पा भिन्न है। ईट उठाने की क्रिया से अनुकम्पा सावद्य नहीं हो सकती। यदि ईंट उठाने की क्रिया से अनुकम्पा सावद्य हो जाय तो जब भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन के लिये श्री कृष्ण-वासुदेव चतुरगिणी सेना सजाकर गए थे, तब भगवान की वदना भी सावद्य हो जानी चाहिये। क्योंकि भगवान या साधु सेना सजाने के लिये आज्ञा नहीं देते। लेकिन इस प्रसग से तो यही कहा जाता है कि सेना सजाना भिन्न कार्य है। अत सेना सजाने के कारण प्रभु वन्दना सावद्य नहीं हो जाती। ठीक इसी प्रकार यह भी समझना चाहिये कि वृद्ध के प्रति किये अनुकम्पापूर्ण प्रशस्त विचार भिन्न है और ईंट उठाने रूप क्रिया भिन्न है। ईट उठाने रूप क्रिया से अनुकम्पा कभी सावद्य नहीं होगी। भगवान एव साधु ईट उठाने की आज्ञा नहीं देते, परन्तु अनुकम्पा को अच्छी बताते हैं और अनुकम्पा करने की आज्ञा देते हैं। अत ईट उठाने की क्रिया का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य कहना मिथ्या है।

जिज्ञासा —अरिष्टनेमि प्रभु ने गजसुकुमाल अनगार की अनुकम्पा नहीं की और न ही उनकी रक्षा के लिये साथ मे कोई साधु भेजे, अत अनुकम्पा करना पाप है। इस प्रकार की मान्यता क्या सत्य है?

समाधान -गजसुकुमाल अनगार जिस दिन दीक्षित हुए थे, उसी दिन बारहवी महाभिक्षु प्रतिमा अगीकार करके श्मशान जाकर ध्यान धर कर खड़े रहने की, प्रभु अरिष्टनेमि से आज्ञा मागी थी ।

ग्यारहवी भिक्षुप्रतिमा का विधिवत् पालन करने के अनतर बारहवी भिक्षुप्रतिमा अगीकार की जाती है । इसका समय केवल एक रात्रि का होता है । इसकी आराधना बेले के अनन्तर चौविहार-तेला करके किया जाता है । इसके आराधक ग्रामादि मे बाहर जाकर, शरीर को इषत्, कुछ आगे की ओर झुकाकर, एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए, अनिमेष नेत्रो से निश्चलता पूर्वक, सब इन्द्रियो को गुप्त रखकर, दोनो पैरो को सकुचित कर, हाथो का घुटना तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना होता है । कायोत्सर्ग मे देव, मनुष्य, तिर्यंच सम्बन्धी किसी भी प्रकार से उत्पन्न परिषहो का दृढता से सहन करना होता है । मलमूत्र की आशका होने पर प्रतिलेखित भूमि पर उसे विसर्जन कर पुन आकर कायोत्सर्ग करना होता है । इस प्रतिमा की सम्यक् प्रकार से आराधना होने पर साधक को निश्चित रूप से अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान या केवलज्ञान मे से किसी एक ज्ञान की प्राप्ति होती है । लेकिन देवादि उपसर्गों के सम्यक् प्रकार से सहन न करने पर पागलपन या दीर्घकाल तक रहने वाला राग या केवली धर्म मे साधक गिर जाता है । यह साधना कम से कम २९ वर्ष की अवस्था वाला, लगभग १० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला ही कर सकता है और अष्टम् भक्त-तेला भी होना चाहिये । लेकिन गजसुकुमाल अनगार न तो २९ वर्ष के थे, न ही १० वर्ष की दीक्षा पर्याय थी और न ही तेले का तप ही था । फिर भी भगवान ने गजसुकुमाल अनगार को योग्यता एव उसी प्रकार से होने वाला उनका मोक्ष जानकर उन्हे बारहवी भिक्षु प्रतिमा साधने की आज्ञा दे दी ।

दूसरी बात चरम शरीरी जीव होने से गजसुकुमाल अनगार का आयुष्य अनपवर्तनीय था । जो कि उपक्रम लगने पर भी बिना आयु की समाप्ति के समाप्त नही हो सकता । गजसुकुमाल अनगार अपने आयुष्य के पूर्ण क्षय होने पर ही मोक्ष मे गये थे । उनका आयुष्य मध्य मे टूटा नही था ।

भगवान सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने के कारण उन्होने अपने ज्ञान मे जैसा देखा वैसा किया । अत कहना मिथ्या है कि अरिष्टनेमि भगवान ने गजसुकुमाल अनगार की रक्षा नही की, क्योंकि भगवान तो जानते थे कि इनका इसी प्रकार कल्याण होने वाला है, अत उन्होंने महाभिक्षु प्रतिमा की पूर्व विधि न होने पर भी उन्हे आज्ञा दे दी थी ।

दूसरी बात सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कल्पनातीत होते हैं । अत वे अपने ज्ञान मे जैसा देखते हैं, वैसा करते हैं । किन्तु सूत्र व्यवहारी साधक के लिये तो सूत्रानुसार बनाई गई विधि के अनुसार ही

आचरण करना चाहिये ।

गजसुकुमाल मुनि थे और उनकी रक्षा के लिये संतों को नहीं भेजा, इसलिए अनुकम्पा करना पाप है, यह मान्यता शास्त्रीय दृष्टि से भी विपरीत पड़ती है । क्योंकि इस हेतु से यह तात्पर्य निकलता है कि साधु की रक्षा भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भगवान अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल अनगार की रक्षा के लिये संतों को नहीं भेजा । किन्तु विचारणीय विषय यह है कि यदि संत जीवन की रक्षा करना भी पाप है तो फिर भगवान ने साधु जीवन की रक्षा हेतु आहार-पानी की विधियाँ क्यों बतलाई ? जब कि ग्लान साधु की सेवा करना उसकी रक्षा करना है । इस प्रकार साधु की सेवा का उपदेश क्या दिया ? गृहस्थ जो आहार-पानी साधु को देता है, वह साधु की रक्षा के लिए देता है । जिसके लिए भगवान की आज्ञा है । इस उपरोक्त मान्यता के अनुसार तो साधु-साध्वियों को आहार-पानी भी नहीं देना चाहिये, न ही उनकी सुरक्षा के लिये कोई साधन ही जुटाना चाहिए । रुग्ण एवं ग्लान साधु-साध्वियों की, अन्य साधु साध्वियों की सेवा भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसमें साधु-साध्वियों की रक्षा होगी । इस कल्पित सिद्धान्तानुसार, कि अनुकम्पा में पाप है, इसलिये प्रभु अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल की रक्षा के लिये कोई साधु नहीं भेजे, तो साधु-साध्वी की रक्षा में भी पाप ही होगा । पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । साधु की रक्षा करना महा-धर्म है, अन्य प्राणियों की अनुकम्पा भाव से रक्षा करना सम्यग्दृष्टि भाव का पोषण है ।

जिज्ञासा —हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के यहाँ और देवकी के पुत्रों को सुलसा के यहाँ पहुँचाया । इस प्रकार की क्रिया करने में हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य थी । क्या ऐसा मानना सत्य है ?

समाधान —आन-जान की क्रिया में सुलसा पर की गई हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य नहीं है । जैसे कि चतुरंगिणी सेना सजाकर प्रभु के दर्शन करने जाने में दर्शन सावद्य नहीं है ।

आन-जान की क्रिया अलग है और अनुकम्पा भिन्न है । हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दुःख की निवृत्ति की तथा बालकों पर अनुकम्पा करके उनके प्राण भी बचाए थे । इस अनुकम्पा का फल यह हुआ कि वे बालक कंस के भय से बच गये तथा हरिणैगमेषी देव को अभयदान का फल भी मिला । अतः हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा को सावद्य नहीं कहा जा सकता ।

जिज्ञासा —'नल कूबर समाणा' का अर्थ 'वैश्रमण देव के पुत्र समान' किया जाता है । वैश्रमण (वैश्रमण) देव के तो पुत्र होते नहीं फिर यह कैसे कहा गया ?

समाधान —यह सत्य है कि देव के कोई पुत्र नही होता । अत नलकूबर के भी कोई पुत्र नही था । 'नलकुब्बर समाणा' से नलकूबर का पुत्र अर्थ लेना उपमा से ही यौक्तिक हो सकता है । उपमा एक देशीय होती है । वैसे भी नलकूबर (वैश्रमण) देव की सुन्दरता प्रसिद्ध है । रथनेमि को फटकारते हुए राजमति ने भी कहा है कि यदि तुम वैश्रमण देव के समान रूपवान भी हो तो भी मैं तुम्हे नही चाहती । या फिर ऐसा भी हो सकता है कि नलकूबर देव ने कभी प्रसग वश वैक्रिय पुद्गलो से अत्यन्त सुन्दर पुरुष को विकुर्वित किया हो । जिसे देखकर यह उपमा दी जाती है । इस विशेषण से छ अनगारो के रूप की उत्कृष्टता का ही वर्णन किया है ।

जिज्ञासा —छ अनगारो के लिये 'सरिसव्वया' एक समान उम्र वाले विशेषण कैसे दिया गया, क्योकि सभी का जन्म तो एक साथ नही हुआ था ?

समाधान —छ अनगारो के लिये दिये गये विशेषण व्यावहारिक प्रतीति की अपेक्षा से दिये गये हो, ऐसा प्रतीत होता है । 'सरिसव्वया' विशेषण के पूर्व 'सरिसया और सरित्तया' अर्थात् समान थे, समान त्वचा वाले थे, ये विशेषण भी लगाये गये हैं । 'सरिसव्वया' के अनतर "विलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा" विशेषण भी लगाया गया है । जिसका अर्थ होता है—उन छहो अनगारो का वर्ण भैंस के सीग के अन्दर का भाग, गुलिका नामक रग तथा अलसी के फूल के समान प्रकाश युक्त था । छहो अनगारो का जन्म एक साथ नही हुआ था, अत उनकी आयु भी एक समान नही हो सकती है और न ही वे एक समान हो हो सकते हैं । उनकी त्वचा, आयु की तारतम्यता के कारण एक समान नही हो सकती और न ही वर्ण भी एक समान हो सकता है । तथापि इन विशेषणो को देने का तात्पर्य यह हो सकता है कि आयु, वर्ण, त्वचा आदि मे किंचित तारतम्यता होते हुए भी वह लोगो को प्रतीत नही होती थी । उन्हे तो छहो अनगार एक समान ही लगते थे ।

दूसरी बात यह है—"बाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति" मुख्यता की अपेक्षा से कथन होता है । जिस बगीचे मे ९० आम्र के और १० नीम के वृक्ष हैं तो वह बगीचा आम्र बगीचा ही कहलायेगा, नीम का नही । ठीक इसी प्रकार छहो अनगारो मे आशिक तारतम्यता होते हुए भी, तथा वह भी प्रतीति मे न आने से, उसकी विवक्षा नही की गई है ।

जिज्ञासा —छ अनगारो को देखकर देवकी महारानी को यह स्मृति हो आई थी कि "अतिमुक्त कुमार नामक अनगार ने मुझे यह कहा था—तुम एक समान आठ पुत्रो को जन्म दोगी—ऐसे पुत्रो को इस पूरे भरतक्षेत्र मे कोई भी माता जन्म नही दे पायगी ।" इसी बात का स्पष्टीकरण प्रभु अरिष्टनेमि ने भी किया था । लेकिन जब आर्त्तध्यान करती हुई देवकी

आचरण करना चाहिये ।

गजसुकुमाल मुनि थे और उनकी रक्षा के लिये सतों का नही भेजा, इसलिये अनुकम्पा करना पाप है, यह मान्यता शास्त्रीय दृष्टि से भी विपरीत पड़ती है । क्योंकि इस हेतु से यह तात्पर्य निकलता है कि साधु की रक्षा भी नही करनी चाहिये, क्योंकि भगवान अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल अणगार की रक्षा के लिये सतों को नही भेजा । किन्तु विचारणीय विषय यह है कि यदि सत जीवन की रक्षा करना भी पाप है तो फिर भगवान ने साधु जीवन की रक्षा हेतु आहार-पानी की विधियाँ क्या बतलाई ? जब कि ग्लान साधु की सेवा करना उनकी रक्षा करना है । इस प्रकार साधु की सेवा का उपदेश क्या दिया ? गृहस्थ जो आहार-पानी साधु को देता है, वह साधु की रक्षा के लिये देता है । जिसके लिये भगवान की आज्ञा है । इस उपरोक्त मान्यता के अनुसार तो साधु-साध्वियों को आहार-पानी भी नहीं देना चाहिये, न ही उनकी सुरक्षा के लिये कोई साधन ही जुटाना चाहिये । रुग्ण एवं ग्लान साधु-साध्वियों की, अन्य साधु साध्वियों की सेवा भी नही करना चाहिये, क्योंकि इसमें साधु-साध्वियों की रक्षा होगी । इस कल्पित सिद्धातानुसार, कि अनुकम्पा में पाप है, इसलिये प्रभु अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल की रक्षा के लिये कोई साधु नहीं भेजे, तो साधु-साध्वी की रक्षा मे भी पाप ही होगा । पर वस्तुत ऐसा नहीं है । साधु की रक्षा करना महा-धर्म है, अन्य प्राणियों की अनुकम्पा भाव से रक्षा करना सम्यग्दृष्टि भाव का पोषण है ।

जिज्ञासा —हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के यहाँ और देवकी के पुत्रों को सुलसा के यहाँ पहुँचाया । इस प्रकार की क्रिया करने से हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य थी । क्या ऐसा मानना सत्य है ?

समाधान —आन-जान की क्रिया से सुलसा पर की गई हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य नहीं है । जैसे कि चतुरंगिणी सेना सजाकर प्रभु के दर्शन करने जाने से दर्शन सावद्य नहीं है ।

आने-जाने की क्रिया अलग है और अनुकम्पा भिन्न है । हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दुःख की निवृत्ति की तथा बालकों पर अनुकम्पा करके उनके प्राण भी बचाए थे । इस अनुकम्पा का फल यह हुआ कि वे छहों बालक भव से मुक्त हुए तथा हरिणैगमेषी देव का अभयदान का फल भी मिला । अत हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा को सावद्य नहीं कहा जा सकता ।

जिज्ञासा —'नल कुब्बर समाणा' का अर्थ 'वैश्रमण देव के पुत्र समान' किया जाता है । परन्तु (वैश्रमण) देव के तो पुत्र होते नहीं फिर यह क्यों कहा गया ?

समाधान —यह सत्य है कि देव के कोई पुत्र नही होता। अत नलकूबर के भी कोई पुत्र नही था। 'नलकुब्बर समाणा' से नलकूबर का पुत्र अथ लेना उपमा से ही यौक्तिक हो सकता है। उपमा एक देशीय होती है। वैसे भी नलकूबर (वैश्रमण) देव की सुन्दरता प्रसिद्ध है। रथनेमि को फटकारते हुए राजमति ने भी कहा है कि यदि तुम वैश्रमण देव के समान रूपवान भी हो तो भी मैं तुम्ह नही चाहती। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि नलकूबर देव ने कभी प्रसग वश वैक्रिय पुद्गलो से अत्यन्त सुन्दर पुरुप को विकुर्वित किया हो। जिसे देखकर यह उपमा दी जाती है। इस विशेपण से छ अनगारो के रूप की उत्कृष्टता का ही वणन किया है।

जिज्ञासा —छ अनगारो के लिये 'सरिसव्वया' एक समान उम्र वाले विशेपण कैसे दिया गया, क्योकि सभी का जन्म ता एक साथ नही हुआ था ?

समाधान —छ अनगारो के लिये दिये गय विशेपण व्यावहारिक प्रतीति की अपक्षा मे दिय गये हो, ऐसा प्रतीत होता है। 'सरिसव्वया' विशेपण के पूर्व 'सरिसया और सरित्तया अथात समान थे, समान त्वचा वाले थे, ये विशेपण भी लगाये गये है। 'सरिसव्वया' के अनतर "विलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा" विशेपण भी लगाया गया है। जिसका अथ होता है—उन छहा अनगारो का वण भस के सीग के अन्दर का भाग, गुलिका नामक रग तथा अलसी के फूल के समान प्रकाश युक्त था। छहो अनगारों का जन्म एक साथ नही हुआ था, अत उनकी आयु भी एक समान नही हो सकती है और न ही वे एक समान ही हो सकते हैं। उनकी त्वचा, आयु की तारतम्यता के कारण एक समान नही हो सकती और न ही वण भी एक समान हो सकता है। तथापि इन विशेपणा को देने का तात्पय यह हो सकता है कि आयु, वर्ण, त्वचा आदि मे किंचित तारतम्यता हाते हुए भी वह लोगो को प्रतीत नही होती थी। उन्हे तो छहो अनगार एक समान ही लगते थे।

दूसरी बात यह है—"बाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति" मुख्यता की अपेक्षा से कथन होता है। जिस बगोचे मे ९० आम्र के और १० नीम के वृक्ष हैं तो वह बगीचा आम्र बगीचा ही कहलायेगा, नीम का नही। ठीक इसी प्रकार छहा अनगारा मे आशिक तारतम्यता होते हुए भी, तथा वह भी प्रतीति मे न आने से, उसकी विवक्षा नही की गई है।

जिज्ञासा —छ अनगारो को देखकर देवकी महारानी को यह स्मृति हो आई थी कि "अतिमुक्त कुमार नामक अनगार ने मुझ यह कहा था—तुम एक समान आठ पुत्रो को जन्म दोगी—ऐसे पुत्रो को इस पूरे भरतक्षेत्र मे कोई भी माता जन्म नही दे पायेगी।" इसी बात का स्पष्टीकरण प्रभु अरिष्टनेमि ने भी किया था। लेकिन जब आर्त्तध्यान करती हुई देवकी

आचरण करना चाहिये ।

गजसुकुमाल मुनि थे और उनकी रक्षा के लिये सन्तो को नहीं भेजा, इसलिये अनुकम्पा करना पाप है, यह मान्यता शास्त्रीय दृष्टि से भी विपरीत पड़ती है । क्योंकि इस हेतु से यह तात्पर्य निकलता है कि साधु की रक्षा भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भगवान अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल अनगार की रक्षा के लिये सन्तों को नहीं भेजा । किन्तु विचारणीय विषय यह है कि यदि सन्त जीवन की रक्षा करना भी पाप है तो फिर भगवान ने साधु जीवन की रक्षा हेतु आहार-पानी की विधियाँ क्यों बतलाई ? जब कि ग्लान साधु की सेवा करना उनकी रक्षा करना है । इस प्रकार साधु की सेवा का उपदेश क्या दिया ? गृहस्थ जो आहार-पानी साधु को देता है, वह साधु की रक्षा के लिये देता है । जिसके लिये भगवान की आज्ञा है । इस उपरोक्त मान्यता के अनुसार तो साधु-साध्वियो को आहार-पानी भी नहीं देना चाहिये, न ही उनकी सुरक्षा के लिये कोई साधन ही जुटाना चाहिये । रुग्ण एवं ग्लान साधु-साध्वियों की, अन्य साधु-साध्वियों की सेवा भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे साधु-साध्वियो की रक्षा होगी । इस कल्पित सिद्धान्तानुसार, कि अनुकम्पा में पाप है, इसलिये प्रभु अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल की रक्षा के लिये कोई साधु नहीं भेजे, तो साधु-साध्वी की रक्षा में भी पाप ही होगा । पर वस्तुतः ऐसा नहीं है । साधु की रक्षा करना महा-धर्म है, अन्य प्राणियों की अनुकम्पा भाव से रक्षा करना सम्यग्दृष्टि भाव का पोषण है ।

जिज्ञासा —हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के यहाँ और देवकी के पुत्रों को सुलसा के यहाँ पहुँचाया । इस प्रकार की क्रिया करने से हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य थी । क्या ऐसा मानना सत्य है ?

समाधान —आने-जाने की क्रिया से सुलसा पर की गई हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा सावद्य नहीं है । जैसे कि चतुरंगिणी सेना सजाकर प्रभु के दर्शन करने जाने में दर्शन सावद्य नहीं है ।

आने-जाने की क्रिया अलग है और अनुकम्पा भिन्न है । हरिणैगमेषी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दुःख की निवृत्ति की तथा बालकों पर अनुकम्पा करके उनके प्राण भी बचाए थे । इस अनुकम्पा का फल यह हुआ कि वे बालक कंस के भय से बच गये तथा हरिणैगमेषी देव का धर्मपक्ष का फल भी मिला । अतः हरिणैगमेषी देव की अनुकम्पा को सावद्य नहीं कहा जा सकता ।

जिज्ञासा —'नल कुब्बर समाणा' का अर्थ 'वैश्रमण देव के पुत्र समान' लिया जाता है । लेकिन (वैश्रमण) देव के तो पुत्र होते नहीं फिर यह कैसे कहा गया ?

समाधान —यह सत्य है कि देव के कोई पुत्र नही होता। अत नलकूवर के भी कोई पुत्र नहीं था। 'नलकुब्बर समाणा' से नलकूबर का पुत्र अथ लेना उपमा से ही यौक्तिक हो सकता है। उपमा एक देशीय होती है। वैसे भी नलकूबर (वैश्रमण) देव की सुन्दरता प्रसिद्ध है। रथनेमि को फटकारते हुए राजमति ने भी कहा है कि यदि तुम वैश्रमण देव के समान रूपवान भी हो ता भी मैं तुम्हे नही चाहती। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि नलवूचर देव ने कभी प्रसग वश वैक्रिय पुद्गला से अत्यन्त सुन्दर पुरुष को विकुर्वित किया हो। जिसे देखकर यह उपमा दी जाती है। इस विशेषण से छ अनगारो के रूप की उत्कृष्टता का ही वर्णन किया है।

जिज्ञासा —छ अनगारो के लिये 'सरिसव्वया' एक समान उम्र वाले विशेषण कैसे दिया गया, क्योकि सभी का जन्म तो एक साथ नही हुआ था ?

समाधान —छ अनगारो के लिये दिये गये विशेषण व्यावहारिक प्रतीति की अपेक्षा से दिय गये हो, ऐसा प्रतीत होता है। 'सरिसव्वया' विशेषण के पूव 'सरिसया और सरित्तया' अर्थात् समान थे, समान त्वचा वाले थे, ये विशेषण भी लगाये गय ह। 'सरिसव्वया' के अनतर "विलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा" विशेषण भी लगाया गया है। जिसका अथ होता है—उन छहो अनगारो का वर्ण भस के सीग के अन्दर का भाग, गुलिका नामक रग तथा अलसी के फूल के समान प्रकाश युक्त था। छहो अनगारो का जन्म एक साथ नही हुआ था, अत उनकी आयु भी एक समान नहीं हो सकती है और न ही वे एक समान ही हो सकते हैं। उनकी त्वचा, आयु की तारतम्यता के कारण एक समान नही हो सकती और न ही वर्ण भी एक समान हो सकता है। तथापि इन विशेषणा को देने का तात्पय यह हो सकता है कि आयु, वर्ण, त्वचा आदि मे किंचित तारतम्यता होते हुए भी वह लोगो को प्रतीत नही होती थी। उन्हे तो छहो अनगार एक समान ही लगते थे।

दूसरी बात यह है—"वाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति" मुख्यता की अपक्षा मे कथन हाता है। जिस वगीचे मे ९० आम्र के और १० नीम के वृक्ष हैं तो वह वगीचा आम्र वगीचा ही कहलायेगा, नीम का नही। ठीक इसी प्रकार छहो अनगारो मे आशिक तारतम्यता होते हुए भी, तथा वह भी प्रतीति मे न आने से, उसकी विवक्षा नही की गई है।

जिज्ञासा —छ अनगारो को देखकर देवकी महारानी को यह स्मृति हो आई थी कि "अतिमुक्त कुमार नामक अनगार ने मुझे यह कहा था—तुम एक समान आठ पुत्रो को जन्म दोगी—ऐसे पुत्रो का इस पूरे भरतक्षेत्र मे काई भी माता जन्म नही द पायगी।" इसी बात का स्पष्टीकरण प्रभु अरिष्टनेमि ने भी किया था। लेकिन जव आर्तध्यान करती हुई देवकी

था कृष्ण-वासुदेव ने यह आश्वासन दिया कि मैं ऐसा प्रयास करूंगा कि मेरे एक भाई और हो, तदनुसार उन्होंने तेले की आराधना कर देव से वृत्तान्त श्रवण कर अपनी माता देवकी को भी सुनाया, लेकिन यह सब करने की आवश्यकता क्या थी ? देवकी को तो यह मालूम था कि मेरे आठ पुत्र होंगे जिनमें से सात पुत्र तो हो चुके हैं, एक और होने वाला है।

समाधान —देवकी महारानी को छह अनगारों को देखकर अतिमुक्तक अणगार के वचनों की स्मृति आ गई थी। लेकिन जब वह प्रभु चरणों में पहुँच कर, शंका का समाधान पाती है और अपने छहों पुत्र साधकों को देखती है तो उसके मन में इतना अधिक वात्सल्य भाव जाग्रत हो उठता है कि उसके स्तनों में दूध फूट पड़ता है। नेत्र आनन्दाश्रुओं से आर्द्र हो जाते हैं। हर्ष की अधिकता से कंचुकी के बन्धन टूट जाते हैं। अत्यधिक हर्ष से शरीर के फूल जाने से वलय तंग हो जाते हैं। इसी उल्लास के साथ जब देवकी महारानी महलों में पहुँचती है तो उसके विचारों में एक विलक्षण मोड़ आता है और आर्तध्यान करने लगती है, कि मैं कैसी पुण्यहीना हूँ कि मैंने अपने सात-सात पुत्रों को जन्म देकर एक भी पुत्र के लालन-पालन का आनन्द और तज्जनित कर्त्तव्य नहीं निभा पाई। और यह कृष्ण-वासुदेव भी छह महीने में एक बार वन्दना करने के लिए आता है। इस प्रकार के विचारों के साथ यह आर्तध्यान में इतनी अधिक आरूढ थी, अर्थात् आर्तध्यान का इतना अधिक उभार था कि कृष्ण-वासुदेव के सामने आ जाने पर भी देवकी महारानी उस ओर ध्यान नहीं दे पाती है।

ऐसे आर्तध्यान की स्थिति में यह भूल जाना संभव है कि उसके एक पुत्र और भी होगा। ऐसे समय में कृष्ण-वासुदेव उसे विश्वास दिलाकर तेल का अनुष्ठान कर देव से वृत्तान्त की जानकारी कर माता को विश्वास दिलाते हैं कि मेरे एक भाई और होगा। अतः देवकी महारानी को जानकारी होने पर भी आर्तध्यान की निमग्नता के कारण पुनः विस्मृत हो जाती है। जिसका स्मरण कृष्ण-वासुदेव करवा देते हैं।

वर्तमान में भी ऐसा देखा जाता है कि अभी घट भर पूर्व कही गयी बात भी व्यक्ति अन्य विचारों में लग जाने पर भूल जाता है।

कई व्याख्याकारों का यह भी कहना है कि कृष्ण-वासुदेव को यह ज्ञान था कि मेरे एक भाई और होने वाला है, लेकिन उसका भी छह भाइयों की तरह देव संहरण न करले, अतः हरिणैगमेषी देव की आराधना कर पूछ लेना चाहिये। ताकि वह संहरण नहीं कर सके।

जिज्ञासा —जब कृष्ण-वासुदेव एक नवकारसी का तप भी नहीं कर सकते तो फिर तेले के

तप का अनुष्ठान कैसे किया ?

समाधान—कृष्ण-वासुदेव के द्वारा नवकारसी का व्रत भी नही कर सकने का कारण यह है कि वे आत्म साधना के लिये आगम विधि के अनुसार नवकारसी का तप नही कर सकते । सासारिक कार्यों के लिये वे कुछ भी करते हैं तो वह आत्ममूलक नही है ।

कृष्ण—वासुदेव ने जो तेले का तप किया था वह सासारिक काय के लिये था अत उस तेले के तप की विवक्षा नही की गई ।

चउत्थो वग्गो–चतुर्थ-वर्ग

उत्थानिका

तृतीय-वर्गगत अध्ययनों के विवेचन के अनन्तर, क्रम प्राप्त चतुर्थ वर्ग आता है। तृतीय वर्ग के तेरह ही अध्ययनों में राजकुमारों का जीवन वर्णित किया गया था। प्रस्तुत चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययनों मे भी राजकुमारों का जीवन ही वर्णित किया गया है।

विराट राज्य एवं वैभव के बीच जन्मे वाले राजकुमार भौतिक सामग्री का प्राचुर्य होते हुए भी प्रभु द्वारा संसार की असारता तथा जीवन की नश्वरता का बोध प्राप्त कर भोग से योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। युवानी का परिस्फोट जिन्हें पतन के महाद्वार पर ले जाने वाला होता है, वहीं विस्फोट सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का विस्फोटन कर उनकी आत्मा का मोक्ष के महाद्वार मे प्रवेश करवा देता है। वे शाश्वत शांति की अनुभूति मे तल्लीन हो जाते हैं।

सभी कुमारों का आद्योपान्त जीवन गौतम कुमार की तरह ही था। इन सभी का पचास पचास कन्याओं के साथ विवाह किया गया। पचास-पचास प्रकार का प्रीतिदान प्राप्त हुआ। ये सभी, प्रभु अरिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर भागवती दीक्षा अंगीकार कर लेते हैं। बारह अंगों का तलस्पर्शी अध्ययन करते हैं। सोलह वर्ष तक संयम पर्याय का पालन करते हैं। अन्त मे एक मास के संलेखना-संथारा पूर्वक शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं।

इन दसों राजकुमारों के नाम व इनके माता पिता के नाम निम्नानुसार हैं —

	राजकुमार	पिता का नाम	माता का नाम
१	जालि कुमार	महाराज वसुदेव	धारिणी रानी
२	मयालि कुमार	"	"
३	उवयाली कुमार	"	"
४	पुरुषसेन कुमार	"	
५	वारिषेण कुमार		"
६	प्रद्युम्न कुमार	श्री कृष्ण-वासुदेव	रुक्मिणी रानी
७	शाम्ब कुमार	"	जाम्बवती रानी
८	अनिरुद्ध कुमार	प्रद्युम्न कुमार	वैदर्भी रानी
९	सत्यनेमि कुमार	महाराज समुद्रविजय	शिवा रानी
१०	दृढनेमि कुमार	महाराज समुद्रविजय	शिवा रानी

चउत्थो वग्गो—चतुर्थ-वर्ग

1—10 अध्ययन

56– "जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[A] सपत्तेण तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स वग्गस्स अतगडदसाण समणेण भगवया महावीरेण जाव[B] सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर, यावत माक्ष–प्राप्त न आठवें अग अतकृद्दशाग के तीसरे वग का जो वर्णन किया वह सुना । अतकृद्दशाग के चौथे वग का श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्ष प्राप्त, ने क्या भाव फर्माये हैं ?"

"एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[C] सपत्तेण चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तजहा-
1 जालि 2 मयालि 3 उवयाली
4 पुरिससेणे 5 वारिसेणे य ।
6 पज्जुण्ण 7 सब 8 अणिरुद्ध
9 सच्चणेमि य 10 ढढणेमि ॥1॥"

'हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर, यावत मोक्ष प्राप्त, ने चाथे वग के दस अध्ययन कहे ह, जो इस प्रकार ह —
(१) जालि कुमार (२) मयालि कुमार (३) उवयालि कुमार (४) पुरुषसेन कुमार (५) वारिषेण कुमार (६) प्रद्युम्न कुमार (७) शाम्ब कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार ।

"जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव[D] सपत्तेण चउत्थस्स वगस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स ण अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?"

हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्षप्राप्त, ने चाथे वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं तो इनमें प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?"

57– एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण बारवई नयरी । तीसे ण बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव[A] कण्हे वासुदेवे आहेवच्च जाव[B] विहरइ । तत्थ ण बारवईए नयरीए वसुदेवे राया । धारिणी देवी वण्णग्रो । जहा गोयमो नवर जालिकुमारे ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नाम की नगरी थी । उस द्वारिका नगरी का वर्णन प्रथम वग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है, यावत् श्री कृष्ण–वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे, यावत् विचरण करते थे । उस द्वारिका नगरी मे महाराज 'वासुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे । इनका वर्णन ग्रापपातिक सूत्र के अनुसार

पण्णासओ दाओ । बारसंगी । सोलसवासा परियाओ । सेस जहा गोयमस्स जाव[C] सेत्तुंजे सिद्धे ।

जानना चाहिये । जालि कुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना । विशेषता यह है कि जालि कुमार ने युवावस्था प्राप्त कर पचास कन्याओं से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओं का दहेज मिला । दीक्षित होकर जालि कुमार मुनि ने बारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन किया, शेष सब गौतम कुमार की तरह, यावत् शत्रुंजय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए ।

एवं मयाली उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य ।

इसी प्रकार मयालि कुमार, उवयाली कुमार, पुरुषसेन और वारिसेण का वर्णन जानना चाहिये ।

एवं पज्जुण्णे वि नवरं-कण्हे पिया, रुप्पिणी माया ।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेष-कृष्ण उनके पिता और रुक्मिणी देवी माता थी ।

एवं संबे वि नवरं जंबवई माया ।

इसी प्रकार साम्ब कुमार भी, विशेष-उनकी माता का नाम जाम्बवती था । ये दोनों श्री कृष्ण के पुत्र थे ।

एवं अणिरुद्धे वि नवरं पज्जुण्णे पिया वेदब्भी माया ।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है । विशेष यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उनकी माता थी ।

एवं सच्चणेमी, नवरं समुद्दविजए पिया सिवा माया ।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है । विशेष-समुद्र विजय पिता और शिवा देवी माता थी ।

एवं दढणेमी, वि सव्वे एगगमा ।

इसी प्रकार दृढ़नेमि कुमार का भी वर्णन समझना । ये सभी अध्ययन एक समान हैं ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगड-दसाणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर के द्वारा [illegible] । यहां इस चौथे वर्ग का अर्थ कहा गया है ।

।। चउत्थो वग्गो समत्तो ।।

।। चतुर्थ वर्ग समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —विवाहित पुरुपो को दीक्षा लेने के लिये माता पिता से आज्ञा प्राप्त करने का उल्लेख शास्त्रों मे मिलता है । पत्नी की आज्ञा लेने का नही, तो क्या पत्नी की आज्ञा लेना अनिवार्य नही है ?

समाधान —शास्त्रो मे बहुत से वर्णन प्रासगिक आते हैं । कई स्थलो पर 'जाव' शब्द करके भी वर्णन सकुचित कर दिया जाता है । यद्यपि अन्तकृद्दशाग सूत्र मे कुमारो के दीक्षित होन पर भी विशेप कर माता पिता से आज्ञा लेने का वर्णन ही आता है, तथापि अन्य शास्त्रों मे धर्म पत्नी से आज्ञा लेने का उल्लेख मिलता है । जब जम्बू कुमार ने दीक्षा अगीकार की थी तब उसने माता पिता की आज्ञा होते ही दीक्षा ग्रहण नही कर ली थी । किन्तु अपनी आठ पत्नियो को समझाया था, उनसे भी आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर दीक्षा ली थी । शालिभद्रजी ने भी माता की आज्ञा से ही दीक्षा नही ली किन्तु अपनी बत्तीस ही धर्म पत्नियो को समझाया । उन सबके द्वारा अनुमति देने पर ही दीक्षा ग्रहण की थी ।

अत स्पष्ट है कि विवाहित पुरुप को दीक्षा के लिये पत्नी से भी आज्ञा प्राप्त करना होता है ।

पंचमो वग्गो—पंचम वर्ग

उत्थानिका —

चतुर्थ वर्ग की विवेचना समाप्ति के अनन्तर पंचम वर्ग के विषय में जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी के समक्ष जिज्ञासा व्यक्त की—'भगवन् ! पंचम वर्ग में प्रभु ने क्या फरमाया ?" जम्बू स्वामी के प्रश्न के सन्दर्भ में सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—"जम्बू ! पंचम वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं।"

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का द्वारिका नगरी में पदार्पण हुआ। समवसरण की रचना हुई। श्री कृष्ण-वासुदेव प्रभु के दर्शन हेतु पहुँचे। देशना सुनने के अनन्तर श्री कृष्ण-वासुदेव एवं पद्मावती के अतिरिक्त सभी श्रोताओं के चले जाने पर प्रभु से कृष्ण वासुदेव ने प्रश्न किया—

'भगवन् ! द्वारिका का विनाश कैसे होगा ?' प्रभु ने फरमाया—देवानुप्रिय ! द्वारिका के विनाश का कारण सुरा, अग्नि, द्वैपायन ऋषि होंगे। सुरापान करके यदुवंशी युवक, द्वैपायन ऋषि का अपमान करेंगे, मारपीट करेंगे। फिर द्वैपायन ऋषि अग्नि कुमार देव बनकर द्वारिका नगरी को अग्नि से दग्ध कर देंगे।

हे कृष्ण ! तुम दीक्षित होने का विचार करते हो, लेकिन वासुदेव पद निदानकृत है। वे वासुदेव त्रिकाल में भी दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकते। तो भगवन् ! मैं यहाँ से काल करके कहाँ उत्पन्न होऊँगा ?

श्री कृष्ण के पूछने पर प्रभु ने फरमाया-'कृष्ण ! द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर सभी परिजनों से रहित होकर राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर युधिष्ठिर प्रधान पाण्डुराजा के पुत्र पाँचों पाण्डवों के पास पाण्डु मथुरा की ओर जाते हुए कौशाम्ब वन उद्यान में न्यग्रोध वटवृक्ष के नीचे पृथ्वी, शिलापट्ट पर पीताम्बर से अपने शरीर को आच्छादित की हुई अवस्था में राजकुमार जराकुमार द्वारा धनुष से छोड़े तीक्ष्ण बाण द्वारा बाएँ पैर के बिंध जाने पर मृत्यु के समय काल करके तीसरी बालुकाप्रभा के उज्ज्वलिया नामक नरक निरय में नारक रूप में उत्पन्न होओगे।

यह सुनकर कृष्ण महाराज आर्तध्यान करने लगे। तब प्रभु ने फरमाया—'कृष्ण ! चिन्ता मत करो। तुम तीसरी नरक की आयु पूर्ण कर, आने वाली चौबीसी में जम्बूद्वीपान्तर्गत भारतवर्षीय पुण्ड्र देश के शतद्वार नामक नगर में अमम नामक बारहवें तीर्थंकर बनोगे। और वर्षों तक विचरण करते हुए सभी कर्मों का क्षय करके सिद्ध अवस्था प्राप्त करोगे।' यह सुनकर

कृष्ण महाराज ग्रानन्द विभोर हो उठे। हर्षाधिक्य के कारण सिहनाद कर उठे । प्रभु के दर्शन-वन्दन करके अपने नगर मे पहुँचे । नगर मे यह घोषणा करवाई, कि जो भी व्यक्ति प्रभु के पास दीक्षा लेना चाहते हो वे सहर्ष दीक्षा ग्रहण करें। उनका दीक्षा—महोत्सव स्वय कृष्ण महाराज मनाऐगे । साथ ही उनके अवशेष पारिवारिक जनो की सार-सभाल भी करेंगे ।

इधर पद्मावती रानी प्रभु की देशना सुनकर दीक्षा लेने के लिये तत्पर हो गई । पद्मावती को कृष्ण महाराज ने सहर्ष अनुमति दी । इसी प्रकार गौरी देवी, गाधारी देवी, लक्ष्मणा देवी, सुसीमा देवी, जाम्बवती देवी, सत्यभामा देवी, रुक्मिणी देवी को भी कृष्ण—वासुदेव ने सहर्ष दीक्षा की अनुमति प्रदान की । इन सभी रानियो का दीक्षा महोत्सव बड ठाठ के साथ मनाया गया । ये सभी दीक्षित होकर यक्षिणी आर्या के सानिध्य म रही । सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया । बेले—तेले आदि अनेक विध तप कर्म किया । अन्त मे एक मास की सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित किया । अनशन द्वारा साठ भक्तो का परित्याग किया । अन्त मे सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

इसी प्रकार शाम्बकुमार की धर्मपत्नी मूलश्री एव मूलदत्ता ने भी कृष्ण—वासुदेव से आज्ञा प्राप्त कर प्रभु के पास दीक्षा अगीकार की और अन्त मे कर्मों का नाश कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

पंचमो वग्गो—पंचम वर्ग

पद्मावती नामक प्रथम अध्ययन

58— 'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?'

"हे भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ फरमाया तो भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पंचम वर्ग का क्या अर्थ फरमाया ?'

'एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा— 1 पउमावई य 2 गोरी 3 गंधारी 4 लक्खणा 5 सुसीमा य। 6 जंबवई 7 सच्चभामा 8. रुप्पिणी 9 मूलसिरि 10 मूलदत्ता य' ॥

'हे जम्बू ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं।' उनके नाम इस प्रकार हैं —
१— पद्मावती देवी, २— गौरी देवी,
३— गान्धारी देवी, ४— लक्ष्मणा देवी,
५— सुसीमा देवी, ६— जाम्बवती देवी,
७— सत्यभामा देवी, ८— रुक्मिणी देवी
९— मूलश्री देवी और १०— मूलदत्ता देवी।

'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ।'

भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। तो प्रथम अध्ययन में प्रभु ने क्या फरमाया है ?''

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी, वहाँ कृष्ण-वासुदेव राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम पद्मावती था। वह रूप लावण्य में सम्पन्न थी। उसका वर्णन आगम वर्णित।

तेण कालेण तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव[G] विहरइ । कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव[H] पज्जुवासइ। तए ण सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणी हट्ठतुट्ठा जहा देवई देवी जाव[I] पज्जुवासइ । तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य जाव[J] परिसा पडिगया।

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान द्वारिका नगरी मे पधारे । नगरी के बाहर नन्दन वन उद्यान मे विराजे । तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे । कृष्ण-वासुदेव प्रभु के चरणो मे पहुँचे । भगवान की पर्युपासना–भक्ति करने लगे । तदनन्तर पद्मावती देवी भी इस वृत्तान्त को जानकर बहुत प्रसन्न हुई और देवकी महारानी की तरह ही भगवान के चरणो मे पहुँची । तब कृष्ण-वासुदेव एव पद्मावती रानी आदि जनमेदिनी को प्रभु ने देशना सुनाई । धर्म-कथा सुनकर परिषद विसर्जित हुई ।

द्वारिका विनाश का मूल कारण

59– तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

तदनन्तर कृष्ण–वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

'इमीसे ण भते ! बारवईए नयरीए दुवालस्सजोयण आयामाए नवजोयण-वित्थिन्नाए जाव[A] देवलोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ ?'

'हे भगवन् ! यह द्वारिका नगरी, जो नवयोजन चौडी और बारह योजन लम्बी है, उसका विनाश किंमूलक-किस कारण होगा ?'

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी–"एव खलु कण्हा । इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयण-वित्थिन्नाए जाव[B] देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ ।"

हे कृष्ण ! इस प्रकार सम्बोधित करते हुए अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण वासुदेव को कहा– 'हे कृष्ण ! स्वर्ग सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण होगा ।'

भविस्सइ वा जण्ण वासुदेवा चइत्ता हिरण्ण जाव[B] पव्वइस्सति ।

'से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ न एय भूय वा जाव[C] पव्वइस्सति ?'

'कण्हाइ' ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह-वासुदेव एव वयासी—

'एव खलु कण्हा ! सव्वे वि य ण वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा[23] से एतेणट्ठेण कण्हा । एव वुच्चइ न एय भूय जाव[D] पव्वइस्सति ।'

'हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहा जाता है कि वासुदेव कभी दीक्षा नही लेते ?'

'हे कृष्ण ! ' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए कृष्ण—वासुदेव को अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान बोले—'हे कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्व भव मे निदान कृत होते हैं । इसी कारण वे न दीक्षित होते है, न हुए है और न ही होंगे।'

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

62— तए ण से कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठनेमि एव वयासी-"अह ण भते! इओ कालमासे काल किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामी?

तदनन्तर कृष्ण—वासुदेव ने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को कहा—'हे भगवन् ! मैं काल के समय यहा से काल करके कहाँ जाऊ गा ? कहाँ उत्पन्न होऊ गा ?'

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह-वासुदेव एव वयासी—"एव खलु कण्हा । तुम वारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए अम्मापिइ-नियग विप्पहूणे रामेण वलदेवेण सद्धि दाहिणवेयालि अभिमुहे जुहिट्ठिल्ल पामोक्खाण पचण्ह पडवाण पडुराय पुत्ताण पास पडुमहुर सपत्थिए कोसव-वणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइय-

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण—वासुदेव को इस प्रकार कहा—हे कृष्ण ! द्वारिका नगरी के अग्निकुमार देव रूप द्वैपायन ऋषि द्वारा भस्म हो जाने पर (तुम) माता पिता तथा स्वजन-सम्बन्धियो से रहित, केवल राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रमुख पाच पाण्डवो की राजधानी मथुरा की ओर जाते हुए कोशाम्ब नामक वनो वाले वृक्षो के वन मे, न्यग्रोध नामक श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर, शरीर पर पीतवस्त्र को आच्छादित कर बठोगे, उस समय जराकुमार के द्वारा (कोदण्ड) धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण बाण

श्री कृष्ण का उद्वेग

60— कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए एय सोच्चा निसम्म अय अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—'धण्णा ण ते जालि–मयालि–उवयालि–पुरिससेण–वारिसेण–पज्जुण्ण–सब–अणिरुद्ध-दढनेमि-सच्चणेमि-प्पभियओ कुमारा जे ण चइत्ता हिरण्ण जाव[C] परिभाइत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिय मु डा जाव[D] पव्वइया।

अहण्ण अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव[E] अतेउरे[20] य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए[21] गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे नो सचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव पव्वइत्तए।

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से यह बात श्रवण कर कृष्ण-वासुदेव के मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ—

वे जालि, मयाली, उवयालि, पुरुषषेण, वारिषेण, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि, सत्यनेमि आदि कुमार धन्य हैं। जो हिरण्य आदि सबको छोड कर अपने भाईयो तथा याचको मे वितरित कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित, यावत् दीक्षित हो चुके है।

मैं तो अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ। राज्य, अन्त पुर तथा मनुष्य सम्बन्धी काम भोगो म मूर्च्छित आशक्त तथा स्नेहानुबन्धित हूँ। अत अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने के लिये समर्थ नहीं हूँ।

श्री कृष्ण के उद्वेग का शमन

61— कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

'से नूण कण्हा ! तव अय अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—धण्णा ण ते जालिप्पभिइकुमारा जाव[A] पव्वइया[22]। से नूण कण्हा। अत्थे समत्थे ?' 'हता अत्थि।'

त नो खलु कण्हा। एय भूय वा

तब हे कृष्ण ! ऐसा कह कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण-वासुदेव को सम्बोधित किया—'हे कृष्ण ! तुम्हारे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं अधन्य हूँ, अकृतपुन्य हूँ, जिससे दीक्षा ग्रहण नहीं कर सका। क्या यह कथन सत्य है?' तब कृष्ण-वासुदेव ने कहा—'हाँ भगवन् ! आपका कथन असदिग्ध सत्य है।' "किन्तु हे कृष्ण ! वासुदेव दीक्षा ग्रहण कर, ऐसा न तो भूतकाल मे हुआ है, न वर्तमान मे हो रहा है और न ही भविष्य मे होगा।"

भविस्सइ वा जण्ण वासुदेवा चइत्ता हिरण्ण जाव[B] पव्वइस्सति ।

'से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ न एय भूय वा जाव[C] पव्वइस्सति ?'

'हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहा जाता है कि वासुदेव कभी दीक्षा नही लेते ?'

'कण्हाइ' ! श्ररहा श्ररिट्ठणेमी कण्ह-वासुदेव एव वयासी—

'एव खलु कण्हा ! सव्वे वि य ण वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा[23] से एतेणट्ठेण कण्हा । एव वुच्चइ न एय भूय जाव[D] पव्वइस्सति ।'

'हे कृष्ण !' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए कृष्ण-वासुदेव को श्रहन्त श्ररिष्टनेमि भगवान बोले—'हे कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्व भव मे निदान कृत होते हैं । इसी कारण वे न दीक्षित होते हैं, न हुए हैं श्रौर न ही होंगे ।'

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

62— तए ण से कण्हे वासुदेवे श्ररह श्ररिट्ठनेमिं एव वयासी-"श्रह ण भते ! इश्रो कालमासे काल किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामी ?

तदनन्तर कृष्ण-वासुदव ने श्रहन्त श्ररिष्टनेमि भगवान को कहा—'हे भगवन् ! मैं काल के समय यहां से काल करके कहां जाऊंगा ? कहां उत्पन्न होऊंगा ?'

तए ण श्ररहा श्ररिट्ठनेमी कण्ह-वासुदेव एव वयासी—"एव खलु कण्हा । तुम बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए श्रम्मापिइ-नियग विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धि दाहिणवेयालिं श्रभिमुहे जुहिट्ठिल्ल पामोक्खाण पचण्ह पडवाण पडुराय पुत्ताण पास पडुमहुर सपत्थिए कोसब-वणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स श्रहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइय-

तब श्रहन्त श्ररिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार कहा—हे कृष्ण ! द्वारिका नगरी के श्रग्निकुमार देव रूप द्वैपायन ऋषि द्वारा भस्म हो जाने पर (तुम) माता पिता तथा स्वजन-सम्बन्धियो से रहित, केवल राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रमुख पाच पाण्डवों की राजधानी मथुरा की श्रोर जाते हुए कोशाम्ब नामक वन के वृक्षो के वन मे, न्यग्रोध नामक श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर, शरीर पर पीतवस्त्र को श्रोढ़कर बैठोगे, उस समय जराकुमार के द्वारा (कोदण्ड) धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण

सरीरे जराकुमारेण तिक्खेण कोदड-विप्पमुक्केण उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे काल किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए [illegible] उववज्जिहिसि।"

से तुम्हारे बाये पैर के विध जाने पर तुम काल के समय काल करके तीसरी वालुका नामक पृथ्वी मे [illegible] उत्पन्न होवोगे।'

तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म ओहय जाव[A] झियाइ।

अर्हत अरिष्ठनेमि भगवान के मुख से इस बात को सुनकर, विचार कर कृष्ण-वासुदेव निराश हो गए तथा आर्तध्यान करने लगे।

63— कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी-मा ण तुम देवाणुप्पिया ! ओहयमणसकप्पे जाव[A] झियाह। एव खलु तुम देवाणुप्पिया! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणतर उव्वट्टित्ता इहेव जवुद्दीवे[26] दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पु डेसु जवणएसु सयदुवारे नयरे वारसमे अममे नाम अरहा भविस्ससि। तत्थ तुम वहूइ वासाइ केवलि[27]परियाग[28] पाउणेत्ता सिज्झिहिसि, वुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाण अंत करिहिसि।

कृष्ण-वासुदेव की यह स्थिति देखकर 'हे कृष्ण !' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए अर्हन्त अरिष्ठनेमि भगवान बोले—

'हे देवानुप्रिय ! तुम्हें निराश नही होना चाहिए। क्योकि तुम उस तीसरी उज्ज्वलित-वालुकाप्रभा से निकलकर सीधे इसी जम्बूद्वीप के अतगत भरतक्षेत्र म आने वाले उत्सर्पिणी काल मे पुण्ड्र नामक जनपद के शतद्वार नामक नगर में बारहवें अमम नामक तीर्थंकर बनोगे। वहा पर तुम बहुत वर्ष पर्यन्त केवली-पर्याय म रहकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त तथा सभी दुखो का अन्त कराेगे।'

तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ अप्फोडेइ अप्फोडेत्ता वग्गइ वग्गित्ता तिवइ छिंदइ छिंदित्ता सीहणाय करेइ करेत्ता अरह अरिट्ठणेमि

वे कृष्ण-वासुदेव अर्हत अरिष्टनेमि भगवान के पास इस अर्थ को श्रवण कर, विचार कर अत्यधिक प्रसन्न हुए और भुजाओ का प्रस्फुटन करते हैं, भुजाओ को फडकाते हैं, फडका कर जोर से आवाज करते है, आवाज करके, भूमि पर तीन बार पद-न्यास

वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता तमेव आभिसेक्क हत्थि दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला[29] जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ निसीइत्ता कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—

64 गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया। बारवईए नयरीए सिंघाडग जाव[A] उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एव वयह-एव खलु देवाणुप्पिया। बारवईए नयरीए नवजोयण जाव[B] देवलोगभूयाए सुरग्गि–दीवायण–मूलाए विणासे भविस्सइ। ज जो ण देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवईए नयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे वा तलवरे वा माडबिय-कोडु बिय इब्भ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए मु डे जाव[C] पव्वइत्तए। त ण कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ। पच्छातुरस्स वि य से अहापवित्त वित्ति अणुजाणइ। महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से निक्खमण करेइ। दोच्च पि तच्च पि घोसणय

पैरो को पटकते हैं, उछलते हैं और जोर से सिंह गर्जना करते हैं, करके अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन–नमस्कार करते हैं, वन्दन–नमस्कार करके उसी सर्व प्रधान हाथी पर चढते हैं, चढकर जिधर द्वारिका नगरी थी, जिधर अपना घर था, उधर आते हैं, आकर प्रधान हस्ति रत्न से उतरते हैं, उतरकर जिधर बाहर सभास्थान था और जहा पर अपना सिंहासन था वहा पर आते हैं और उत्तम सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाते हैं, बैठकर राज सेवकों को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—

हे देवानुप्रियो! तुम जाओ, द्वारिका नगरी के तीन मार्ग-चार मार्ग जहा मिलते हो, वहा, उद्घोषणा करते हुए, इस प्रकार बोलो—

'हे देवानुप्रियो! स्वर्ग सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा, अग्नि और उस द्वैपायन ऋषि के द्वारा निश्चित रूप से होगा। अत हे–देवानुप्रियो! द्वारिका नगरी मे जो कोई राजा, युवराज, ईश्वर (ऐश्वर्य सम्पन्न), तलवर (जो राजा का मान्य हो), माडम्बिक/(छोटे गाव का स्वामी), कौटुम्बिक, इभ्य (हाथी के बराबर जिसके पास धन हो), श्रेष्ठी, देवी, कुमारी, यदि अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित, यावत् दीक्षित होना चाहते हो तो उन्हे कृष्ण–वासुदेव सहर्ष आज्ञा देते हैं। उसके पीछे रहने वाले रोगी या निराश्रित की भी वे यथायोग्य आजीविका का प्रबन्ध करेंगे। और बडे वृद्धि सत्कार के साथ उसका निष्क्रमण–दीक्षा महोत्सव करेंगे।

इस प्रकार की घोषणा दो बार, तीन

घोसेह घोसित्ता मम एय आणत्तिय पच्चप्पिणह । तए ण ते कोडु बिया जाव पच्चप्पिणति ।

वार करो। घोषणा करके मुझे पुन सूचित करो ।

कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही करके पुन श्री कृष्ण–वासुदेव को सूचित कर दिया ।

साधन से सिद्धि तक पद्मावती

65– तए णसा पडमावई देवी अरहम्रो अरिट्ठनेमिस्स अतिए घम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरह अरिट्ठणेमि वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–

इसके अनन्तर वह पद्मावती देवी अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से धर्म-कथा श्रवण कर विचार कर आनन्द विभोर हो उठी। यावत् प्रसन्न हृदय वाली होकर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन नमस्कार करती है। करके कहने लगी—

"सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण, से जहेय तुब्भे वयह । ज नवर– देवाणुप्पिया ! कण्ह वासुदेव आपुच्छामि । तए ण अहं देवाणुप्पियाण अतिए मु डा जाव पव्वयामि ।

हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखती हूँ, जैसा कि आप फरमाते हैं, वह सत्य है। 'हे देवानुप्रियों ! मैं कृष्ण–वासुदेव से पूछ कर उनकी अनुमति प्राप्त कर आपके सान्निध्य मे मुण्डित होकर, दीक्षा ग्रहण करूंगी।'

'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेहि ।'

'हे देवानुप्रियो ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो। किन्तु शुभ काय मे किंचित मात्र भी विलम्ब मत करो।'

तए ण सा पउमावई देवी धम्मिय जाणप्पवर दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव^ कट्टु कण्ह वासुदेव एव वयासी–

इसके बाद वह पद्मावती देवी अपने धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढती है, और जिधर द्वारिका नगरी मे अपना महल था, उधर आती है। धार्मिक रथ से नीचे उतरती है, कृष्ण-वासुदेव जहाँ थे, वहाँ आती है और उन्हें दोनों हाथ जोडकर इस प्रकार कहने लगी–

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा[B] जाव पव्वइत्तए ।

'हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा होने पर मैं अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ ।'

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि ।

'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो ।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते जाव पच्चप्पिणंति ।

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पद्मावती के लिये विशाल निष्क्रमणाभिषेक-दीक्षा महोत्सव की तैयारी करो, तैयारी करके पुनः मुझे सूचित करो ।' तदनन्तर आज्ञा का पालन कर वे पुनः कृष्ण-वासुदेव को सूचित कर देते हैं ।

66— तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं जाव[A] महाणिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकार विभूसियं करेइ करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिवियं दुरुहावेइ दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ "पउमावइं देविं 'सीयाओ पच्चोरुहइ,पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव

तदनन्तर कृष्ण–वासुदेव, पद्मावती देवी को पाट पर बिठलाते हैं, तथा १०८ स्वर्ण कलशों से निष्क्रमणाभिषेक करते हैं, करके सभी अलंकारों से विभूषित करते हैं, करके पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर बिठलाते हैं । तदनन्तर द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलते हुए जिधर रैवतक नामक पर्वत था, और जिधर सहस्राम्र वन था, उधर आते हैं, आकर पालकी का नीचे रखवाते हैं, तब पद्मावती पालकी से नीचे उतरती हैं । तदनन्तर कृष्ण–वासुदेव पद्मावती देवी को आगे करके जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, उधर आते हैं, आकर प्रभु को वन्दन-नमस्कार करती हैं, वन्दन-नमस्कार करके, इस प्रकार निवेदन करने लगी—

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठणेमि तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ करेत्ता वदइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–

एस ण भते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नाम देवी इट्ठा कता पिया मणुण्णा मणाभिरामा जाव[8] किमग्ग पुण पासणयाए ?

'हे भगवन् ! यह पटरानी पद्मावती देवी मुझे इष्ट है, इच्छित है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनाम है, अभिराम, है, यावत् व उसका तो देखना भी बडा दुर्लभ है ।'

तण्ण अह देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्ख दलयामि । पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्ख ।

'देवानुप्रिय ! उसे ही मैं शिष्या रूप मे भिक्षा देता हूँ । हे देवानुप्रिय ! आपश्री शिष्या रूप में भिक्षा को स्वीकार करें ।'

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह ।

'हे देवानुप्रिय ! जसा तुम्ह सुख हो वैसा करो ।'

67– तए ण सा पउमावई उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालकार ओमुयइ, ओमुयित्ता सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, करेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठणेमि वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी-आलित्ते जाव त इच्छामि ण देवाणुप्पिएहि धम्ममाइक्खिय ।

तदनन्तर पद्मावती देवी उत्तर-पश्चिम (ईशानकोण) में जाती हैं, जाकर वे स्वयमेव सभी आभूषणों को उतारती हैं, उतार कर स्वयमेव पचमुष्टिक लुचन करती है, करके जिधर अर्हत अरिष्टनेमि विराजमान थे, उधर आती है, आकर वे वन्दना-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगी—'भगवन ! यह ससार आदीप्त-जरा मरण आदि दु खो से जल रहा है, अत आपसे दीक्षा अगीकार करना चाहती हूँ, आप मुझे धर्म का उपदेश सुनाए ।'

तए ण अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइ देवि सयमेव पव्वावेइ पव्वावेत्ता सयमेव मुण्डावेइ सयमेव जक्खिणीए[30]

तब अर्हत अरिष्टनेमि भगवान–पद्मावती देवी को स्वय ही प्रव्रजित करते है, स्वय ही भाव से मुण्डित करते हैं, स्वय ही यक्षिणी आर्या को शिष्या रूप से देते हैं ।

अज्जाए सिस्सिणित्ताए दलयइ। तए ण सा जक्खिणी अज्जा पउमावइ देविं सयमेव जाव सजमियव्व। तए ण सा पउमावई अज्जा जाया। इरियासमिया जाव[A] गुत्त[31]-बभयारिणी[32]। तए ण सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अतिए सामाइयमाइयाइ एकारस अगाइ अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं[33] विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तदनन्तर यक्षिणी आर्या, पद्मावती देवी को केश लुचन रूप प्रव्रज्या देती हैं और समझाती है कि सयम यात्रा मे पूर्ण सजग रहना चाहिये। तदनन्तर वह पद्मावती देवी साधना मे यत्न करती है, अब वह पद्मावती आर्या हो गई। इर्या-समिति आदि पाच समिति—तीन गुप्ति, मे गुप्त यावत्, ब्रह्मचय का पालन करती है। पद्मावती महासती, यक्षिणी आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करती है। उपवास, वेला, तेला, चोला, पचोला से अधमास खमण, मास खमण आदि मे अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करती है।

तए ण सा पउमावई अज्जा बहुपडि-पुण्णाइ वीस वासाइ सामण्णपरियाग पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[B] तमट्ठ आराहेइ चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

पद्मावती आर्या पूरे वीस वष तक सयम पर्याय का पालन करती है। एक माग की सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित-शुद्ध करती है, साठ भक्त अनशन द्वारा छोडती है तथा जिस उद्देश्य हतु दीक्षा ग्रहण की, उस उद्देश्य को सिद्ध कर लेती है। अन्तिम श्वासोच्छ्वास मे सिद्ध गति को प्राप्त कर लेती है।

2-8 अध्ययन

68— उक्खेवओ य अज्झयणस्स।

अतगडसूत्र के पचम वग के प्रथम अध्ययन का सार श्रवण करने क अनतर आग के अध्ययनो को जानने की जिज्ञासा जबू स्वामी द्वारा करने पर सुधर्मा स्वामी फरमा रहे हैं।—

तेण कालेण तेण समएण बारवई नयरी। रेवयए पव्वए उज्जाणे

उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी, रवतक नामक पवत और नन्दनवन नामक उद्यान था। उस द्वारिका नगरी

नदणवणे । तत्य ण बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे । तस्स ण कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ ।

अरहा समोसढे । कण्हे णिग्गए । गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया । धम्मकहा । परिसा पडिगया । कण्हे वि । तए ण सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खता जाव^ सिद्धा ।

के कृष्ण–वासुदेव नामक राजा थे । उन कृष्ण–वासुदेव की सब लक्षण स युक्त गोरी नामक महारानी थी । अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का पदार्पण हुआ । कृष्ण–वासुदेव, गोरी महारानी आदि परिषद् ने धर्म देशना का लाभ लिया । परिषद् एव कृष्ण–वासुदेव धर्म देशना श्रवण कर चले गये । तदनन्तर गोरी देवी का वर्णन पद्मावती देवी की तरह जान लेना चाहिये, यावत् निष्क्रमण हुआ और चरम उच्छ्वास नि श्वास मे सिद्धि प्राप्त की ।

एव गधारी लक्खणा सुसीमा जम्बवई सच्चभामा रुप्पिणी अट्ठवि पउमावई सरिसयाओ अट्ठ अज्भयणा।

इसी प्रकार गाधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी, पद्मावती सहित इन आठो का जीवन वृत्त पद्मावती की तरह जानना चाहिये ।

9–10 अध्ययन

69– उक्खेवओ य नवमस्स ।

पचम वग के अष्ट अध्ययनो का सार जान लेने के अनतर नवम–दशम अध्ययन के सार को जानने की जिज्ञासा जबू स्वामी द्वारा करने पर सुधर्मा स्वामी ने फरमाया —

तेण कालेणं तेण समएण बारवईए नयरीए रेवयए पव्वए नदणवणे उज्जाणे, कण्हे वासुदेवे । तत्य ण बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जबवईए देवीए अत्तए सबे नाम कुमारे होत्या – अहीणपडिपुण्णपचिंदिय – सरीरे । तस्स ण सबस्स कुमारस्स मूलसिरी नाम भज्जा वि निग्गया,

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी, रैवतक नामक पर्वत, नन्दन वन नामक उद्यान था । द्वारिका के राजा कृष्ण–वासुदेव थे । उस कृष्ण–वासुदेव का पुत्र, जाम्बवती देवी का आत्मज, सभी इन्द्रियों से पूर्ण, सर्वांग सुन्दर शाम्ब नामक कुमार था । उस शाम्ब नामक कुमार के मूलश्री नामक पत्नी थी । अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का पदार्पण हुआ । कृष्ण–वासुदेव, मूलश्री आदि धर्म देशना सुनने के लिये निकले ।

जहा पउमावई। ज नवर-देवाणुप्पिया! कण्ह वासुदेव आपुच्छामि जाव^A सिद्धा।

यहा पद्मावती की तरह सारा वर्णन जानना चाहिये।

विशेष–'हे देवानुप्रिय! कृष्ण–वासुदेव को पूछकर, यावत् सिद्ध अवस्था प्राप्त की।'

एव मूलदत्ता वि।

इसी प्रकार मूलदत्ता वर्णन भी जानना चाहिये।

॥ पचमो वग्गो सम्मत्तो ॥

॥ पचम वग समाप्त ॥

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — 'निदान' किसे कहते हैं ?

समाधान — "हमारे तप-संयम का यदि कुछ फल हो तो हमें अमुक वस्तु मिले" इस प्रकार की धारणा को निदान कहते हैं। निदान, कल्याण कारण नहीं है।

निदान नव प्रकार से किये जाते हैं—

१– एक पुरुष किसी समृद्ध पुरुष को देखकर निदान करता है।

२– स्त्री अच्छा पुरुष प्राप्त करने के लिये निदान करती है।

३– पुरुष सुन्दर स्त्री के लिये निदान करता है।

४– स्त्री किसी सुखी एवं सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है।

५– कोई जीव देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होकर अपनी तथा दूसरी देवियों को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है।

६– कोई जीव देव भव में सिर्फ अपनी देवी का वैक्रिय करके भोगने का निदान करता है।

७– कोई जीव अगले भव में श्रावक बनने का निदान करता है।

८– कोई जीव देव भव में अपनी देवी को बिना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है।

९– कोई जीव अगले भव में साधु बनने का निदान करता है।

वासुदेव, पूर्व निदान कृत होते हैं, अतः उन्हें उस भव में चारित्र धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

जिज्ञासा — वैदिक परम्परा के अनुयायी जिस कृष्ण को मानते हैं क्या ये वही कृष्ण हैं या अन्य कोई ?

समाधान — माता पिता आदि सम्बन्धियों के नामों की समानता की अपेक्षा से तो सनातन धर्मानुगत कृष्ण एवं प्रस्तुत कृष्ण में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं होता। किन्तु जब दोनों पक्षों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है तब महान् अन्तर प्रतीत होता है। इस अन्तर को देखते हुए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि दोनों कृष्ण भिन्न भिन्न हैं। मात्र नामादि की कुछ समता से दोनों एक नहीं माने जा सकते। एक ही नाम के अनेक पुरुष तो आज भी उपलब्ध होते हैं, लेकिन सब में एकता नहीं होती।

सनातन धर्म में ही देखा जाय तो शंकराचार्य की गद्दी पर जो भी बैठता है उसे भी शंकराचार्य के नाम से ही व्यवहृत किया जाता है। इस नाम सामंजस्य से सभी व्यक्तियों को एक नहीं माना जा सकता है। दोनों ही पक्षीय कृष्ण, भारत भूमि में जन्म लेने वाले हैं तथा

अनीति एव अत्याचार का प्रतिकार दोनो ने किया है। इसी प्रकार की अन्य कई बातें दोनो मे समान रूप से पाई जाती है। किन्तु वैदिक सस्कृति की मान्यतानुसार श्रीकृष्ण पाच हजार वष पूव मे हुए है तथा जैन सस्कृति की दृष्टि से श्रीकृष्ण ८६ हजार वष पूव हुए हैं।

वैदिक सस्कृति मे श्री कृष्ण को अवतार के रूप मे माना गया है। तथा बतलाया है कि जब जब धम की ग्लानि—ह्रास का प्रसग आता है तब-तब दुष्टो का दलन करने के लिये भगवान अवतार लेते है।[1]

जैन सस्कृति के अनुसार श्री कृष्ण, तीन खण्ड के स्वामी, वासुदेव के रूप मे माने गये ह। जिन्होने समत्व भाव के साथ आध्यात्मिक धर्म की उत्पत्ति मे बहुत योगदान दिया। परिणाम-स्वरूप आगामी चौबीसी में बारहवें अमम नामक तीर्थंकर होंगे तथा चार तीथ की स्थापना कर, परम पद मोक्ष को पाएगे।

ऐसा वणन वैदिक सस्कृति या गीता मे नही मिलता। यह दृष्टि उभय पक्षीय कृष्णा को भिन्न-भिन्न प्रकार से वणन करती है। यह तो बडे रूप मे सक्षिप्त दिग्दशन कराया गया है। सूक्ष्मता की दृष्टि से अन्य अनेक बातें उभय पक्षीय कृष्णो को भिन्न-भिन्न बतलाने मे बतलाई जा सकती हैं। किन्तु अधिक विस्तार न हो अत सक्षिप्त मे ही सकेत किया गया है। ऐसे ऐतिहासिक एव प्रागैतिहासिक अवस्था से भी चिन्तन किया जाय तो कई बातो मे साम्यता रखने वाले कई पुरुष भी भिन्न भिन्न होते है।

इस विषय मे पुराण मे भी उल्लेख मिलता है कि दानी वीर कर्ण ने कहा कि मेरा देहावसान होने पर मुझे ऐसे स्थान पर जलाना कि जिस स्थान पर मेरे समान कोई भी पुरुष जलाया न गया हो। इसी भावना का ध्यान मे रखकर, कर्ण के देहावसान होने पर उनको जलाने की तैयारी की जाने लगी। उसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि स्थान ऐसा खोजना कि जिस स्थान पर किसी प्रकार का दानी वीर कर्ण न जलाया गया हो। जब सभी स्थान खोज लेने पर कही पर भी ऐसा स्थान नही मिला कि जहा ऐसा कोई कर्ण नही जलाया गया हो, तब कर्ण की लाश का पहाडो के शीषस्थ पर दाह सस्कार करने की तैयारी की जाने लगी। उसी समय देववाणी हुई—

---

[1] यदा यदा ही धमस्य ग्लानिभर्वति भारते।
अभ्युत्थानमधमस्य, तदात्मान सृजाम्यह॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृता।
धम सस्थापनाय च, सभवामि युग युगे॥

अत्र द्रोण शतदग्ध, पाडवाना शतत्रयम् ।
दुर्योधन सहस्त्रानि, कर्ण सख्या न विद्यते ।।

उस वाणी म सुनाई दिया कि पहाड के शीर्षस्थ पर द्रोणाचाय सरीखे सौ व्यक्ति जलाए गये। तीन सौ पाडव जलाए गये, हजारो दुर्योधन जलाए गये और कर्ण जैसा की तो गिनती ही नही ह ।

इस पुराण के श्लोक से यह भलि-भाति स्पष्ट हो जाता है कि एक ही नाम के समान वैभव रखने वाले अनेक व्यक्ति इस धरातल पर हो गये हैं। वसी स्थिति मे वैदिक सस्कृतिगत श्रीकृष्ण एव जैन सस्कृतिगत श्री कृष्ण, जिनकी सपूर्ण बातें नही मिलती तो वे भिन्न-भिन्न हो, इसमे कोई आश्चय की बात नही है। अतएव अपने-अपने स्थान पर अपनी अपनी अवस्था मे उनका मूल्याकन किया जा सकता है। जितनी बातो मे साम्यता है, उतनी बातो को लेकर उभय पक्षीय जन समुदाय को शिक्षण भी दिया जा सकता है।

जिज्ञासा —वासुदेव मे कितना बल होता है ?

समाधान —*वासुदेव मे महान् बल होता है। जिसका वर्णन जनाचाय ने उपमा द्वारा बतलाते हुए कहा है—*

कूप म बैठे हुए वासुदेव को जजीरो मे बाधकर यदि हाथी, घोड, रथ और पदल रूप चतुरगिणी सेना सहित १४ हजार राजा भी खीचने लगे तो भी उसे खीच नही सकते, जबकि उसी जजीर को बाए हाथ से पकड कर वासुदेव आसानी से अपनी ओर खीच सकते है। दूसरी दृष्टि स वासुदेव म १० लाख अष्टापद का बल भी बतलाया जाता है।

जिज्ञासा —*क्या कृष्ण की जराकुमार द्वारा मृत्यु—अकाल मान नही है, जबकि वासुदेव की अकाल मृत्यु होती ही नही है ?*

समाधान —जराकुमार के बाण द्वारा श्री कृष्ण की मृत्यु को अकाल मृत्यु नही माना जा सकता। किसी वासुदेव का किसी भी प्रकार के उपक्रम से पूव मृत्यु नही होती है।

कृष्ण—वासुदेव की आयुष्य स्वत ही पूर्ण हो चुकी थी अत इधर जराकुमार का भी निमित्त मिल गया। यदि उनकी आयु अवशेष रहती तो व जराकुमार के बाण से नही मरते।

जिज्ञासा —पद्मावती रानी के प्रव्रज्या लेते समय अन्य विशेषणो के साथ 'मुण्डभाव' विशेषण भी आया है। तो भगवान ने पद्मावती रानी का मुण्डन कैसे किया ?

समाधान —स्थानाग सूत्र मे दस प्रकार के मुण्डनो का वर्णन आता है—

१—श्रोतेन्द्रिय मुण्डन, २—चक्षुरिन्द्रिय मुण्डन, ३—घ्राणेन्द्रिय मुण्डन, ४—रसनेन्द्रिय मुण्डन,

५—स्पर्शनेन्द्रिय मुण्डन, ६—क्रोध मुण्डन, ७—मान मुण्डन, ८—माया मुण्डन, ६—लोभ मुण्डन, १०—शिर मुण्डन।

इन दस मुण्डनो मे से प्रारभ के नो मुण्डन तो स्वय भगवान ही करते है। इस अपेक्षा से मुण्डभावे शब्द साथक प्रतीत होता है।

शिर लु चन रुप मुण्डन पद्मावती महासती का यक्षिणी आर्या ने किया था।

छट्ठो वग्गो—षष्ठ वर्ग

उत्थानिका

पचम वर्ग के विवेचन के अनन्तर क्रम प्राप्त छट्ठे वर्ग का वर्णन आता है। इस वर्ग मे १५ अध्ययन बतलाए गये हैं।

षष्ठ वर्ग के मूल पाठ मे सोलह ही अध्ययनों का वर्णन स्पष्ट है। पुनरुक्ति न हो अत यहाँ उन सबका वर्णन न कर, सम्बन्धित विशेष विषयो को ही स्पष्ट कर रहे हैं।

चौदहवें अध्ययनगत अतिमुक्तक अनगार का दीक्षा के बाद का एक जीवन प्रसग भगवती सूत्र मे इस प्रकार मिलता है—

अतिमुक्तक अनगार प्रकृति से भद्र एव सरल थे। एक बार अतिमुक्तक अनगार बाहर गये। निपटो के बाद एक तरफ पानी को बहते देखा तो सहज ही बाल सुलभ स्वभाववश मिट्टी की पाल बाँधकर पानी को रोक दिया और उसमे अपना काष्ठपात्र तिराते हुए कहा लगे कि "मेरी नाव तीरे, मेरी नाव तीरे" यह सब दृश्य जब अन्य मुनिराजो ने देखा तो वे भगवान के पास पहुँचे और निवेदन करने लगे—

"भगवन्! आपके बाल मुण्डन मुनि अतिमुक्तक कितने जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेंगे?'

सर्वज्ञ- सर्वदर्शी प्रभु, प्रश्न का रहस्य समझ गये। प्रभु ने फरमाया-'आर्यो! अतिमुक्तक अनगार प्रकृति से भद्र एव विनयवान हैं। वह इसी भव में सभी दुःखो का अन्त कर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। अत उनकी अवहेलना, निन्दा मत करो।'

भगवान के मुख से यह वृतान्त श्रवणकर सभी मुनिराज अतिमुक्तक अनगार की निरवराध सेवा करने लगे।

अतिमुक्तक अनगार न गुणरत्न आदि तपश्चरण किया। आचाराग आदि ग्यारह अगा का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक सयम पर्याय का पालन कर, विपुलगिरि पर्वत पर सलेखना-सथारापूर्वक सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

छट्ठो वग्गो—पष्ठ वर्ग

1—2 अध्ययन

70– जइ ण भते ! समणेण भगवया महवीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पवमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स ण भते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठव अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के पाचवे वग का यह अथ फरमाया तो भगवन् ! छट्ठे वर्ग का महाप्रभु ने क्या अथ फरमाया है ?

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा–

हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के सोलह अध्ययन फरमाये है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सगहणो गाहा–

1 मकाइ 2 किकमे चेव
3 मोग्गरपाणी य 4 कासवे 5 खेमए
6 धिइहरे, चेव 7 केलासे
8 हरिचदणे ॥1॥
9 वारत्त 10 सुदसण 11 पुण्णभद्द तह
12 सुमणभद्द 13 सुपइट्ठे 14 मेहे
15 अतिमुत्त 16 अलक्खे
अज्झयणाण तु सोलसय ॥2॥

१ मकाइ, २ किंकर्मा, ३ मुद्गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७ कलाश, ८ हरिचन्दन, ९ वारत्त १० सुदशन, ११ पुण्यभद्र, १२ सुमनभद्र, १३ सुप्रतिष्ठित, १४ मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष्य ।

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवान ने जो सोलह अध्ययन फरमाये हैं उनमें प्रथम अध्ययन का क्या अथ फरमाया है ?

71– एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था । गुणशील नामक बगीचा था । नगर के सम्राट श्रेणिक थे। उसी नगर

तत्य ण मकाई नाम गाहावई परिवसइ–अड्ढे जाव[A] अपरिभूए।

मे मकाई नामक गाथापति निवास करते थे। जो ऋद्धि आदि से समृद्ध और अपरिभूत थे।

तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे आदिकरे गुणसिलए जाव[B] विहरइ। परिसा निग्गया। तए ण से मकाई गाहावई इमीसे कहाए। लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्त कुडु बे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए निक्खते जाव अणगारे जाए-इरियासमिए जाव गुत्तबभयारी।

उस काल उस समय मे धर्म तीर्थ के प्रवर्तक श्रमण भगवान महावीर स्वामी का गुणशील नामक बगीचे मे पदार्पण हुआ। जनता उपदेश श्रवण कर विसर्जित हुई। मकाई श्रेष्ठी भी भगवान के पदार्पण के शुभ समाचार श्रवण कर भगवती सूत्र मे वर्णित गगदत्त की तरह प्रभु के चरणो मे उपस्थित हुआ। प्रभु की वाणी श्रवण कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। गगदत्त की तरह ही मकाई ने भगवान के चरणो में निवेदन किया– 'भगवन्! मे अपने बडे पुत्र को कुटुम्ब का सब दायित्व सभलाकर आपश्री के चरणो मे दीक्षा लेना चाहता हूँ ?' भगवान ने फरमाया—

'हे देवानुप्रिय! जिसमे तुम्हें सुख हो। वैसा करो।'

मकाई गाथापति अपने बडे पुत्र को सभी सम्बन्धियो के समक्ष अपना दायित्व सभलाया। सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका पर बैठकर नगर से प्रस्थान किया, प्रभु के चरणो में सयम जीवन स्वीकार किया। ईर्या समिति आदि पाच समिति, तीन गुप्ति, और इन्द्रियो का दमन करते हुये ब्रह्मचारी हुए।

तए ण से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारुवाण थेराण अतिए सामाइय-माइयाइ एक्कारस अगाइ[34] अहिज्जइ। सेस जहा खदयस्स गुणरयण तवोकम्म सोलसवासाइ परियाओ। तहेव विउले सिद्धे।

किकमे वि एव चेव जाव[C] विउले सिद्धे।

तदनन्तर मकाई नामक अणगार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के तथा-रूप स्थविरों के पास मे सामायिक आदि ग्यारह अगों का अध्ययन किया। गुणरत्न सवत्सर आदि अनेक विध तप कर्म किया। अवशेष वर्णन स्कदक अनगार की तरह जानना चाहिये। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर

अन्तिम समय मे विपुल गिरि नामक पर्वत पर सलेखना सथारा पूवक सभी कर्मों का अत कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

आय जम्बू के प्रश्न करने पर द्वितीय किंकर्मा नामक गाथापति के विषय मे आय सुधर्मा ने इसी प्रकार फरमाया । किंकर्मा अनगार ने भी विपुलाचल पवत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की थी ।

तृतीय अध्ययन—मुद्गरपाणी

अर्जुनमालाकार

72—तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे । गुणसीलए चेइए । सेणिए राया । चेलणा देवी । तत्थ ण रायगिहे नयरे अज्जुणए नाम मालागारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स ण अज्जुणयस्स मालायारस्स बधुमई नाम भारिया होत्था—सूमालपाणिपाया। तस्स ण अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थ ण मह एगे पुप्फारामे होत्था—किण्हे जाव^ निउरबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे।

तस्स ण पुप्फारामस्स अदूरसामते, एत्थ ण अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेग-

किंकर्मा गाथापति का जीवन वृत्त श्रवण करने के अनतर आय जम्बू स्वामी द्वारा मुदगरपाणि के जीवन वृत्त को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की गई। तब सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

'हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था । गुणशील नामक बगीचा था । नगर के सम्राट श्रेणिक थे, महारानी चेलना थी । उसी राजगृह नामक नगर मे अर्जुन नामक माली निवास करता था । जो कि ऋद्धि आदि से सम्पन्न एव नगर मे प्रतिष्ठित था । बधुमती नाम से सुकोमल अगावाली इसकी पत्नी थी। अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक विशाल पुष्पोद्यान था । वह उद्यान कृष्ण प्रभा वाला था । महामेघो के समान उसमे वृक्षो की आधिक्यता थी । (दसाद्ध)—पाँचो प्रकार के पुष्पो से सदा खिला रहता था । जनता के लिये आकर्षण का केन्द्र था ।

उस पुष्पाद्यान के पास ही मुदगरपाणि यक्ष का यक्षायतन था । जो कि अर्जुनमाली के दादा, परदादा एव पिता—इस प्रकार

कुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

अनेक कुल परम्पराओं से पूजित था। यह मन्दिर प्राचीन, दिव्य, मनोहर, सत्य प्रभाव वाला था। औपपातिक सूत्र में वर्णित पूर्णभद्र यक्षायतन की तरह ही इसका वर्णन भी जान लेना चाहिये। उस मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा के एक हजार पल के परिमाण वाले विशाल लोहमय मुद्गर को अपने हाथ में ग्रहण करके स्थित थी।

73—तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

अर्जुनमाली बाल्यकाल से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था। वह (कल्लाकल्लिय) प्रतिदिन (पच्छिपिटकान्) अनेक विध टोकरियां को ग्रहण करता, ग्रहण करके राजगृह नगर से बाहर निकलता, निकलकर जिधर पुष्पाराम उद्यान था, उधर जाता और पुष्प चयन करता। पुष्पों को चयन कर उनमें से (अग्राणि वराणि) खिले हुए श्रेष्ठ पुष्पों को लेकर मुद्गरपाणि यक्ष के पास आकर उसकी उन (महार्घ) बड़े से योग्य पुष्पों द्वारा पूजा करता, तदनन्तर भूमि पर दोनों घुटने टेककर प्रणाम करता, पश्चात् राजपथ पर आजीविका करके समय व्यतीत करता।

ललितांग गोष्ठी का अनाचार

74— तत्थ णं रायगिहे नयरे ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया जंकयसुकया यावि होत्था।

उसी राजगृह नगर में ललितांग गोष्ठी अर्थात् समान वातुरागे हुए मित्रों की मण्डली भी रहती थी। यह मण्डली ऋद्धि आदि से सम्पन्न एवं अपरिभूत था। उसका कोई

तिरस्कार नही कर सकता उह राजा का अनुग्रह प्राप्त होने मे वह (यत्कृत सुकृता) जो भी करते उसे ही अच्छा समझने वाली थी ।

तए ण रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था । तए ण से अज्जुणए मालागारे कल्ल पभूयतराएहि पुप्फेहि कज्ज इ त कट्टु पच्चूसकालसमयसि बधुमइए भारियाए सद्धि पच्छिपिडयाइ गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिह नयर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चय करेइ । तए ण तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठत्ति ।

उसी राजगृह नगर मे किसी समय एक प्रमोद महोत्सव की घोषणा को सुनकर अर्जुनमाली सोचने लगा– आगामी दिन अधिक फूलो की आवश्यकता होगी । अत वह प्रात काल होते ही अपनी बन्धुमती पत्नी के साथ अनेक टोकरिया लेकर अपने घर से निकला, राजगृह नगर के मध्य मार्ग से होता हुआ, जिधर पुष्पोद्यान था, उधर पहुँचा और अपनी धमपत्नी बन्धुमती के साथ पुष्प सचय करन लगा । इसी समय उस ललिताग गोष्ठी के छहो साथी, जिधर मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था, उधर आते हैं, क्रीडा करने लगते है ।

75– तए ण अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चय करेइ (पच्छिय भरेइ) भरेत्ता अग्गाइ वराइ पुप्फाइ गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ । तए ण ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणय मालागार

इधर अर्जुन माली, बन्धुमती भार्या के साथ पुष्प एकत्रित करता है, एकत्रित करके श्रेष्ठ पुष्पो को लेकर जिधर मुद्गरपाणि यक्ष या यक्षायतन था, उधर आता है । उस समय ललिताग गोष्ठी के छहो मित्र अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ इधर आते हुए देखते हैं, देखकर परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने है

बधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाण पासति पासित्ता अण्णमण्ण एव वयासी-

"एस ण देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि इह हव्वमागच्छइ । त सेय खलु देवाणुप्पिया । अम्हं अज्जुणय मालागार अवओडय बधणय करेत्ता बधुमईए भारियाए सद्धि विउलाइ भोगभोगाइ भुजमाणाण विहरित्तए", त्ति कट्टु एयमट्ठ अण्णमण्णस्स पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता कवाडतरेसु निलुक्कति, निच्चला, निप्फदा तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठति । तए णं से अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोगरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ आलोए पणाम करेइ, महरिह पुप्फच्चणं करेइ, जण्णुपायपडिए पणाम करेइ । तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडतरेहितो णिगच्छति निग्गच्छित्ता अज्जुणय मालागार गेण्हति गेण्हित्ता अवओडय-बधण करेंति । बधुमईए मालागारोए सद्धि विउलाइ भोगभोगाइ भुजमाणा विहरति ।

हे देवानुप्रियो ! अर्जुनमाली बन्धुमती भार्या के साथ शीघ्र ही इधर आ रहा है । अतः हे देवानुप्रियो ! यह अच्छा है कि हम सभी अर्जुनमाली को अवकोटक बन्धन से बाँधकर बन्धुमती भार्या के साथ भोग्य-भोगों को भोगते हुए विचरण करें ।" ऐसा विचार कर छहों परस्पर इस बात को स्वीकार करते हैं । निश्चल, निस्पन्द और बिल्कुल मौन होकर मन्दिर के दरवाजे के पीछे छिप जाते हैं । तदनन्तर वह अर्जुन माली बन्धुमती भार्या के साथ जिधर मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था । उधर आता है, आकर के उस यक्ष की मूर्ति का अवलोकन कर प्रणाम करता है । नमस्कार कर उन श्रेष्ठ पुष्पों से पूजा करता है । घुटने और पाँव टेककर प्रणाम करता है । और इसी समय वे छहों गोष्ठिक पुरुष शीघ्रता से दरवाजे के पीछे से निकलते हैं निकल कर अर्जुन माली को पकड़ लेते हैं और अवकोटक बन्धन से बाँधते हैं । तदनन्तर बन्धुमती भार्या के साथ यथेच्छ विपुल भोगों को भोगते रहते हैं ।

अर्जुनमाली का प्रतिशोध—पुरुष-स्त्रियो का सहार

76—तए ण तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था-एव खलु अह बालप्पभिइ चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव[A] पुप्फच्चण करेमि, जण्णुपायपडिए पणाम करेमि तओ पच्छा रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणे विहरामि । त जइ ण मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होते, से ण कि मम एयारुव आवइ पावेज्जमाण पासते ? त नत्थि ण मोग्गरपाणि जक्खे इह सण्णिहिए । सुव्वत्त ण एस कट्ठे । तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारुव अज्झत्थिय जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरय अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बधाइ छिदइ, छिदित्ता त पलसहस्सणिप्फण्ण अओमय मोग्गर गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ ।

यह देखकर अर्जुनमाली के मन मे इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ । मैं बचपन से ही मुद्गरपाणि भगवान की प्रतिदिन अर्चना करता हूँ । घुटने टेक कर प्रणाम करता हूँ । उनकी अर्चना करने के बाद ही आजीविका करता हूँ । यदि मुद्गरपाणि यक्ष साक्षात् यहा पर सनिहित होते तो क्या वह मेरे पर आने वाली इस प्रकार की आपत्ति को देखते ? किन्तु मुद्गरपाणि यक्ष यहा विद्यमान नही हैं, अत स्पष्ट है कि यह मात्र काष्ठ प्रतिमा है ।

इधर मुद्गरपाणि यक्ष, अर्जुनमाली के इस प्रकार के विचारो को जानकर उसके शरीर मे प्रवेश कर जाता है । यक्ष के प्रवेश करते ही अर्जुनमाली, अवकोटक बधन को तडातड ताड देता है, और फिर उस हजार पल भारी लोहमय मुद्गर को ग्रहण करता है, ग्रहण करके उन छ पुरुषों एव सातवी स्त्री बन्धुमती को भी मार डालता है ।

तए ण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेण अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरतेण कल्लाकल्लि इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।

तदनन्तर अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष के प्रवेश से परवश हुआ प्रति दिन छ पुरुष और एक स्त्री की घात करता हुआ विचरण करने लगा ।

राजगृह मे आतक परिव्याप्त

77— तए ण रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव[1] महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एव भासेइ एव पण्णवेइ एव परूवेइ ।

यह चर्चा राजगृह नगर के शृगाटक, चतुष्कोण एव पथ-विशेष मार्गों पर होने लगी । एक दूसरे से परस्पर इस प्रकार कहने लगे—

"एव खलु देवाणुप्पिया । अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।"

'हे देवानुप्रियो ! मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट होकर अर्जुनमाली निश्चय ही प्रतिदिन राजगृह नगर के बाहर छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता हुआ विचरण कर रहा है ।'

तए ण से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—

इस बात की जानकारी सम्राट श्रेणिक को मिलने पर वे अपने कौटुम्बिक (सेवक पुरुषो) को बुलाते हैं बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—

"एव खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[2] घाएमाणे विहरइ । त मा ण तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाण वा अट्ठाए सइर निग्गच्छइ । मा ण तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । त्ति कट्टु दोच्च पि तच्च पि घोसणय घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेय ममेय पच्चप्पिणह ।" तए ण से कोडुबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

'हे देवानुप्रिय ! अर्जुनमाली प्रतिदिन सात प्राणियो को मारता है । अत तुममे से कोई भी, नगरवासियो मे घोषणा कर दो कि कोई भी व्यक्ति नगर से बाहर लकडी तृण, पानी पुष्प तथा फलो के लिए नही जाय जाने पर उसका शरीर नष्ट हो जायगा क्योकि अर्जुनमाली सातो की हत्याए कर रहा है । इस घोषणा को तीन बार करके पुन मुझे सूचित करो ।' सेवक पुरुषो ने तदनुसार करके पुन सूचित किया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

78— तत्थ ण रायगिहे नयरे सुदसणे नाम सेट्ठी परिवसइ अड्ढे । तए ण

उसी राजगृह नगर मे सुदर्शन नामक ऋद्धि सम्पन्न श्रेष्ठी निवास करता था । वह

से सुदसणे समणोवासए यावि होत्था अभिगयजीवाजीवे जाव[A] विहरइ ।

सुदर्शन नामक श्रमणोपासक जीवाजीवादि तत्वों का ज्ञाता प्रतिष्ठित श्रमणोपासक था ।

महाप्रभु महावीर का पदार्पण

79- तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे समोसढे जाव[B] विहरइ । तए ण रायगिहे णयरे, सिंघाडग जाव[C] महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव[D] किमग पुण विउलस्स अत्थस्स गहणयाए ?

अर्जुनमाली के इस आतक के समय मे ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी का राजगृह के बाहर गुणशील नामक बगीचे मे पदार्पण हुआ । प्रभु के आगमन की चर्चा राजगृह नगर के त्रिकोणादि मार्गों पर होने लगी—कि जिनके नाम, गोत्र श्रवण करने म भी महाफल होता है, उनके दर्शन करने मे महान् लाभ होता है, तब उनके द्वारा प्ररूपित धर्म-अर्थ को ग्रहण करने के फल का कहना ही क्या ?

सुदर्शन श्रमणोपासक का साहस

80- तए ण तस्स सुदसणस्स बहुजणस्स अतिए एय अट्ठ सोच्चा निसम्म अय अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था-एव खलु समणे भगव महावीरे जाव विहरइ । त गच्छामि ण समण भगव महावीर वदामि णमसामि, एव सपेहेइ सपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहिय जाव[A] एव वयासी—

अनेक पुरुषो मे इस प्रकार के वृत्तान्त का श्रवण कर सुदर्शन सेठ के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुआ—निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान मे विचरण कर रहे है, अत मै जाता हूँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करता हूँ, ऐसा विचार करके जिधर उनके माता पिता थे उधर आता है, आकर दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार बोला—

"एव खलु अम्मयाओ ! समणे भगव महावीरे जाव विहरइ । त

'हे पूज्य ! माता पिताजी ! निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशील नामक उद्यान में विचरण कर रहे है । अत मैं श्रमण

राजगृह मे आतक परिव्याप्त

77— तए ण रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव[A] महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एव भासेइ एव पण्णवेइ एव परूवेइ ।

यह चर्चा राजगृह नगर के त्रिकोण, चतुष्कोण, समान्य-विशेष मार्गों पर होने लगी । एक दूसरे को परस्पर इस प्रकार कहने लगे-

"एव खलु देवाणुप्पिया । अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।"

'हे देवानुप्रियो ! मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट होकर अर्जुनमाली निश्चय ही प्रति दिन राजगृह नगर के बाहर छ पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता हुआ विचरण कर रहा है ।"

तए ण से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—

इस बात की जानकारी सम्राट श्रेणिक को मिलने पर वे अपने कौटुम्बिक (सेवक पुरुषो) को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—

"एव खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[B] घाएमाणे विहरइ । त मा ण तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाण वा अट्ठाए सरइ निग्गच्छह । मा ण तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । त्ति कट्टु दोच्च पि तच्च पि घोसणय घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेय पच्चप्पिणह ।" तए ण से कोडुबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

'हे देवानुप्रिय ! अर्जुनमाली प्रतिदिन सात प्राणियो को मारता है । अत तुममे से कोई भी, नगरवासियो मे घोषणा कर दो कि कोई भी व्यक्ति नगर से बाहर लकडी, तृण, पानी, फूल तथा फलो के लिये नहीं जाय, जाने पर उसका शरीर नष्ट हो जायगा, क्योकि अर्जुनमाली लोगो की हत्याए कर रहा है । इस घोषणा को दो तीन बार करके पुन मुझे सूचित करो ।" सेवक पुरुषो ने तदनुसार करके पुन सूचित किया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

78— तत्थ ण रायगिहे नयरे सुदसणे नाम सेट्ठी परिवसइ अड्ढे । तए ण

उसी राजगृह नगर मे सुदर्शन नामक ऋद्धि सम्पन्न श्रेष्ठी निवास करता था । वह

से सुदसणे समणोवासए यावि होत्था श्रभिगयजीवाजीवे जाव[A] विहरइ ।

सुदर्शन नामक श्रमणोपासक जीवाजीवादि तत्वो का ज्ञाता प्रतिष्ठित श्रमणोपासक था ।

महाप्रभु महावीर का पदार्पण

79- तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे समोसढे जाव[B] विहरइ । तए ण रायगिहे णयरे, सिंघाडग जाव[C] महापहेसु बहुजणो श्रण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव[D] किमग पुण विउलस्स श्रत्थस्स गहणयाए ?

श्रर्जुनमाली के इस श्रातक के समय म ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी का राजगृह के बाहर गुणशील नामक बगीचे मे पदार्पण हुश्रा । प्रभु के श्रागमन की चर्चा राजगृह नगर के त्रिकोणादि मार्गों पर होने लगी—कि जिनके नाम, गोत्र श्रवण करने मे भी महाफल होता है, उनके दर्शन करने मे महान् लाभ होता है, तब उनके द्वारा प्ररुपित धर्म-श्रर्थ को ग्रहण करने के फल का कहना ही क्या ?

सुदर्शन श्रमणोपासक का साहस

80—तए ण तस्स सुदसणस्स बहुजणस्स श्रतिए एय श्रट्ठ सोच्चा निसम्म श्रय श्रज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था- एव खलु समणे भगव महावीरे जाव विहरइ । त गच्छामि ण समण भगव महावीर वदामि णमसामि, एव सपेहेइ सपेहेत्ता जेणेव श्रम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहिय जाव[A] एव वयासी–

श्रनेक पुरुषो से इस प्रकार के वृत्तान्त का श्रवण कर सुदर्शन सेठ के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुश्रा—निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान मे विचरण कर रहे है, श्रत मैं जाता हूँ श्रौर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करता हूँ, ऐसा विचार करके जिधर उनके माता पिता थे उधर श्राता है, श्राकर दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार बोला—

"एव खलु श्रम्मयाश्रो ! समणे भगव महावीरे जाव विहरइ । त

'हे पूज्य ! माता पिताजी ! निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशील नामक उद्यान में विचरण कर रहे हैं । श्रत मैं श्रमण

गच्छामि ण समण भगव महावीर वदामि नमसामि जाव[B] पज्जुवासामि" ।

भगवान महावीर को वदन-नमस्कार एव पर्युपासना करने जाऊँ ।"

तए ण सुदसण सेट्ठि अम्मापियरो एव वयासी—

तब माता पिता ने सुदशन श्रेष्ठी को इस प्रकार कहा—

"एव खलु पुत्ता ! अज्जुणऐ मालागारे जाव[C] घाएमाणे घाएमाणे विहरइ । त मा ण तुम पुत्ता । समण भगव महावीर वदए निग्गच्छाहि, मा ण तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । तुमण्ण इहगए चेव समण भगव महावीर वदाहि ।"

'हे पुत्र ! निश्चय ही अर्जुनमाली नगर के बाहर सात प्राणियो की प्रतिदिन हत्या (घात) करता है । अत हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वदना करने के लिये नगर से बाहर मत निकलो, क्योकि वहा जाने से तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा । तुम यहा रहकर ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार कर लो ।"

वन्दनार्थ गमन सुदर्शन का

81— तए ण से सुदसण सेट्ठी अम्मापियर एव वयासी—"किण्ण अह अम्मायाओ । समण भगव महावीर इहमागय इह पत्त इह समोसढ इह गए चेव वदिस्सामि नमसिस्सामि ? त गच्छामि ण अह अम्मयाओ । तुब्भेहि अब्भणुणाए समाणे समण भगव महावीर वदामि नमसामि जाव पज्जुवासामि ।"

तब सुदशन श्रेष्ठी ने माता पिता को इस प्रकार कहा—'हे पूज्य माता पिता ! इस नगर मे पधारे हुए, इस नगर को प्राप्त हुए, इसी नगर मे समवसरण लगे हुए श्रमण भगवान महावीर को मैं यहीं बैठा हुआ वन्दन-नमस्कार करूँ यह नही हो सकता । अत हे माता पिता ! आप लोगो की आज्ञा प्राप्त होने पर मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के सानिध्य मे वदन-नमस्कार एव पर्युपासना करने जाना चाहता हूँ ।"

तए ण सु दसण सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो सचाएति बहूहि आघवणाहि जाव[A] परूवेत्तए ताहे एव वयासी—

इसके बाद भी सुदशन श्रेष्ठी के माता पिता जब उस प्रकार वचनो से, विशिष्ट वचनो से समझाने मे भी समर्थ नहीं हुए, तब उन्होने इस प्रकार कहा—

"अहासुहं देवाणुप्पिया ।"

"हे देवानुप्रिय ! जैसी तुम्हारी आत्मा का सुख हो । वैसा करो ।"

तए ण से सुदसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पा-वेसाइ मगलाइ वत्थाइ पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालकिय सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेण रायगिह नयर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाय-यणस्स अदूरसामतेण जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

इस प्रकार माता पिता द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर सुदर्शन श्रेष्ठी ने स्नान किया, शुद्ध वस्त्रो को धारण कर अनेक विध आभूषणो से शरीर को अलकृत करके अपने घर से पैदल ही राजगृह नगर के मध्य मार्गो से निकलते हैं, निकल कर मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के न अति दूर और न अति निकट, गुणशीलक नामक बगीचे मे जहा श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उधर ही जाने का निश्चय किया ।

अध्यात्म शक्ति से प्रतिहत भौतिक बल

82— तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे सुदसण समणोवासय अदूर सामतेण वीईवयमाण—वीईवयमाण पासइ पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे त पलसहस्सणिप्फण्ण अओमय मोग्गर उल्लालेमाणे—उल्लालेमाणे जेणेव सुदसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तए ण से सुदसणे समणोवासए मोग्गरपाणि जक्ख एज्जमाण पासइ पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए

तदनुसार सुदर्शन श्रेष्ठी चलते हुए उस मुद्गरपाणि यक्ष के समीप पहुँचते है, तब सुदर्शन श्रमणोपासक को न अति दूर, न अति निकट आते हुए, मुद्गरपाणि यक्ष देखता है, देखकर (आसुरत्त—) शीघ्र क्रोधित होता है, रुट्ठे—रोषयुक्त, कुपित—कोपयुक्त, चाडक्किए—कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, मिसिमिसिमाणे—क्रोध की ज्वाला से दांत पीसता हुआ, हजार पल के भारी लोहे के मुदगर को उछालता हुआ, जिधर सुदर्शन श्रमणोपासक था, उधर जाने का निश्चय किया । तदनुसार यक्ष को इधर आते हुए देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक (अभीत)-भय रहित, (अत्रास)-त्रास रहित, (अनुद्विग्न)-उद्विग्न रहित (अक्षोभ) क्षोभ-

असंभंते वत्थंतेण भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं। नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिऐ थूलऐ पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलाए मुसावाए, थूलाए अदिण्णादाणे सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव[^] मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारित्तऐ। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि, 'तो मे तहा' पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

रहित (अचलित)-चलायमान नहीं होते हुए (असंभ्रान्त)-आकुल-व्याकुलता रहित होकर वस्त्र से भूमि को शुद्ध करते हैं और दसों नखों सहित दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—

मोक्ष प्राप्त श्री अरिहंतों को एवं मोक्ष प्राप्ति की कामना करने वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो। मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात, स्थूल अदत्तादान का जीवन पर्यन्त त्याग किया था। तथा स्वदारसंतोष, इच्छा-परिमाण व्रत को जीवन भर के लिये अंगीकार किया था। अब भी इन्हीं की साक्षी से सभी प्रकार के प्राणातिपात का जीवन पर्यन्त त्याग करता हूँ। इसी प्रकार जीवन पर्यन्त मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन एवं परिग्रह का त्याग करता हूँ। इसी प्रकार क्रोध से लेकर *मिथ्यादर्शन शल्य तक, अठारह* ही पापों का त्याग करता हूँ। सभी प्रकार के अशन, पान, खादिम, स्वादिम इन चारों प्रकार के आहारों का भी जीवन पर्यन्त त्याग करता हूँ।

यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊं तो मुझे पूर्ण पालन करना कल्पता है और *यदि मुक्त नहीं हो पाऊं तो मेरे प्रत्याख्यान* उसी प्रकार जीवन पर्यन्त तक रहेंगे।"

इस प्रकार यह कर सुदर्शन श्रमणोपासक सागार प्रतिमा-छूट सहित, प्रतिमा धारण कर लेते हैं।

तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे त्त पलसहस्सणिप्फण्ण अग्रोमय मोग्गर उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदसणे समाणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव ण सचाएइ सुदसण समणोवासय तेयसा समभिपडित्तऐ।

इधर मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल के बने हुय लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ, जिधर सुदशन श्रमणोपासक थे, उधर आता है, आकर सुदशन श्रमणोपासक को वह अपनी दिव्य शक्ति से आक्रान्त करने मे समर्थ नही हो सका।

83— तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे सुदसण समणोवासय सव्वग्रो समता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव ण सचाएइ सुदसण समणोवासय तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदसणस्स समणोवासयस्स पुरश्रो सपक्खि सपडिदिसि ठिच्चा सुदसण समणोवासय अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिर निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीर विप्पजहइ, विप्पजहित्ता त पलसहस्स णिप्फण्ण अग्रोमय मोग्गर गहाय जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

जब मुद्गरपाणि यक्ष चारो ओर मे चक्कर लगाकर भी सुदशन श्रमणोपासक को अपने तेज मे आक्रान्त करने मे समर्थ नही हो सका, तब वह सुदशन श्रमणोपासक के सामने, बराबर मे, बिल्कुल सामने खडा होकर निर्निमेष दृष्टि से, चिरकाल तक देखने के बाद अर्जुनमाली के शरीर को छोड देता है, छोडकर उस हजार पल से बने लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा मे आया था उसी दिशा मे चला गया।

तए ण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेण विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलसि सव्वगेहि निवडिए। तए ण से सुदसणे समणोवासए 'निरुवसग्ग' मित्ति कट्टु पडिम पारेइ।

तब वह अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होने पर 'धम' ऐसे शब्द के साथ धडाम से सभी अगो के साथ भूमि पर गिर पडता है। तदनन्तर सुदशन श्रमणोपासक 'विघ्न खतम हो गया' ऐसा जानकर प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेते है।

महाप्रभु की सेवामे सुदर्शन और अर्जुनमालाकार

84— तए ण से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्ततरेण आसत्थे समाणे उट्ठेइ उट्ठेत्ता सुदसण समणोवासय एव वयासी—

अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर अर्जुनमाली कुछ आश्वस्त होकर उठता है, उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगा —

"तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! के कहि वा सपत्थिया ?"
तए ण से सुदसणे समणोवासए अज्जुणय मालागार एव वयासी—
"एव खलु देवाणुप्पिया ! अह सुदसणे नाम समणोवासए अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समण भगव महावीर वदए सपत्थिए।"

"हे देवानुप्रिय ! आप कौन है ? और कहा जा रहे हैं ?" सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुनमाली को इस प्रकार कहा— "हे देवानुप्रिय ! मैं सुदर्शन नाम का जीवाजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक हूँ। मैं गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन करने के लिये जा रहा हूँ।"

तए ण से अज्जुणए मालागारे सुदसण समणोवासय एव वयासी— "त इच्छामि ण देवाणुप्पिया अहमवि तुमए सद्धि समण भगव महावीर वदित्तए जाव^ पज्जुवासित्तए।"

तब अर्जुनमाली, सुदर्शन श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगे—
"हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार, यावत् पर्युपासना करने के लिये जाना चाहता हूँ।"

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेहि।

सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा—
"जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो। वैसा करो।"

तए ण सुदसणे समणोवासए अज्जुणएण मालागारेण सद्धि जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अज्जुणएण मालागारेण

तब अर्जुनमाली सुदर्शन श्रमणोपासक के साथ जिधर गुणशीलक उद्यान था, श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहा पर आता है, आकर, अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को

सद्धि समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव[B] पज्जुवासइ ।

तिक्खुत्तो के पाठ स वन्दन-नमस्कार-पयु पासना करता है ।

तए ण समणे भगव महावीरे सुदसणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्त धम्ममाइक्खइ । सुदसणे पडिगए ।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी न सुदशन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और नगर मे आई हुई विशाल जनता को धर्मोपदेश सुनाया । धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् सुदशन श्रमणोपासक प्रभु को वन्दन करके अपने स्थान पर चला जाता है ।

अर्जुन मालाकार भोग से योग की ओर

85– तए ण से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—"सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण जाव[A] अब्भुट्ठेमि ण भते ! निग्गथ पावयण ।"

अर्जुनमाली, प्रभु से धम का श्रवण कर, हृदय मे धारण कर, हर्षित होकर इस प्रकार कहने लगा—

'हे भगवन् ! मैं निग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हू, और इसकी आराधना के लिए उपस्थित होता हू ।'

"अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेहि ।"

प्रभु न कहा—'हे देवानुप्रिय ! जसा तुम्हारी आत्मा को सुख हो । वसा करो ।

तए ण से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, करेत्ता जाव[B] विहरइ ।

अर्जुनमाली, उत्तर-पूर्व दिशा भाग म जाकर स्वय ही पचमुष्टि लु चन करता है । साथ करके प्रभु मे अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करते हुए तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगता है ।

तए ण से अज्जुणए अणगारे ज चेव दिवस मुण्डे जाव[C] पव्वइए त

वे अर्जुन अनगार जिस दिन म मुण्डित प्रव्रजित हुए थे उसी दिन से श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करते है

चेव दिवस समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता इम एयारूव अभिग्गह ओगेण्हइ—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठ छट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूव अभिग्गह ओगिण्हइ—ओगिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव[D] विहरइ ।

वन्दन–नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रहण करते हैं—मुझे कल्पता है, बेले-बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना । इस प्रकार अभिग्रह धारण करके अर्जुन अनगार जीवन पर्यन्त बेले-बेले का तप करते हुए विचरण करते हैं।

तए ण से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, जाव[F] अडइ ।

अर्जुन अनगार बेले के पारणे में प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते हैं । दूसरे प्रहर म ध्यान करते ह । तीसरे प्रहर मे गौतम स्वामी की तरह भगवान से, आज्ञा प्राप्त कर उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं ।

सहनशीलता का उत्कर्ष सिद्धि की प्राप्ति

86– तए ण त अज्जुणय अणगार रायगिहे नयरे उच्च जाव[A] अडमाण बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एव वयासी—

उन अर्जुन अनगार को राजगृह नगर के उच्चादि घरो म घूमते हुए देखकर बहुत स स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध, युवा इस प्रकार कहा नग—

"इमेण मे पिता मारिए ! इमेण मे माता मारिया । इमेण मे भाया भगिणी भज्जा पुत्ते धूया सुण्हा इमेण मे अण्णयरे सयण–सबधि–परियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसति अप्पेगइया हीलति[40] निदति[41] खिसति[42] गरिहति[43]

"इसने मेरे पिता को मार दिया, माता को मारा, बहिन को मारा, पत्नी को मारा, पुत्र को मारा, (दुहिता) लड़की को मारा, (स्नुषा) पुत्र वधू को मारा । इसने मेरे अन्य स्वजन—भाई बन्धु, सगे सम्बन्धी परिजन—दास-दासी आदि को मार दिये । ऐसा कहकर कई व्यक्ति कटु वचनों से भर्त्सना करते ह । कई व्यक्ति दुर्वचनों द्वारा क्रोध पैदा करने की कोशिश करते हैं, दोष

तज्जति तालेंति ।"

तए ण से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे जाव[B] तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्म सहइ, सम्म खमइ सम्म तितिक्खइ सम्म अहियासेइ, सम्म सहमाणे सम्म खममाणे सम्म तितिक्खमाणे सम्म अहियासेमाणे रायगिहे नयरे उच्च-णीय-मज्झिम-कुलाइ अडमाणे जइ भत्त लभइ तो पाण[44] न लभइ, अह पाण लभइ तो भत्त न लभइ ।

87— तए ण से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी[45] अडइ अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे जाव^ पडिदसेइ, पडिदसेत्ता समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएण अप्पाणेण तमाहार आहारेइ । तए ण समणे भगव महावीरे अण्णया रायगिहाओ

निकालते है, तिरस्कार करते है लाठी, ईंट आदि से ताडना करते है ।"

किन्तु अर्जुन अनगार उन बहुत स स्त्रियो से, पुरुषो से, बालको से, वृद्धो से, युवाओ से आक्रोशित होते हुए, यावत ताडित होते हुए उनके प्रति मन मे भी द्वेष नही करते हुए समभाव मे सहन करते हैं । क्षमा करते हैं । अदीन भाव से सहन करते हैं । निर्जरा की भावना मे शुद्ध अन्त करणपूर्वक क्षमा करते हुए राजगृह नगर के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भ्रमण करते हुए उन्हें आहार मिलता तो कभी पानी नही मिलता और यदि पानी प्राप्त होता तो कभी आहार प्राप्त नही होता।

वे अर्जुन अनगार अदीन, अविमन अकलुष, (अनाविल), जिसका अन्त करण स्वच्छ है (अविषादि) विषाद-खिन्नता से रहित (अपरितान्त योगी) थकावट रहित योग समाधि वाले होकर घरो मे परिभ्रमण करते है घूम करके राजगृह नगर से बाहर निकलते है । निकल कर गुणशीलक नामक उद्यान मे जहा श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, उधर आते हैं आकर गौतम स्वामी की तरह उन्हे आहार दिखलाते हैं । दिखलाकर श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त होने पर अमूर्छित हो, अगृद्ध हो, जिस प्रकार साप बिल मे प्रवेश करता है उसी तरह रागद्वेष के टढेपन से रहित होकर समभाव से ग्रहण करते है । कुछ दिनो के पश्चात् किसी दिन श्रमण भगवान महावीर

पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहार विहरइ।

स्वामी राजगृह नगर से बाहर जनपद में विहार करते है।

तए ण से अज्जुणए अणगारे तेण ओरालेण विपुलेण पयत्तेण पग्गहिएण महाणुभागेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियाग पाउणइ पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेइ झूसेत्ता तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेइ छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव सिद्धे ।

अर्जु न अनगार भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त, उत्कृष्ट भावना से अगीकृत, उदार, विपुल, प्रदत्त (प्रग्रहित), महान प्रभाव वाले तप कर्म रूप आचरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए, परिपूर्ण छ महिनो तक साधुवृत्ति का पालन करते हैं। अर्द्ध मास की सलेखना द्वारा अपनी आत्मा का शुद्ध करते हैं। तीस भक्त का छेदन करते हैं, छेदन करके जिस प्रयोजन के लिये साधु जीवन स्वीकार किया था, उसे पूर्ण कर अर्थात् सब कर्म विनिर्मुक्त होकर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करते हैं।

4—14 अध्ययन
काश्यप आदि गाथापति

88— तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे, गुणसिलाए चेइए। सेणिए राया, कासवे नाम गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे ।

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशील नामक बगीचा था। श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उसी नगर मे काश्यप नामक गाथापति रहता था। मकाई गाथापति की तरह काश्यप गाथापति ने भी सयम जीवन अगीकार कर सोलह वर्ष पर्यन्त उसका पालन कर अत मे सभी कर्मों का क्षय करके विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव^— खेमए वि गाहावई, नयर—कायदी नयरी। सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे ।

इसी प्रकार क्षमक गाथापति का वर्णन भी जानना चाहिये। विशेषता इतनी ही है कि काकदी नगरी थी। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव[B]– धिइहरे वि गाहावई कायदीए नयरीए। सोलस वासा परियाग्रो विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार धृतिधर गाथापति का वर्णन भी जानना चाहिए। काकदी नगरी थी। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे विपुलाचल पवत पर सिद्धि प्राप्त की।

एव[C]–केलासे वि गाहावई–नवर–साएए नयरे। बारस वासाइ परियाग्रो विपुले सिद्ध।

इसी प्रकार कैलाश नामक गाथापति का वर्णन भी समझना चाहिये। विशेष-साकेत नगर था। बारह वर्ष पर्यन्त सयम पर्याय का पालन किया और विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव[D]– हरिचदणे वि गाहावई–साएए नयरे। बारस वासा परियाग्रो विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार हरिचदन गाथापति का भी वर्णन जानना चाहिये। साकेत नगरी थी। बारह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव[E]– बारत्तए वि गाहावई–नवर–रायगिहे नयरे। बारस वासा परियाग्रो। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार बारतक नामक गाथापति के विषय मे भी जानना चाहिये। विशेष–राजगृह नामक नगरी थी, बारह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया, विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव[F]– सुदसणे वि गाहावई–नवर वाणियगामे नयरे दूइपलास चेइए। पच वासा परियाग्रो। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति के विषय मे भी जानना चाहिय। विशेष-वाणिज्यग्राम नामक नगरी मे द्युतिपलाश नामक बगीचा था। पाँच वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एव[G]– पुण्णभद्दे वि गाहावई–वाणियगामे नयरे। पच वासा परियाग्रो विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति के विषय म भी जानना चाहिये। वाणिज्यग्राम नामक नगर था। पाँच वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[11]— सुमणभद्दे वि गाहावई-सावत्थीए नयरीए। बहुवासाइ परियाम्रो। विपुले सिद्धे।

सुमनभद्र गाथापति के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष-श्रावस्ती नगरी थी। बहुत वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[1]— सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए। सत्तावीस वासा परियाम्रो। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार सुप्रतिष्ठित गाथापति के विषय मे भी जानना चाहिए। विशेष-श्रावस्ती नगरी थी। सत्ताईस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[J]— मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे। बहूहिं वासाइ परियाम्रो विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार मेघ गाथापति के विषय मे जानना चाहिये। राजगृह नगर था। बहुत वर्ष तक संयम का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

15वां अध्ययन

पोलासपुर में गौतम अनगार

89— तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नयरे। सिरिवणे उज्जाणे। तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजए नाम राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी नाम देवी होत्था, वण्णम्रो। तस्स णं विजयस्स रण्णो। पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नाम कुमारे होत्था, सुमालपाणिपाए।

षष्ठम वर्ग के चौदह अध्ययनों का अर्थ श्रवण करने पर आर्य सुधर्मा स्वामी से समक्ष जम्बू स्वामी द्वारा पन्द्रहवें अध्ययन का सार जानने की जिज्ञासा व्यक्त करने पर आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

हे जम्बू! उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था। श्रीवन नामक उद्यान था। उस पोलासपुर में विजय नामक राजा राज्य करता था। उस विजय राजा के श्री नाम की पटरानी थी, जिसका गुण सम्पदा का वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार जानना चाहिए। विजय राजा का पुत्र, श्री देवी का आत्मज सुकुमार अंगोपांग वाला अतिमुक्त नामक कुमार था।

तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे जाव[A] विहरइ।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पोलासपुर के श्रीवन नामक उद्यान मे पधारे।

तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इदभूती अणगारे जहा पण्णत्तीए जाव[B] पोलासपुरे नयरे उच्च जाव[C] अडइ।

भगवान महावीर के पदार्पण के अनंतर प्रभु के पट्ट शिष्य इन्द्रभूति अनगार, बेले के पारणे के लिये (भगवती मे वर्णित विषय के अनुसार) प्रभु से आज्ञा लेकर पोलासपुर के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे गोचरी के लिये निकलते हैं।

इम च ण अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए बहूहि दारगेहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धि सपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इदट्ठाणे तेणेव उवागए तेहि बहूहि दारएहि य सपरिवुडे अभिरममाणे- अभिरममाणे विहरइ। तए ण भगव गोयमे उच्च जाव अडमाणे इदट्ठाणस्स अदूरसामतेण वीईवयइ।

इधर अतिमुक्तक कुमार स्नान आदि करके, सर्वविध आभूषणो से विभूषित होकर बहुत से बालक-बालिकाओ, लडके-लडकियो, कुमार-कुमारियो के साथ एकत्रित होकर, घर से निकले, निकलकर जहाँ इन्द्रस्थान था (क्रीडा-स्थल) उधर पहुँचे। वहाँ अपने साथियो से घिरे हुए खेल खेलने लगे।

उसी समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर मे घरो मे भ्रमण करते हुए, इन्द्रस्थान के, न अति निकट न अति दूर, निकलते हैं।

अतिमुक्तक और गौतम अनगार का समागम

90— तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम अदूरसामतेण वीईवयमाण पासइ, पासित्ता जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागए, भगव गोयम एव वयासी—

तब अतिमुक्तक कुमार भगवान गौतम को इस प्रकार न अति दूर न अति निकट जाते हुए देखते हैं, देखकर जहाँ भगवान गौतम थे, वहाँ आते हैं। आकर, भगवान गौतम को इस प्रकार कहा कि—

"के ण भत्ते! तुब्भे? किं वा अडह?"

"भगवन्! आप कौन हैं? किस लिए घरो मे भ्रमण कर रहे हैं"?

तए ण भत्ते गोयमे अइमुत्त कुमार एव वयासी—"अम्हे ण देवाणुप्पिया—समणा निग्गया इरिया—समिया जाव गुत्तबभयारी उच्च जाव[A] अडामो।"

तब भगवान गौतम ने फरमाया—

"हे देवानुप्रिय! हम श्रमण-निग्रन्थ हैं। ईर्यासमिति आदि पाच समिति—तीन गुप्ति महाव्रत, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने वाले है। भिक्षार्थ उच्च-नीच-मध्यम परिवार म घूम रहे हैं।"

तए ण अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी—

एह ण भत्ते! तुब्भे जा ण अह तुब्भ भिक्ख दवावेमि त्ति कट्टु भगव गोयम अगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए ण सा सिरिदेवी भगव गोयम एज्जमाण पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागया। भगव गोयम तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता विउलेण असण[47]—पाण[48]—खाइम[49] साइमेण पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ।

तब कुमार अतिमुक्तक ने भगवान गौतम को कहा— "हे भगवन्! आप इधर पधारें, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हूँ।" ऐसा कह कर कुमार, भगवान गौतम की अगुली पकड लेता है। पकड कर, जिधर अपना घर (महल) था, उधर ले जाता है। श्री महारानी भगवान गौतम को इस प्रकार आते हुए देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है। आसन से उठती है, उठकर जहा पर भगवान गौतम थे, वहा पर आती है। भगवान गौतम को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है, करके वन्दना-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम से प्रतिलाभित करती है और सम्मान पूर्वक उन्हे विदा करती है।

91— तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी—

"कहि ण भते! तुब्भे परिवसह?

उसके बाद भगवान गौतम को अतिमुक्तक कुमार इस प्रकार कहने लगे—

"हे भगवन्! आप कहा पर रहते है?"

तए ण से भगव गोयमे अइमुत्त कुमार एव वयासी-"एव खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगव महावीरे आइगरे जाव सपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स वहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरुव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। तत्थ ण अम्हे परिवसामो।"

भगवान गौतम ने अतिमुक्तक कुमार को कहा—"हे देवानुप्रिय ! धर्मतीर्थ की स्थापना करने, मोक्ष प्राप्ति की विशुद्ध कामना करने वाले, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक, मेरे धर्माचार्य धर्मगुरू, श्रमण भगवान महावीर स्वामी पोलासपुर नामक नगर के बाहर, श्रीवन नामक उद्यान मे साधुवृत्ति के अनुरूप अवग्रह लेकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे है। वहाँ पर मैं रहता हूँ।"

गौतम अनगार के साथ अतिमुक्तक

92— तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी-"गच्छामि ण अह तुब्भेहि सद्धि समण भगव महावीर पायवदए।"

तदनन्तर भगवान गौतम से अतिमुक्तक कुमार ने कहा—"भगवन् ! मैं आपके साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को चरण-वन्दन करने के लिये चलना चाहता हूँ।"

"अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेहि"।

भगवान गौतम ने फरमाया—
"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को शाति हो। वैसा करो। परन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।"

तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेण सद्धि जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ जाव^A पज्जुवासइ।

तब अतिमुक्तक कुमार भगवान गौतम के साथ जिधर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, उधर आते हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा कर, वन्दन-नमस्कार यावत् पर्युपासना करते हैं।

तए ण भगव गोयमे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागए जाव^B पडिदसेइ, पडिदसेत्ता सजमेण तवसा

भगवान गौतम भी जिधर श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे, उधर आते हैं, आकर पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार, भगवान महावीर को दिखलाते हैं, दिखलाकर

अप्पाण भावेमाणे विहरइ । तए ण समणे भगव महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा ।

उसे ग्रहण करते हुए सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगते हैं ।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी, अतिमुक्तक कुमार के साथ ही उपस्थित विशाल जनमेदिनि को धर्म कथा श्रवण कराते है ।

साधना से सिद्धि तक अतिमुक्तक अनगार

93—तए ण से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे एव वयासी—सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण जाव^A ज नवर-देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए जाव^B पव्वयामि ।

वह अतिमुक्तक कुमार भगवान के पास धर्मकथा श्रवण कर, विचार कर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए प्रभु से इस प्रकार बोले—'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, यावत् हे देवानुप्रिय ! माता पिता से अनुमति प्राप्त कर मैं भगवान के पास दीक्षित होना चाहता हूँ ।

अहासुह देवाणुप्पिया मा पडिबध करेहि ।

तए ण से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव^C पव्वइत्तए ।

प्रभु ने फरमाया—हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो किन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो ।' तदनन्तर अतिमुक्तक कुमार जिधर अपने माता पिता थे, उधर आते हैं, आकर माता पिता से दीक्षित होने हेतु अनुमति चाही ।

94—तए ण त अइमुत्त कुमार अम्मापियरो एव वयासी—"बाले सि ताव तुम पुत्ता ! असबुद्धे सि तुम पुत्ता । कि ण तुम जाणसि धम्म ?"

तब माता पिता ने अतिमुक्तक कुमार को इस प्रकार कहा—

"हे पुत्र ! तुम अभी बालक हो !

हे पुत्र ! तुम अभी अबुद्ध हो ।'

"तुम अभी धर्म तत्त्व को क्या जानते हो ?"

तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एव वयासी—"एव खलु

तब अतिमुक्तक कुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता पिता ! मैं जिसको

अह अम्मयाओ ! ज चेव जाणामि त चेव न जाणामि, ज चेव न जाणामि त चेव जाणामि ।"

जानता हूँ, उसी को नही जानता हूँ, और जिसको नही जानता हूँ, उसी को जानता हूँ ।'

तए ण त अइमुत्त कुमार अम्मापियरो एव वयासी—"कह ण तुम पुत्ता ! ज चेव जाणसि जाव[A] त चेव न जाणसि ?"

तब अतिमुक्तक कुमार को माता पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तुम कैसे जिसको जानते हो, उसी को नही जानते हो और जिसको नही जानते हो, उसी को जानते हो ?"

तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एव वयासी—

"जाणामि अह अम्मयाओ ! जहा जाएण अवस्स मरियव्व, न जाणामि अह अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कह वा कियच्चिरेण वा ? न जाणामि ण अम्मयाओ ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइयतिरिक्खजोणिय—मणुस्स—देवेसु-उववज्जति, जाणामि ण अम्मयाओ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय जाव[B] उववज्जति । एव खलुअह अम्मयाओ ! ज चेव जाणामि त चेव न जाणामि, ज चेव न जाणामि त चेव जाणामि । त इच्छामो ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए ।"

तब अतिमुक्तक कुमार ने अपने माता पिता को इस प्रकार कहा—"हे माता पिता ! मैं जानता हूँ जैसे—जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यभावी है । किन्तु हे माता पिता ! मैं यह नही जानता हूँ कि वह कब किस समय अथवा कहा पर, किस स्थान पर कैसी अवस्था मे आयगी । मैं नही जानता हूँ कि जीव किन कर्मायतनो—किन कर्मबन्ध के कारणों से नारकी, तिर्यच, मनुष्य या देवता मे उत्पन्न होते हैं । किन्तु हे माता पिता ! मैं यह जानता हूँ कि जीव अपने कर्म बन्ध के कारणो से नारकी आदि योनियो में जन्म लेते हैं । अत हे माता पिता ! इस प्रकार निश्चय ही मैं जो जानता हू, उसे ही नही जानता हू । और जो नही जानता हू, उसे ही जानता हू । हे माता पिता ! अब आपके द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर मैं सयम जीवन अगीकार करना चाहता हूँ ।"

तए ण त अइमुत्त कुमार अम्मापियरो जाहे नो सचाएति बहूहिं आघवणाहिं जाव[C] त इच्छामो ते

अतिमुक्तक कुमार को माता पिता, अनेकविध उदार मृदु वचनो से समझाने का प्रयास करने लगे किन्तु जब वे उसे

जाया। एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणिए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स। निक्खमणं। जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं जाव विपुले सिद्धे।

प्रव्रजित होने से नहीं रोक सके, तब उन्होंने कहा—पुत्र! हम केवल एक दिन की ही तेरी राज्य श्री को देखने की इच्छा करते हैं। तब अतिमुक्तक कुमार माता पिता की इतनी सी बात मानकर उनके दिल को सन्तुष्ट करने के लिए मौन हो बैठ रहे। तब उनका राज्याभिषेक किया गया। जिसका वर्णन महाबल की तरह जानना चाहिए। अतिमुक्तक कुमार ने निष्क्रमण महोत्सव के साथ भगवती दीक्षा ग्रहण की। स्थविर भगवन्तों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य धर्म का पालन किया। गुण रत्न आदि तपश्चरण किया। अन्त में विपुलगिरि नामक पर्वत पर सभी कर्मों का अन्त कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

16वाँ अध्ययन

अलक्ष

०५– तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था।

उस काल उस समय में वाराणसी नामक नगरी थी। उसके बाहर काम महावन नामक उद्यान था। वाराणसी नगरी के नरेश का नाम महाराजा अलक्ष था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, परिसा निग्गया। तए णं अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे जहा कोणिए जाव धम्मकहा।

उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगर में पधारे और नगरी के काममहावन उद्यान में विराजे। भगवान के पदार्पण का वृत्तान्त श्रवण कर नगर निवासी प्रभु के चरणों में उपस्थित हो गये। भगवान महावीर का समाचार जब अलक्ष नरेश को मिला तो उन्हें बड़ा हर्ष एवं सन्तोष हुआ। वे भी महाराज कोणिक की तरह बड़े समारोह के साथ प्रभु के चरणों में उपस्थित हुए। वन्दना नमस्कार कर नरेश आदि सब के बैठने के बाद प्रभु ने धर्मोपदेश किया।

तए ण से ग्रलक्के राया समणस्स भगवग्रो महावीरस्स ग्रतिए जहा उदायणे तहा निक्खत्ते । नवर जेट्ठपुत्त रज्जे ग्रभिसिचइ । एक्कारस ग्रगाइ । बहू वासा परियाग्रो जाव विपुले सिद्धे ।

धर्म कथा श्रवण कर, ग्रलक्ष नरेश ससार से विरक्त हो गये ग्रौर उदायन महाराज की तरह श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित हो गए । विशेषता यह है कि–ग्रलक्ष नरेश ने ग्रपने वडे पुत्र को राज्य–सिहासन पर विठला कर दीक्षा ग्रहण की थी । ग्रलक्ष ग्रनगार ने सयम जीवन ग्रगीकार करने के ग्रनन्तर सामायिक ग्रादि ग्यारह ग्रगो का ग्रध्ययन किया । वहुत वर्ष पर्यन्त श्रामण्य पर्याय का पालन किया । विविध तपश्चरण किये । ग्रन्त मे सलेखना सथारा पूर्वक विपुलगिरि नामक पर्वत पर सभी कर्मो का ग्रन्त करके सिद्धत्व ग्रवस्था प्राप्त की ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण ग्रट्ठमस्स ग्रगस्स ग्रतगडदसाण छट्ठस्स वगस्स ग्रयमट्ठे पण्णत्ते ।

इस प्रकार छट्ठे वर्ग के सोलह ग्रध्ययन सुनाने के वाद ग्रार्य सुधर्मा स्वामी, ग्रार्य जम्बू स्वामी को कहने लगे–हे जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने ग्रष्ठम ग्रग ग्रन्तकृद्दशाग सूत्र के षष्ठम वर्ग के इस प्रकार सोलह ग्रध्ययन फरमाये हैं।

।। छट्ठो वग्गो सम्मत्तो ।।

।। षष्ठ वर्ग समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —श्रमण भगवान महावीर स्वामी के "आइगरे" विशेषण लगाया गया है कि भगवान महावीर धर्म के "आदिकर" कैसे हुए ? अवसर्पिणी काल में धर्म के आद्य प्रवर्तक तो ऋषभदेव भगवान है ?

समाधान — जितने भी तीर्थंकर होते हैं, वे किसी का भी उपदेश नहीं सुनते और न ही किसी के पास दीक्षा ही ग्रहण करते हैं। वे स्वतः ही दीक्षा ग्रहण करके अपनी साधना द्वारा केवल ज्ञान, केवलदर्शन, प्राप्त करते हैं। और प्रत्येक तीर्थंकर अपने काल में चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं। श्रुत–चारित्र धर्म का प्ररूपण करते हैं।

इस अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान हुए हैं। इसलिये अवसर्पिणी काल एवं प्रथम तीर्थंकर की अपेक्षा धर्म के 'आदिकर' कहे जाते हैं। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हुए, किन्तु उन्होंने प्रभु ऋषभदेव का उपदेश सुनकर उपदेश नहीं दिया, अपितु स्वतः पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उपदेश दिया था। अतः वे भी अपने काल की अपेक्षा धर्म के 'आदिकर' हैं। इसी प्रकार प्रभु महावीर ने भी स्वतः पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, फिर धर्मोपदेश दिया था, अतः वे भी उस काल की अपेक्षा धर्म के आदिकर हुए।

यद्यपि धर्म की व्याख्या सभी तीर्थंकर मूलतः समान ही करते हैं किन्तु वे उसका अनुकरण नहीं करते। अतः वे सभी धर्म के 'आदिकर' ही होते हैं।

जिज्ञासा — प्रभु अरिष्टनेमि एवं प्रभु महावीर की शासन परम्परा एक समान ही है या उनमें कुछ अन्तर है ?

समाधान — किसी भी तीर्थंकर की शासन परम्परा में मूलतः कोई अन्तर नहीं होता। निर्दोष दृष्टि से सूर्य को देखने वाले, सूर्य के प्रकाश का एक समान ही वर्णन करेंगे। इसी प्रकार पूर्णज्ञानी महापुरुष की व्याख्या यद्यपि स्वतोद्भूत होती है तथापि सभी के पूर्णज्ञान की समानता के कारण, सभी की व्याख्या मूलतः एक ही समान होती है। देश काल की अपेक्षा से व्याख्या के प्रकारों में अन्तर आ सकता है। भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर की शासन परम्परा एवं आचार व्यवस्था एक समान, और मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों की व्यवस्था एक समान थी।

प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकरों के साधक क्रमशः ऋजुजड़ एवं वक्रजड़ होने के कारण व्यवस्था में पाँच महाव्रत बतलाए गए और सचेल (श्वेत) कपड़ों का विधान किया गया।

मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों की शासन परम्परा में साधक ऋजुप्राज्ञ होने के कारण, चार

महाव्रत वतलाए गये । उसमे चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत को पाचवे अपरिग्रह महाव्रत मे परिगणित कर लिया गया । क्योंकि स्त्री को भी परिग्रह मे मान लिया गया । पाचो ही रग के कपडे रखने का भी विधान किया गया ।

इसी प्रकार मध्यवर्ती वाईस तीर्थंकरों के शासन काल के साधको को उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक नही था, जव दोष लगता, तभी वे प्रतिक्रमण करते थे । किन्तु प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो केसाधको के लिये उभयकाल प्रतिक्रमण एव श्वेत वस्त्र आवश्यक वतलाये गये हैं । इसी प्रकार के और भी कुछ परिवर्तनों का वर्णन शास्त्रो मे मिलता है ।

ऋजुप्राज्ञ से तात्पर्य जो सरल भी हो और वुद्धिमान भी हो । अर्थात् जो थोडे से मे अधिक समझ जाय उसे ऋजुप्राज्ञ कहते हैं । ऋजुजड उसे कहते हैं जो सरल तो हो किन्तु मद वुद्धिवाला हो । अर्थात् जो वार-वार कहने से भी उस वात को पूरी समझ न पावे । वक्रजड उसे कहते हैं जो कुटिल भी हो और वुद्धि से भी मद हो । अर्थात् जो एक वार कहने पर न तो पूरी वात समझ पावे और साथ ही कुतर्क भी करे ।

जिज्ञासा —उभय कालीन प्रतिक्रमण किस-किस समय करने चाहिएँ ?

समाधान —रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य-उदय होने के एक मुहूर्त पहले प्रारभ कर सूर्योदय तक समाप्त हो जाना चाहिये । दिवस प्रतिक्रमण सूर्य अस्त होने के वाद प्रारभ कर एक मुहूर्त मे समाप्त हो जाना चाहिये ।

कई लोगो का यह कहना है कि दिन का प्रतिक्रमण सूर्य अस्त होने के वाद प्रारभ हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य उदय होने के वाद प्रारभ होना चाहिये, या दिन का प्रतिक्रमण सूर्य अस्त के पहले हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य उदय होने के वाद होना चाहिए । दिवस और रात्रि का प्रतिक्रमण रात्रि मे ही कैसे हो सकता है ?

इस कथन के पीछे कोई ठोस शास्त्रीय आधार नहीं है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के समाचारी नामक छब्बीसवें अध्ययन मे साधु समाचारी का वर्णन किया गया है । इसी अध्ययन की आठवी गाथा मे वतलाया है कि—

दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम भाग मे अर्थात् सूर्य उदय हो जाने पर, गुरुदेव को वन्दन नमस्कार करके, प्रतिलेखन करें । [1]

इस गाथा के अनुसार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने का विधान किया गया है । यदि

[1] पुव्विल्लम्मि चउब्भाए आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भण्डय पडिलेहित्ता, वदित्ता य तओ गुरु ॥

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —श्रमण भगवान महावीर स्वामी के "आइगरे" विशेषण लगाया गया है कि भगवान महावीर धर्म के "आदिकर" कैसे हुए ? अवसर्पिणी काल में धर्म के आद्य प्रवर्तक तो ऋषभदेव भगवान है ?

समाधान — जितने भी तीर्थंकर होते हैं, वे किसी का भी उपदेश नहीं सुनते और न ही किसी के पास दीक्षा ही ग्रहण करते हैं। वे स्वत ही दीक्षा ग्रहण करके अपनी साधना द्वारा केवल ज्ञान, केवलदर्शन, प्राप्त करते हैं। और प्रत्येक तीर्थंकर अपने काल में चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं। श्रुत–चारित्र धर्म की प्ररूपणा करते हैं।

इस अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान हुए हैं। इसलिए अवसर्पिणी काल एवं प्रथम तीर्थंकर की अपेक्षा धर्म के आदिकर' कहे जाते हैं। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हुए किन्तु उन्होंने प्रभु ऋषभदेव का उपदेश सुनकर उपदेश नहीं दिया, अपितु स्वत पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उपदेश दिया था। अत वे भी अपने काल की अपेक्षा धर्म के 'आदिकर हैं। इसी प्रकार प्रभु महावीर ने भी स्वत पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, फिर धर्मोपदेश दिया था, अत वे भी उस काल की अपेक्षा धर्म के आदिकर हुए।

यद्यपि धर्म की व्याख्या सभी तीर्थंकर मूलत समान ही करते हैं किन्तु वे उसका अनुवर्तन नहीं करते। अत वे सभी धर्म के 'आदिकर ही होते हैं।

जिज्ञासा — प्रभु अरिष्टनेमि एवं प्रभु महावीर की शासन परम्परा एक समान ही है या उसमें कुछ अन्तर है ?

समाधान — किसी भी तीर्थंकर की शासन परम्परा में मूलत कोई अन्तर नहीं होता। निर्दोष दृष्टि से सूर्य को देखने वाले सूर्य के प्रकाश का एक समान ही वर्णन करेंगे। इसी प्रकार पूर्णज्ञानी महापुरुष की व्याख्या यद्यपि स्वतोद्भूत होती है, तथापि सभी के पूर्णज्ञान की समानता के कारण, सभी की व्याख्या मूलत एक ही समान होती है। देश काल की अपेक्षा से व्याख्या के प्रकारों में अन्तर आ सकता है। भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर की शासन परम्परा एवं आचार व्यवस्था एक समान, और मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों की व्यवस्था एक समान था।

प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकरों के साधक क्रमश ऋजुजड़ एवं वक्रजड़ होने के कारण व्यवस्था में पाँच महाव्रत बतलाए गए और सचेल कल्प का विधान किया गया।

मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों की शासन परम्परा में साधक ऋजुप्राज्ञ होने के कारण, चार

महाव्रत बतलाए गये । उसमे चौथे ब्रह्मचय महाव्रत को पाचवे अपरिग्रह महाव्रत मे परिगणित कर लिया गया । क्योकि स्त्री को भी परिग्रह मे मान लिया गया । पाचो ही रग के कपडे रखने का भी विधान किया गया ।

इसी प्रकार मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो के शासन काल के साधको को उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक नही था, जब दोष लगता, तभी वे प्रतिक्रमण करते थे । किन्तु प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो के साधको के लिये उभयकाल प्रतिक्रमण एव श्वेत वस्त्र आवश्यक बतलाये गये हैं । इसी प्रकार के और भी कुछ परिवर्तनो का वर्णन शास्त्रो मे मिलता है ।

ऋजुप्राज्ञ से तात्पय जो सरल भी हो और बुद्धिमान भी हो । अर्थात् जो थोडे से मे अधिक समझ जाय उसे ऋतुप्राज्ञ कहते हैं । ऋजुजड उसे कहते हैं जो सरल तो हो किन्तु मद बुद्धिवाला हो । अर्थात जो बार-बार कहने से भी उस बात को पूरी समझ न पावे । वक्रजड उसे कहते हैं जो कुटिल भी हो और बुद्धि से भी मद हो । अर्थात् जो एक बार कहने पर न तो पूरी बात समझ पावे और साथ ही कुतर्क भी करे ।

जिज्ञासा —उभय कालीन प्रतिक्रमण किस-किस समय करने चाहिएँ ?

समाधान —रात्रि का प्रतिक्रमण सूय-उदय होने के एक मुहूत पहले प्रारभ कर सूर्योदय तक समाप्त हो जाना चाहिये । दिवस प्रतिक्रमण सूय अस्त होने के बाद प्रारभ कर एक मुहूत मे समाप्त हो जाना चाहिये ।

कई लोगो का यह कहना है कि दिन का प्रतिक्रमण सूर्य अस्त होने के बाद प्रारभ हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूय उदय होने के बाद प्रारभ होना चाहिये, या दिन का प्रतिक्रमण सूय अस्त के पहले हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूय उदय होने के बाद होना चाहिए । दिवस और रात्रि का प्रतिक्रमण रात्रि मे ही कैसे हो सकता है ?

इस कथन के पीछे कोई ठोस शास्त्रीय आधार नही है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के समाचारी नामक छब्बीसवें अध्ययन मे साधु समाचारी का वर्णन किया गया है । इसी अध्ययन की आठवी गाथा मे बतलाया है कि–

दिन के प्रथम प्रहर क प्रथम भाग मे, अर्थात सूर्य उदय हो जाने पर, गुरूदेव को वन्दन नमस्कार करके, प्रतिलेखन करें । [1]

इस गाथा के अनुसार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने का विधान किया गया है । यदि

---

[1] पुव्विलम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुटिठए ।
भण्डय पडिलेहित्ता, वदित्ता य तओ गुरु ॥

रात्रिकालीन प्रतिक्रमण सूर्योदय होने पर प्रारम्भ होता तो, शास्त्रकार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने के लिये नहीं कहते।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में प्रतिक्रमण करने का विधान इसी अध्ययन की उन्नीसवीं गाथा में स्पष्ट होता है। उसमें यह बतलाया गया है कि—

रात्रिकालीन अन्तिम नक्षत्र के उदय होने पर, प्रत्यूषकाल—सूर्योदय के काल को जानकर, स्वाध्याय से विराम ले।[1]

इधर सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन करना है, उधर रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में स्वाध्याय से विराम लेना है तो फिर उस समय क्या किया जाय ?

इसका विधान गाथा ४४ से ४८ तक की गाथाओं में किया गया है—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में निद्रा और चतुर्थ प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे। उस चतुर्थ प्रहर में काल का प्रतिलेखन कर साधु स्वाध्याय करें।

चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरुदेव को वन्दन कर, काल का प्रतिक्रमण कर, समय को अच्छी तरह जान लें। सभी दुःखों का नाश करने वाले कायोत्सर्ग को करें। ज्ञान दर्शन चारित्र और तप सम्बन्धी रात्रि में लगे अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करें।

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में करें।[2]

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में क्या करना चाहिये ? इसका विधान गाथा ३८,३९ में किया गया है—

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में काल का प्रतिक्रमण कर, शय्या, वस्त्रादि का प्रतिलेखन करे। उच्चार प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन करने के बाद सभी दुःखों का अन्त करने वाला कायोत्सर्ग करें।

इतना काम सम्पन्न करते-करते सूर्यास्त का समय आ जाता है। उस सूर्यास्त के समय पर क्या करें, इसके लिये ४०,४१,४२ ४३ वीं गाथाओं में संकेत दिया गया है।

---

[1] ज णेइ जया रत्ति, णक्खत्त तम्मि णह चउब्भाए।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायं पओसकालम्मि॥

[2] पढमं पोरिसि सज्झायं बिइयं झाणं झियायई। तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए॥
पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया। सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहेन्तो असंजए॥
पोरिसीए चउब्भाए वन्दित्ताण तओ गुरुं पडिक्कमित्तु कालस्स कालं तु पडिलेहए॥
आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे। काउस्सग्गं तओ कुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणं॥
राइयं च अईयारं, चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो नाणंमि दंसणंमि य चरित्तंमि तवंमि य॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के विषय मे लगे दिवस सम्बन्धी अतिचारो का चिन्तन करें। कायोत्सर्ग पूर्ण कर गुरुदेव को वन्दन करें। यथाक्रम से दिवस सम्बन्धी अतिचारो की आलोचना करें। प्रतिक्रमण करके निशल्य होता हुआ, गुरुदेव को वन्दना करे। स्तुति-मगल करके काल का प्रतिलेखन करें।

इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्यास्त होते समय प्रारम्भ करना चाहिये।

भगवती सूत्र मे वर्णन आया है कि सध्या के समय साधु आहार कर रहा है। आहार करते करते उसे एकदम सूर्य डूबता हुआ दृष्टिगत हो जाय तो तुरन्त आहार करना बद कर दे।

इसी प्रकार सूत्रकृताग सूत्र मे सूर्य-अस्त तक विहार करने का वर्णन आया है। इन प्रमाणो मे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्य-अस्त होने पर प्रारभ किया जाता है। सूर्यास्त के पहले ही प्रारभ करके पूर्ण नही किया जाता है।

जिज्ञासा —प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे प्रहर मे ध्यान और तीसरे प्रहर मे भिक्षा के लिये जाने का विधान शास्त्र मे मिलता है। दशवैकालिक सूत्र मे भी "एकभत्त च भोयण" एक भक्त भोजन का लिखा है। अत स्पष्ट है कि साधक को दिन मे एक बार ही भोजन करना चाहिये, फिर आज के साधक तीन बार क्यो करते हैं?

समाधान —वीतराग देव की साधना मे प्रवृत्त होने वाला साधु विचक्षणता से सम्पन्न होना चाहिये। आचाराग सूत्र मे कहा है— "कालण्णे" अर्थात् साधु काल को भी जानने वाला हो। काल को जानने का यह भी तात्पर्य है कि भिक्षा का कौनसा काल है? यह भी जानने वाला हो, क्योंकि साधु जीवन अगीकार करने के बाद वह पूर्ण ब्रम्हचारी होता हैं। ब्रम्हचारी पुरुष को भिक्षा आदि के लिये प्रवेश करने का समय भी विदित होना चाहिये। अर्थात् जिस समय ग्रहस्थ के घर भोजन बनता है, उस समय साधु को भिक्षार्थ ग्रहस्थ के घर मे प्रवेश करना चाहिये, क्योकि उस समय मे ग्रहस्थ के पारिवारिक, सम्य घर मे उपस्थित रह सकते है, अत उनकी उपस्थिति मे भोजन की गवेषणा साधु के लिये हितावह है। भोजन का समय समाप्त हो जाने के बाद पुरुष वर्ग प्राय अपने अपने कार्य मे चले जाते हैं। महिला वर्ग मे भी भोजन के पश्चात् शयनादि प्रसग प्राय रहता है, उस समय जो भिक्षा का काल नही, उस काल मे ग्रहस्थ के घर भिक्षा लेने के लिये यदि साधु जाता है तो कई विसगतिया सामने आ जाती हैं। प्रथम तो यह कि गृहस्थाश्रम मे रहने वाली बहिनें भोजनोपरान्त प्राय दरवाजा बद करके शयन करती हैं। ऐसे समय मे दरवाजा खुलवाने का प्रसग आ सकता हैं। उस दरवाजा खुलने मे भी यदि चुलिये वाला कपाट है तो उसे नही खुलवा सकता, क्योंकि ऐसे कपाट मे हिंसादि का प्रसग रहता है।

रात्रिकालीन प्रतिक्रमण सूर्योदय होने पर प्रारंभ होता तो, शास्त्रकार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने के लिये नहीं कहते।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में प्रतिक्रमण करने का विधान इसी अध्ययन की उन्नीसवीं गाथा से स्पष्ट होता है। उसमें यह बतलाया गया है कि—

रात्रिकालीन अन्तिम नक्षत्र के उदय होने पर, प्रत्यूषकाल—सूर्योदय के काल को जानकर, स्वाध्याय से विराम ले।[1]

इधर सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन करना है, उधर रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में स्वाध्याय से विराम लेना है तो फिर उस समय क्या किया जाय?

इसका विधान गाथा ४४ से ४८ तक की गाथाओं में किया गया है—

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में निद्रा और चतुर्थ प्रहर में पुनः स्वाध्याय करें। उस चतुर्थ प्रहर में काल का प्रतिलेखन कर साधु स्वाध्याय करें।

चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरुदेव को वन्दन कर, काल का प्रतिक्रमण कर, समय को अच्छी तरह जान लें। सभी दुःखों को नाश करने वाले कायोत्सर्ग को करें। ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप सम्बन्धी रात्रि में लगे अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करें।

उपर्युक्त व्याख्या में यह स्पष्ट है कि रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में करें।[2]

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में क्या करना चाहिये? इसका विधान गाथा ३८,३९ में किया गया है—

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग में काल का प्रतिक्रमण कर शय्या, वस्त्रादि का प्रतिलेखन करें। उच्चार प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन करने के बाद सभी दुःखों का अन्त करने वाला कायोत्सर्ग करें।

इतना कार्य सम्पन्न करते-करते सूर्यास्त का समय आ जाता है। उस सूर्यास्त के समय पर क्या करें, इसके लिये ४०,४१,४२,४३ वीं गाथाओं में संकेत दिया गया है।

---

[1] ज णेइ जया रत्तिं, णक्खत्तं तम्मि णहचउब्भाए।
सम्पत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि॥

[2] पढमं पोरिसिं सज्झायं बिइयं झाणं झियायई। तइयाइ णिद्दमोक्खं तु सज्झायं तु चउत्थिए॥
पोरिसीए चउत्थीए कालं तु पडिलेहिया। सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहेंतो असंजए॥
पोरिसीए चउब्भाए वन्दित्ताण तओ गुरुं पडिक्कमित्तु कालस्स कालं तु पडिलेहए॥
आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे। काउस्सग्गं तओ कुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणं॥
राइयं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो, णाणंमि दंसणंमि य, चरित्तंमि तवंमि य॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के विषय मे लगे दिवस सम्बन्धी अतिचारो का चिन्तन करें। कायोत्सर्ग पूर्ण कर गुरुदेव को वन्दन करें। यथाक्रम से दिवस सम्बन्धी अतिचारो की आलोचना करें। प्रतिक्रमण करके निशल्य होता हुआ, गुरुदेव को वन्दना करे। स्तुति-मगल करके काल का प्रतिलेखन करे।

इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्यास्त होते समय प्रारम्भ करना चाहिये।

भगवती सूत्र मे वर्णन आया है कि सध्या के समय साधु आहार कर रहा है। आहार करते करते उसे एकदम सूर्य डूबता हुआ दृष्टिगत हो जाय तो तुरन्त आहार करना बद कर दे।

इसी प्रकार सूत्रकृताग सूत्र मे सूर्य-अस्त तक विहार करने का वर्णन आया है। इन प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्य-अस्त होने पर प्रारभ किया जाता है। सूर्यास्त के पहले ही प्रारम्भ करके पूर्ण नही किया जाता है।

जिज्ञासा —प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे प्रहर मे ध्यान और तीसरे प्रहर मे भिक्षा के लिये जाने का विधान शास्त्र मे मिलता है। दशवैकालिक सूत्र मे भी "एकभत्त च भोयण" एक भक्त भोजन का लिखा है। अत स्पष्ट है कि साधक को दिन मे एक बार ही भोजन करना चाहिये, फिर आज के साधक तीन बार क्यो करते हैं?

समाधान —वीतराग देव की साधना मे प्रवत्त होने वाला साधु विचक्षणता से सम्पन्न होना चाहिये। आचाराग सूत्र मे कहा है— "कालण्णे" अर्थात् साधु काल को भी जानने वाला हो। काल का जानने का यह भी तात्पर्य है कि भिक्षा का कौनसा काल है? यह भी जानने वाला हो, क्योकि साधु जीवन अगीकार करने के बाद वह पूर्ण ब्रम्हचारी होता है। ब्रम्हचारी पुरुष को भिक्षा आदि के लिये प्रवेश करने का समय भी विदित होना चाहिये। अर्थात् जिस समय ग्रहस्थ के घर भोजन बनता है, उस समय साधु को भिक्षार्थ ग्रहस्थ के घर में प्रवेश करना चाहिये, क्योकि उस समय मे ग्रहस्थ के पारिवारिक, सभ्य घर मे उपस्थित रह सकते हैं, अत उनकी उपस्थिति मे भोजन की गवेषणा साधु के लिये हितावह है। भोजन का समय समाप्त हो जाने के बाद पुरुष वर्ग प्राय अपने अपने कार्य मे चले जाते हैं। महिला वर्ग मे भी भोजन के पश्चात् शयनादि प्रसग प्राय रहता है, उस समय जो भिक्षा का काल नही, उस काल में ग्रहस्थ के घर भिक्षा लेने के लिये यदि साधु जाता है तो कई विसगतिया सामने आ जाती हैं। प्रथम तो यह कि गृहस्थाश्रम मे रहने वाली बहिनें भोजनोपरान्त प्राय दरवाजा बद करके शयन करती हैं। ऐसे समय मे दरवाजा खुलवाने का प्रसग आ सकता हैं। उस दरवाजा खुलने मे भी यदि चुलिये वाला कपाट है तो उसे नही खुलवा सकता, क्योकि ऐसे कपाट मे हिंसादि का प्रसग रहता है।

रात्रिकालीन प्रतिक्रमण सूर्योदय होने पर प्रारभ होता तो, शास्त्रकार सूर्योदय होने ही प्रतिलेखन करने के लिये नही कहते ।

रात्रि के चतुथ प्रहर के चतुथ भाग मे प्रतिक्रमण करने का विधान इसी अध्ययन का उन्नीसवी गाथा से स्पष्ट होता है । उसमे यह बतलाया गया है कि—

रात्रिकालीन अन्तिम नक्षत्र के उदय होने पर, प्रत्यूषकाल—सूर्योदय के काल को जानकर, स्वाध्याय से विराम ले । [1]

इधर सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन करना है, उधर रात्रि के चतुथ प्रहर के चतुथ भाग म स्वाध्याय मे विराम लेना है तो फिर उस समय क्या किया जाय ?

इसका विधान गाथा ४४ से ४८ तक की गाथाओ मे किया गया हैं—

प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय दूसरे प्रहर म ध्यान, तीसरे प्रहर मे निद्रा और चतुथ प्रहर मे पुन स्वाध्याय करे । उस चतुथ प्रहर मे काल का प्रतिलेखन कर साधु स्वाध्याय करें।

चतुथ प्रहर के चतुथ भाग मे गुरुदेव का वन्दन कर, काल का प्रतिक्रमण कर, समय को अच्छी तरह जान लें । सभी दु खो को नाश करने वाले कायोत्सग का करें । ज्ञान, दशन, चरित्र और तप सम्बन्धी रात्रि मे लगे अतिचारो का अनुक्रम म चिन्तन करें ।

उपयु क्त व्याख्या मे यह स्पष्ट है कि रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण रात्रि के चतुथ प्रहर के चतुथ भाग मे करें । [2]

दिवस के चतुथ प्रहर के चतुथ भाग मे क्या करना चाहिये ? इसका विधान गाथा ३८,३९ *मे किया गया है—*

दिवस के चतुथ प्रहर के चतुथ भाग मे काल का प्रतिक्रमण कर शय्या, वस्त्रादि का प्रतिलेखन करें । उच्चार प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन करने के बाद सभी दु खो का अन्त करने वाला कायोत्सग करें ।

इतना काय सम्पन्न करते-करते सूर्यास्त का समय आ जाता है । उस सूर्यास्त के समय पर क्या करें, इसके लिये ४०,४१,४२,४३ वी गाथाओ मे सकेत दिया गया है ।

---

[1] ज णेइ जया रत्ति, णक्खत्तो तम्मि णह चउब्भाए ।
सम्पत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि ॥

[2] पढम पोरिसि सज्झाय, बिइय झाण झियायई । तइयाइ निद्दमोक्ख तु सज्झाय तु चउत्थिए ॥
पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिलेहिया । सज्झाय तु तओ कुज्जा, अबोहेंतो असजए ॥
पोरिसीए चउब्भाए वदित्ताण तओ गुरु पडिक्कमित्तु कालस्स काल तु पडिलेहए ॥
आगए कायवोस्सग्ग, सव्व दुक्खविमोक्खणे । काउस्सग्ग तओ कुज्जा सव्व दुक्ख विमोक्खण ॥
राइय च अइयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो, णाणमि दसण मि य चरित्तमि तव मि य ॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के विषय मे लगे दिवस सम्बन्धी अतिचारो का चिन्तन करें। कायोत्सग पूरण कर गुरुदेव को वन्दन करे। यथाक्रम से दिवस सम्बन्धी अतिचारो की आलोचना करें। प्रतिक्रमण करके निशल्य होता हुआ, गुरुदेव को वन्दना करे। स्तुति-मगल करके काल का प्रतिलेखन करे।

इस दृष्टिकोरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्यास्त होते समय प्रारम्भ करना चाहिये।

भगवती सूत्र मे वरणन आया है कि सध्या के समय साधु आहार कर रहा है। आहार करते करते उसे एकदम सूय डूबता हुआ दृष्टिगत हो जाय तो तुरन्त आहार करना बद कर दे।

इसी प्रकार सूत्रकृताग सूत्र मे सूर्य-अस्त तक विहार करने का वरणन आया है। इन प्रमाणो मे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूय-अस्त होने पर प्रारभ किया जाता है। सूर्यास्त के पहले ही प्रारभ करके पूरण नही किया जाता है।

जिज्ञासा —प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे प्रहर मे ध्यान और तीसरे प्रहर मे भिक्षा के लिये जाने का विधान शास्त्र मे मिलता है। दशवैकालिक सूत्र मे भी "एकभत्त च भोयरण" एक भक्त भोजन का लिखा है। अत स्पष्ट है कि साधक को दिन मे एक बार ही भोजन करना चाहिये, फिर आज के साधक तीन बार क्यो करते है?

समाधान —वीतराग देव की साधना मे प्रवृत्त होने वाला साधु विचक्षणता से सम्पन्न होना चाहिये। आचाराग सूत्र मे कहा है — "कालण्णे" अर्थात् साधु काल को भी जानने वाला हो। काल को जानने का यह भी तात्पय है कि भिक्षा का कौनसा काल है? यह भी जानने वाला हो, क्योकि साधु जीवन अगीकार करने के बाद वह पूर्ण ब्रम्हचारी होता है। ब्रम्हचारी पुरुष को भिक्षा आदि के लिये प्रवेश करने का समय भी विदित होना चाहिये। अर्थात् जिस *समय ग्रहस्थ के घर भोजन बनता है, उस समय साधु को भिक्षाथ ग्रहस्थ के घर मे प्रवेश करना* चाहिये, क्योकि उस समय मे ग्रहस्थ के पारिवारिक, सभ्य घर मे उपस्थित रह सकते हैं, अत उनकी उपस्थिति मे भोजन की गवेषणा साधु के लिये हितावह है। भोजन का समय समाप्त हो जाने के बाद पुरुष वग प्राय अपने अपने काय म चले जाते ह। महिला वर्ग मे भी भोजन के पश्चात् शयनादि प्रसग प्राय रहता है, उस समय जो भिक्षा का काल नही, उस काल मे ग्रहस्थ के घर भिक्षा लेने क लिये यदि साधु जाता है तो कई विसगतिया सामने आ जाती हैं। प्रथम तो यह कि गृहस्थाश्रम मे रहने वाली बहिनें भोजनोपरान्त प्राय दरवाजा बद करके शयन करती हैं। ऐसे समय मे दरवाजा खुलवाने का प्रसग आ सकता ह। उस दरवाजा खुलने मे भी यदि चुलिये वाला कपाट है तो उसे नही खुलवा सकता, क्योकि ऐसे कपाट मे हिंसादि का प्रसग रहता है।

दरवाजे या कपाट खुलवाने मे या तो कपाट खटखटायेंगे या फिर आवाज लगायेंगे, जिससे शयन करती हुई बहिनें जगेंगी, भोजनादि के लिये द्वार खोलेंगी। उस वक्त कई बहिनो को अटपटा भी लग सकता है। वह सोच सकती है कि साधु इस वक्त भिक्षा के लिये क्यों आया, साधु को भिक्षा के समय ही आना चाहिये। असमय भिक्षा के लिये आया देखकर, उसने जीवन के विषय मे भी शका उठ सकती है। ऐसे समय बहिने दरवाजा खोलने मे दुःख का अनुभव करेंगी और एकाकी बहिन के घर मे रहते साधु भिक्षा ग्रहण भी नही कर सकता। जबकि ऐसे समय पर एकाकी बहिन ही अधिक स्थानो पर मिलेगी। यह तो एक अपेक्षा है। इसी प्रकार अन्यान्य प्रसग भी उपस्थित हो सकते हैं। अन्य मतावलम्बियो के उपर भी कुप्रभाव पड सकता है। इसीलिये भगवान ने बतलाया कि "काले काले समायरे"। साधु जिस समय भिक्षा का काल हो उसी समय भिक्षा के लिये जावे। अर्थात् जिस समय घरो मे भोजन बनता है, उसी समय साधु को गोचरी के लिये घरो मे प्रवेश करना चाहिये। जिस समय ग्रहस्थो के घर मे भोजन बनता हो, उसका ज्ञान साधुओ को होने से वह यह जान जाता है कि ग्रहस्थ लोग मध्यान्ह मे भोजन करते है वे दिन मे एक समय भोजन बनाते है, तो साधु को वहा पर एक वक्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिये और जब मध्यान्ह मे भोजन कर लिया तो फिर सध्या मे भोजन की स्थिति नहीं रहती है। दशवैकालिक सूत्रगत "एगभत्त च भोयण" दिन मे एक वक्त भोजन करने वाले यह उपर्युक्त क्षेत्र, काल की अपेक्षा से समझना चाहिये। ऐसी अवस्था में साधु के दैनिक जीवन का कार्यक्रम भोजन के समय को देखकर बन जाता है। क्योकि उसे ज्ञान रहता है कि, तृतीय प्रहर में भोजन मिलेगा। जहा साधक शेषकाल या चातुर्मास मे रहता है, वहा भोजन से पहले के दो प्रहर का सयमानुष्ठान मे उपयोग करता है। इस दृष्टि से प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान करने के बाद तीसरे प्रहर में भिक्षा का प्रसग आता है। जिन क्षेत्रो में गृहस्थ के जीवन मे परिवर्तन आता है और प्रथम प्रहर में अल्पाहार आदि गृहस्थ ग्रहण करता है और मध्यान्ह के समय भोजन करता है, तो उन क्षेत्रो की दृष्टि से साधक भी "काले काले समायरे"—प्रभु के इस निर्देश से अपनी आवश्यकतानुसार प्रथम प्रहर में भी ग्रहस्थ के घर पर अल्पाहार आदि के लिये जा सकता है। क्योंकि वह अल्पाहार का काल है। उदाहरण के रूप में गुजरात के निवासी प्रायः भाई-बहन प्रथम प्रहर में नास्ता पानी लेते हैं, मध्यान्ह में भोजन करते हैं।

किसी अन्य प्रदेश मे प्रातः अल्पाहार, द्वितीय प्रहर मे भोजन बनता हो और मध्यान्ह में भोजन का कोई कार्यक्रम नही रहता हो, और फिर सध्या के समय तिविहार—चौविहार रखने वाले गृहस्थ सूर्यास्त के पहले भोजन करने की स्थिति मे हो तो साधु के लिये भी उस क्षेत्र की दृष्टि से तीनो समय भिक्षा का काल हो सकता है। आवश्यकतानुसार वह तीनो काल में भी

यदि भिक्षा के लिये जाता है तो वह "काने काले समायरे"—शास्त्रीय पाठ का उलघन नही करता । किन्ही की आवश्यकता तीन काल की न हो तो, वह एक या दो वार से भी अपना काम चला सकता है । यह सब साधक के उपर निभर है, किन्तु यह स्पष्ट है, कि तीन बार भिक्षा के लिये जाने वाला साधक भी भगवान की आज्ञा के अनुसार ही चलता है ।

जिज्ञासा हो सकती है कि साधु कभी दूसरे प्रहर और सध्या को ही गोचरी के लिये जावे—प्रात नही जाय तो क्या बाधा है? इसका समाधान यह है कि बाधा तो कुछ भी नही, दो-तीन बार जाना भी उसकी इच्छा पर निभर है । यदि वह तीन बार भी जाता है तो शास्त्रीय आज्ञा से विपरीत नही करता, क्योकि शास्त्रकारो ने साधु के लिय यह बतलाया कि साधु प्रथम प्रहर का आहार चतुथ प्रहर मे न ले—"जे ए निग्गथे वा जाव साइय पढमा पोरिसीए पडिगाहित्ता पच्छिम पोरिस उवायणावेत्ता आहार आहारेति एसए गोयमा । कालित्तिक्कते पाए भोयणे ।" भाग ७,२

यदि साधु को प्रथम प्रहर में लेने का ही प्रसग न होता तो प्रथम प्रहर का लाया आहार चतुथ प्रहर मे काम मे नही लेता, तो इस कथन की आवश्यकता नही थी । अत इस कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणवग प्रथम प्रहर मे आवश्यकतानुसार आहार ग्रहण करता है । उस प्रथम प्रहर में लाए हुए आहार में से अवशेष रह जाय तो चतुथ प्रहर के पहले-पहले काम में ले लेना चाहिये । इस विधान से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'एगभत्त च भोयण" यह पाठ त्रैकालिक नही है, किन्तु तत्कालीन और प्रादेशिक स्थिति से है ।

जिज्ञासु को यह भी जिज्ञासा हो सकती है कि आवश्यक सूत्र के अनुसार प्रथम प्रहर में आहार लेना शास्त्र से विपरीत नही है, तो चतुथ पहर मे आहार लेना शास्त्र सम्मत कैसे?

इसका समाधान यह है कि शास्त्रकारो न द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार साधक को दिन के समय भिक्षादि ग्रहण करने म कोई एकान्तिक नियम नही बताया है, वह कदाचित् विहार करता हुआ एक गाव से दूसरे गाव में जा रहा है, तो विहार में ही कभी एक या दो प्रहर व्यतीत हो जाते ह ता उस स्थिति मे प्रथम प्रहर को स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में ध्यान का प्रसग गौए बन जाता है । किन्तु आहार उसे करना ही होता है, अत उस समय यदि मर्यादा मे कोई दोष न लगता हो एव गृहस्थ वग में भी भ्रान्ति तथा साधु के प्रति अविश्वास पदा न होता हो तो दिन के किसी भी समय आहार ला सकता है । इस विषय में भगवती सूत्र शतक सात, उद्देशक एक में उल्लेख आया है—

"गोयमा ! जे ए निग्गथो वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असए-पाए-खाइम-साइम-अणुग्गत्ते सूरिए पडिग्गाहित्ता उग्गते सूरिये आहार आहारेति एस ए गोयमा खेतातिक्कति

पाण भोयणे ।"

उपयु क्त पाठ मे स्पष्ट उल्लेख है कि साधु सूर्योदय से पूव आहार ग्रहण करके, सूर्योदय के बाद आहार करता है तो वह क्षेत्रातिक्रान्त पान भोजन कहलाता है । यदि वह सूर्योदय के बाद मे आहार लाकर काम मे लेता है तो क्षेत्रातिक्रान्त दोप नही लगता ।

उपयु क्त पाठ से भी जिज्ञासा हो सकती है कि सूर्योदय से पूव साधु आहार कैसे लाता है ? समाधान यह है कि कभी पहले दिन साधु का आहार का सयोग नही मिला, लम्बा विहार भी हुआ, सूर्यास्त हो जाने से उस दिन आहार लाने का प्रसग नही आया और इधर दूसरे रोज फिर लम्बे विहार का प्रसग है । वैसी स्थिति मे बादल आदि होने से कभी साधु का सूर्योदय से पूव ही सूर्योदय की भ्रान्ति हो जाय और उसी भ्रान्ति मे वह सूर्योदय से २–४ मिनिट पहले गृहस्थ के घर से आहार–पानी ले आता है, काम मे लेने के लिये बैठ भी जाता है और इधर अचानक ही बादल बिखर गए तब उसे यह दिखलाई दे कि सूर्य अब उदय हो रहा है, तो उस लाये आहार को ग्रहण न करे, किन्तु योग्य स्थल पर परठ दे । ग्रहण करने पर क्षेत्रातिक्रान्त दोप लगता है ।

उपयु क्त कथन मे यह स्पष्ट होता है कि सूर्योदय होने के बाद लाया गया आहार ग्रहण करता है तो उसे दोप नही लगता है ।

अत मूल पाठ से यह फलित होता है कि प्रथम प्रहर में भी साधु आहार ग्रहण कर सकता है, जो कि भगवती सूत्र से प्रमाणित है ।

इसी प्रकार सध्या के समय भी कभी बादलो के कारण सूर्यास्त का ज्ञान नही हो पाया । सूर्यास्त में विलम्ब है । ऐसा समझकर आहार करने के लिये साधु बैठ गया । (आज की तरह पूव में घडिया के साधन उपलब्ध नही थे । आज भी सब जगह ये साधन उपलब्ध नहीं होते) इधर आकाश मे बादल या धूलि है और उसको ज्ञात हुआ कि सूर्यास्त हो रहा है तो साधक उसी समय मु ह का नवाला भी मु ह से निकाल ले तथा अवशेष आहार को विधिवत परठ कर सध्याकालीन प्रतिक्रमण में सलग्न हो जाय । यही विषय भगवती सूत्र मे मूलपाठ मे गौतम स्वामी की जिज्ञासा का समाधान करते हुये भगवान ने स्पष्ट किया है ।

अत स्पष्ट है कि साधक चतुर्थ प्रहर की समाप्ति के पहले-पहले आहार-पानी ग्रहण करता है वह आगम सम्मत है । इन प्रमाणों से यह भलि-भाति स्पष्ट है कि साधक अपनी आवश्यकतानुसार सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त के पहले-पहले आहारादि की गवेषणा और उपयोग कर सकता है ।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि साधु सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक निरन्तर आहार लाता

ही रहे ग्रौर खाता रहे । ऐसा करने वाला योग्य साधक नही होता । साधु ने ग्राहार-पानी के लिये साधु जीवन नही लिया है, किन्तु साधु जीवन की ग्राराधना के लिये ग्राहार-पानी लेता है । साधक ग्राहारादि की मात्रा का भी ज्ञाता होता है । इसलिये ग्राचाराग में साधु को "कालण्णे" के बाद "मायण्णे" भी कहा है ।

निष्कष यह है कि सयमी जीवन निर्वाह करने हेतु २४ घण्टो में कितना ग्राहार चाहिये । उस परिमाण को जानकर साधक को "काले-काले समायरे" के निर्देशानुसार ग्राहार को ग्रहण कर ग्रन्य समय का कायक्रम सयम साधना के लिये निर्धारण करना, साधु जीवन के लिये योग्य है । विहार के प्रसग पर, विहार के समय ग्रतिरिक्त दिन के समय का यथास्थान विभाग करके ग्राहारोपरान्त समय मे ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, वाचना, पृच्छना, ग्रनुप्रेक्षा, धमकथा ग्रादि साधना मे लग सकता है । रात्रि मे भी प्रतिक्रमण के पश्चात् तथा ग्रावश्यकतानुसार निद्रा के ग्रतिरिक्त समय मे साधना के लिये पर्याप्त समय मिल सकता है । ऐसे तो उभय कालीन प्रतिक्रमण भी साधना का ग्रग है । सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन किया जाय तो विवेकशील साधक के लिये चौबीस ही घण्टे साधना की श्रेणी मे ग्राते हैं ।

ग्रतएव "एगभत्त च भोयण" पाठ की बात को लेकर जो जिज्ञासा व्यक्त की है, उसका समाधान उपयु क्त मूल प्रमाणो से सुस्पष्ट है ।

जिज्ञासा —सुदशन श्रमणोपासक ने घर से ही प्रभु के दर्शन क्यो नही कर लिये, क्योकि प्रभु तो सवज्ञ-सर्वदर्शी थे ?

समाधान —यह सत्य है कि प्रभु सवज्ञ–सवदर्शी थे । वे सुदर्शन श्रमणोपासक के वन्दन को जान सकते थे, देख सकते थे । किन्तु सुदशन श्रमणोपासक प्रभु को नही देख सकता था । इसलिए वह प्रभु के दर्शन करने के लिये गया । यदि उस समय मे भी मूर्ति का बहुत प्रचलन होता, जैसा कि ग्राज देशवासियो मे देखा जाता है, तो सुदर्शन श्रमणोपासक के माता पिता उन्हे मूर्ति के दर्शन करके ग्रात्म सन्तुष्टि कर लो, ऐसा कह देते, लेकिन ऐसा नही कहा । क्योकि उस समय कोई भी प्रभु की मूर्ति नही थी । वैसे भी मूर्ति को कही भी शास्त्रो मे मोक्ष के लिए विधि रुप से उपयोगी नही बतलाया गया है ।

जिज्ञासा —ग्रर्जु नमालाकार के सामने, श्रेणिक सम्राट की विशाल सेना भी कुछ नही कर सकी, ऐसी स्थिति मे सुदशन श्रमणोपासक ने उसे कैसे परास्त किया ?

समाधान —शक्ति दो प्रकार की होती है । एक भौतिक शक्ति ग्रौर दूसरी ग्राध्यात्मिक शक्ति । ग्रजु नमाली के पास दविक सम्बन्धी भौतिक शक्ति थी । वह इतनी बलवान थी कि राजा की सेना भी उसका कुछ भी नही बिगाड सकती । किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक के पास ग्रात्मिक

रूप आध्यात्मिक शक्ति थी, जिसके सामन बडी से बडी भौतिक शक्ति भी झुक जाती है।

दशवैकालिक सूत्र मे स्पष्ट कहा है—

धम्मो मगलमुक्किट्ठं, अहिंसा सजमो तवो ।
देवा वि त नमसनि, जस्स धम्मे सयामणो ।।

अहिंसा, सयम, और तप रूप धम, मगल और उत्कृष्ट है। जिस किसी व्यक्ति का मन ऐसे धम मे लग जाता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

उस सुदशन श्रमणोपासक का मन धम म ओत-प्रोत था। उसके रग-रग मे प्रभु के प्रति पूर्ण आस्था समाहित थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह था कि मृत्यु का यमदूत, अजुनमाली से समस्त स्थान की ओर स वह सुदर्शन प्रभु के दशन करने के लिए रवाना हो गया।

जिसके मन म इतनी धम के प्रति आस्था होती है, उसम आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी शक्ति के सामन ससार की कोई भी भौतिक शक्ति नही टिक सकती।

कारण था कि सुदशन श्रमणोपासक के सामने भौतिक शक्ति नही टिक सकी।

जिज्ञासा — मुद्गरपाणि यक्ष ने अजुनमाली पर प्रसन्न होकर उसके सकट को समाप्त किया तो क्या भेरू-भवानी आदि देवो की आराधना करन से सकट समाप्त हो सकता है?

समाधान —भेरू-भवानी आदि देवो का वास्तविक स्वरूप समझ कर उसकी आराधना की जो विधि है, उसम एकावधानता ले आता है तो वह भेरू-भवानी आदि देव उसके सामने उपस्थित हो सकते है। पर आजकल जो कल्पित स्वरूप आम जनता मे प्रचलित है, वह वास्तविक भेरू-भवानी का नही है, क्योंकि देव योनि के जितने भी देव हैं उनके नाम चाहे कुछ भी हो, वे सभी वैक्रिय शरीर वाले होते हैं। वैक्रिय शरीर वाले देव इच्छित वक्रिय रूप बना सकते हैं, परन्तु सच्चे रूप मे देव सेना को प्राप्त नही कर सकते। जो वास्तविक देव नहीं हैं उनका देव कहना, मिथ्यात्व की परिधि मे आता है। मिथ्यात्वी पुरुष जब देव के स्वरूप को नही समझता तो उसका उनके आराधक की विधि भी ज्ञात नही हो पाती। अविदित विधि से यदि कोई व्यक्ति अव्यवस्थित रूप मे आराधना करता है और कभी काकतालीय की न्याय दृष्टि से कुछ हो जाता है तो वह, एक सयोग ही समझना चाहिये। ऐसा प्रसग आजकल कदाचित मिल भी सकता है। पर वह प्रयोग विधिवत नही है। यही कारण है कि आजकल भी देवो-देवताओ के नाम पर, भेरु-भवानी की बहुतेरी कल्पना चलती हैं, परन्तु उनकी भक्ति करने वाले को अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति प्राय नहीं वत् होती है। किन्तु वास्तविक देव की आराधना यहा विधि से की जाती है तो उसकी आराधना मे देव उपस्थित भी होता है। जैसे कि शान्तिनाथ भगवान की आत्मा, पहले चक्रवर्ती पद पर थी, उस चक्रवर्ती पद की पूर्ति हेतु देव आराधना से

लिये उनकी आत्मा ने तेले किये थे, तब देव उपस्थित हुआ था, और वह उनके कार्य मे सहायक भी हुआ। पर वह विधि अति कठिन होती है। आज का मानव उस प्रकार की विधि साधने मे प्राय अक्षम होता है। क्योकि तीन दिन तक अन्न पानी आदि समग्र खाने पीने की वस्तुओ का त्याग कर बाह्य जगत स दृष्टि को मोडकर निरतर तीन रोज तक एकावधानता के साथ देव आराधना करना प्राय अशक्य है।

अर्जुनमाली का जो प्रसग सामने है, वह एक सयोग ही कहा जा सकता है। क्योकि वैक्रिय शरीर मे रहने वाले यथार्थ देव जो चचल प्रकृति के हैं, वे अपनी पूजा–प्रतिष्ठा भी चाहते है, तथा वे तियकलोक मे भी समय–समय पर परिभ्रमण करते रहते हैं। आम जनता अन्धभक्ति से किसी को भी दव का कल्पित रूप बना कर पूजा–प्रतिष्ठा करने लगती है।

उस समय सयागवश कभी वह देव परिभ्रमण करता हुआ वहा आ गया, तो वह उस स्थान को अपने लिए प्रतिष्ठा का स्थान समझ कर उस पर अपना आधिपत्य रखने लगता है। वह आधिप य रखन वाला देव यदि शक्ति सपन्न है तो उस स्थान को अन्य के प्रतिष्ठा का स्थान नही बनने देता। लेकिन वह देव सदा उसी कथित स्थान पर ही रहता हो, यह आवश्यक नही है। परन्तु उस स्थान पर अन्य देव आधिपत्य न जमालें, इसका वह अदृश्य रह कर भी ध्यान रखता है।

अर्जुनमाली का जो प्रसग घटित हुआ, वह मन की अत्यधिक एकाग्रता का स्वरुप था और उस वक्त मुद्‌गरपाणि यक्ष की पूजा प्रतिष्ठा समाप्त होने ही वाली थी, कि देव का उपयोग इस ओर आकर्षित हुआ, तब देव ने अर्जुनमाली की सहायता कर दी। इससे यह फलित नही होता कि सवत्र ऐसा ही होता है।

जिज्ञासा —'अर्जुनमाली ने यक्षो माद मे कितने पुरुष एव स्त्रियो की हत्याए की ?'

समाधान —श्रेणिक चरित्र मे ऐसा बतलाया गया है कि अर्जुनमाली का यक्षो माद पाच मास तेरह दिनो तक रहा। एक दिन मे ६ पुरुष, एक स्त्री के गणित से अर्जुनमाली ने ११४१ व्यक्तियो का प्राणान्त किया। जिनमे ९७८ एव १६३ स्त्रिया थी।

जिज्ञासा — ११४१ प्राणियो की हत्या करके अर्जुनमाली ६ महिने की साधना मे ही मुक्तिगामी कैसे हा गया, जबकि पचेन्द्रिय घात, नरकायु का बधन कराने वाला है ?

समाधान —अर्जुनमाली के सामने जब असहनीय अत्याचार हो रहा था, उस वक्त उसके मन मे अनीति के प्रतिकार की तीव्र भावना बनी और वह उन सातो को समाप्त करना चाहता था। किन्तु वह परवश था। क्योकि ललिताग गोष्ठी ने उसे अवकोटक बधन से बाध रखा था। इसलिय उस वक्त, उनका, वह कुछ भी नही कर पाया। किन्तु मन मे आक्रोश चल

चल रहा था, उस अनीति का प्रतिकार करने के लिये उसने मन मे इतनी एकाग्रता बन गई कि जिसमे वह उस यक्ष के विषय मे भी कुछ विपरीत सोचने लगा। सयोगवश यक्ष भी अजुनमाली की इस स्थिति को समझ गया और वह उसकी भावना के अनुरूप मदद करने को तत्पर हो गया। यक्ष ने अपनी शक्ति का प्रयोग अजुनमाली की शक्ति के साथ सम्बन्धित किया। परिणामस्वरूप अजुनमाली की वह शक्ति कई गुणी अधिक बढ गई और उसने, उसी के परिणामस्वरूप, मुद्गर को उठा लिया और सातो प्राणियो का घात कर दिया। तदनन्तर अन्य हिंसाओ का प्रसग भी लम्बे समय तक चालू रहा।

प्रकरण मुख्यत अजुनमाली का है, क्योकि अनीति के प्रतिकार करने का सकल्प उसी मे जगा और उसने अपने सकल्प की शक्ति को यक्ष की मदद से साकार कर दिया। पर यह जो हिंसा थी वह मनुष्यो को मारने की भावना से नही थी, किन्तु अनीति का प्रतिकार करने के लिये अन्य कोई उपाय, उसके ध्यान मे नही था।

जब कोई पुरुष अनीति का प्रतिकार करता है, तब वह सकल्पी हिंसा का सहारा न लेकर विरोधी हिंसा का अवलम्बन लेता है। इस प्रकार के परिणामो मे दीर्घकाल निकाचित बधन की स्थिति नही बनती। अत नरकायु का बधन नही होता। कदाचित् कुछ बनतो भी है तो वह दीर्घकाल की नही अल्पकालीन होती है। यही कारण है कि दीक्षा लेने के पश्चात् लगभग छ मास मे ही अन्य कर्मों के साथ इस प्रकार मे सम्बन्धित कर्मो का क्षय कर अजुनमाली की आत्मा ने मोक्ष (सिद्धि) को वर लिया। रहा प्रश्न मुद्गरपाणि यक्ष का। मुद्गरपाणि यक्ष ने अनीति के प्रतिकार मे सहायता दी, इसमे विरोधी हिंसा का पाप तो यक्ष को भी लगा, परन्तु समग्र पाप यक्ष के भाग मे नही जाता है। जो मूल पाठ मे यक्ष का उल्लेख "तए ण ज मोग्गरपाणि जक्खे त पल सहस्स निप्फन्न अयोमय मोग्गर उल्लालेमाणे[2] जेणेव मुदसणे ' आता है, वह यक्ष की शक्ति की प्रधानता का द्योतक है, और शक्ति प्रदर्शन भी अपने भक्त की मदद के लिये किया था। अतएव मुख्यकर्ता अजुनमाली एव सहायककर्ता यक्ष था। यह विषय यद्यपि इस रूप से मूल पाठ मे स्पष्ट नही मिलता, फिर भी मूलपाठ से अविरुद्ध फलित होता है। यदि ऐसा अर्थ नही लिया गया तो कई विसगतिया आवेगी तथा अजुनमाली के मोक्ष प्राप्ति की स्थिति भी युक्तिसगत नही बैठ पायेगी। अगर यक्ष को प्राणियो का खात्मा करना था, तो वह अजुनमाली के सकल्प के पहले ही खत्म कर देता। वह अपनी वैक्रिय लब्धि से अन्य भी कार्य कर देता, पर यक्ष ने ऐसा नहीं किया। उसने तो अजुनमाली के सकल्प के अनुरूप सहायता की थी। यही कारण है कि अजुनमाली की सीमान्तगत ही यह कार्य चालू रहा।

जिज्ञासा हो सकती है कि पाप तो छ पुरुषो ने किया, बेचारी स्त्री ने क्या किया, जिससे कि उसे भी खत्म कर डाला गया वह तो बेचारी विवश थी और उन लोगो से कैसे बच पाती, उस पर तो बलात्कार किया गया था ? इसका समाधान यह है कि अर्जुनमाली के भीतर मे यह सकल्प भी जगा कि ये छ पुरुष तो दुष्ट है ही पर मेरी पत्नी भी निर्दोष नही रही । यदि इसमे पतिव्रत धर्म—सतित्व होता तो अपनी जिव्हा को खीच कर समाप्त हो सकती थी । पर जीतेजी इन दुष्टो के विषय का शिकार नही बनती । लेकिन इसने वैसा नही किया है । अत यह भी दोष की भागिनी है । रहा प्रश्न सात के अतिरिक्त नागरिक स्त्री पुरुषो का । अर्जुनमाली के मन मे उन नगर निवासियो के प्रति भी सकल्प चल रहा था । ऐसे पुरुषो का नगर निवासियो ने प्रतिकार नही किया और इन्हे पनपने दिया, यह इनकी प्रारभिक हरकत नही है, इसके पूर्व मे भी इन्होने अत्याचार किया है । इसलिये यह इतने अभ्यस्त है कि यक्ष मन्दिर मे भी अत्याचार करने मे नही चूके । इनको इतना अभ्यस्त बनने देना, तथा सशक्त प्रतिकार नही करना, यह जन एव जननायक का प्रकारान्तर से इस अत्याचार को पोषण देना है, इसलिए ये भी अपराधी है । उनको दण्ड देना भी उसने सकल्पित कर लिया था, अतएव उनको भी समाप्त करने का प्रयास चालू रहा ।

जिज्ञासा —"पाण" से क्या लेना चाहिए ?

समाधान —"पाण" से केवल पानी लेना चाहिए । दुग्धादि पेय पदार्थ पानी मे नही लिए जा सकते । क्योकि वे अन्न की तरह पुष्टिकारक होते है, अत वे असण मे लिए जाते है ।"

सत्तमो वग्गो सप्तम वर्ग

उत्थानिका

सातवें वग मे तेरह अध्ययन बतलाए गये है ।

तेरह ही अध्ययन तेरह रानिया के नाम म हैं ।

उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था, गुणशील नामक बगीचा था। नगर का सम्राट श्रेणिक था। वे तेरह ही रानिया, राजा श्रेणिक की पत्निया थी। श्रमण भगवान महावीर का उपदेश श्रवण कर सभी को वैराग्य हो गया। सम्राट श्रेणिक से आज्ञा प्राप्त कर पद्मावती रानी की तरह सभी रानिया ने सयम जीवन अगीकार किया। सामायिक आदि ग्यारह अगा का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे सभी ने कर्मों का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

सत्तमो वग्गो सप्तम वर्ग

1-13 अध्ययन

नन्दा-नन्दवती आदि—साधना से सिद्धि तक

96– जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

'हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के छट्ठे वग का जो अथ बताया, उसे मैंने श्रवण किया । उन्ही मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने सातवे वर्ग का क्या अथ फरमाया है ?'

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

सगहणी गाहा—

1 नदा तह, 2 नदवई, 3 नदुत्तर, 4 नदिसेणिया चेव । 5 मरूत्ता, 6 सुमरूत्ता, 7 महामरुत्ता, 8 मरूदेवा य अट्ठमा ॥1॥
9 भद्दा य, 10 सुभद्दा य, 11 सुजाया, 12 सुमणाइया । 13 भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइ ॥2॥

आय सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—
हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सून के सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन फरमाये हैं—
उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ नदा, २ नदवती, ३ नदोत्तरा, ४ नदश्रेणिका, ५ मरुता, ६ सुमरुता, ७ महामरुता, ८ मरुद्देवा, ९ भद्रा १० सुभद्रा, ११ सुजाता, १२ सुमनायिका १३ भूतदत्ता ।

जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स ण भते !

'हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के सातवें वग के तेरह अध्ययन बतलाए है, तो हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन मे प्रभु ने

अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, वण्णश्रो। तस्स ण सेणियस्स रण्णो नदा नाम देवी होत्या—वण्णश्रो। सामी समोसढे, परिसानिग्गया। तए ण सा नदा देवी इमीसे कहाए[51] लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाण दुरुहइ। जहा पउमावई जाव एकारस अगाइ अहिज्जित्ता वीस वासाइ परियाश्रो जाव सिद्धा।

एव तेरस वि देवीश्रो नदा-गमेण नेयव्वाश्रो।

।। सत्तमो वग्गो सम्मत्तो ।।

क्या फरमाया है ?'

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था, गुणशील नामक बगीचा था श्रेणिक राजा राज्य करता था। उस श्रेणिक राजा के सर्वगुण सपन्न नदा नाम की महारानी थी। एक बार नगर में श्रमण भगवान महावीर पधारे। नगर निवासी दर्शनार्थ प्रभु की सेवाम पहुँचे। नदा महारानी भी इस वृत्तान्त का श्रवण कर बहुत प्रमुदित हुई। अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। उन्हें रथ सजाने का आदेश दिया। पचम वग मे वर्णित पद्मावती रानी की भाति प्रभु की सेवा मे उपस्थित हुई। समवसरण की रचना हुई। प्रभु ने उपदेश दिया। उपदेश श्रवण कर प्रमुदित होती हुई जनता अपने स्थान को लौट गई। पद्मावती रानी की तरह ही प्रभु का उपदेश श्रवण कर इन्हे भी वैराग्य उत्पन्न हो गया। प्रभु के पास पद्मावती की तरह दीक्षा अगीकार कर ली। ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया, अन्त मे सलेखना सथारा द्वारा सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की। नन्दावती आदि १३ राजरानियों का वर्णन भी नदा देवी की तरह ही जानना चाहिये।

।। सप्तम वर्ग समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —सथारा करना क्या आत्म-हत्या नही है ?

समाधान —वीतराग देव की आज्ञानुसार विधिवत् सथारा करना आत्म-हत्या नही, बल्कि आत्मरक्षा है । विधिवत सथारे से तात्पय यह है कि जिसको निश्चय ज्ञानियो के माध्यम से यह ज्ञान हो जाय कि मेरी आयुष्य इतनी ही है । ऐसी अवस्था मे वह चिन्तन करता है कि आयुष्य के समाप्त होते ही यह आत्मा अवश्य शरीर से विलग होने वाली है । इस शरीर के सरक्षण का फल आत्मशुद्धि मे नियुक्त करना है । किन्तु शरीर आयुष्यबलप्राण पर निभर है । आयुष्यबलप्राण की अवधि आते ही, इस शरीर को तो अवश्य छोडना होगा । इसको आयु की अवधि तक बलवान रखे तब भी जायगा, और कृश बनाए तब भी जाएगा । बलवान रखने पर आत्मा की शुद्धि जितनी होनी चाहिए वह नही हो पाएगी । यदि इस शरीर को आत्मा की सु शुद्धि के लिए विधिवत नियोजित कर दिया जाय तो शरीर कृश अवश्य होगा, पर आत्मा की मशुद्धि हो जाने से आत्मा के आवृत गुण, अनावृत होने लगेंगे । मतएव इस शरीर से आत्मा के अधिक गुण प्रकट कर लेना सवथा उपयुक्त है । इस हेतु, विधिवत् सलेखना स्वीकार करके चलने वाला साधक कपाय को कृश बनाने के साथ साथ शरीर को भी कृश बनाता है । सिफ शरीर को ही कृश बनाने का उद्देश्य नही रहता । पर शरीर के माध्यम से कपाय को कृश करना, प्रमुख हेतु है । अतएव कपाय की कृशता का सम्बन्ध शरीर की स्थिति के साथ भी जुडा हुआ है । अत कपाय को कृश करने के लिये सलेखना की जाती है । इस प्रकार की साधना करते हुए, जब आयुष्य के क्षण सन्निकट आ गए हो, ऐसी निर्धारित जानकारी के आधार पर साधक सोचता है कि यथाशक्ति इस शरीर से जितना काम लेना शक्य था, लिया जा चुका है । अब यह अमुक समय के पश्चात् आयुष्य की समाप्ति के साथ समाप्त होने वाला है । अब इससे आत्मशुद्धि सम्बन्धी विशेप लाभ होने वाला नही है । अत जिस रत्नत्रय की अभिवृद्धि के लिये इसको धारण कर रखा था, उस अभिवृद्धि के हेतु जो शरीर धारण करने की भावना थी, वह भावना भी एक दृष्टि से उस शरीर के ग्रहण की थी । हालाकि उसमे आसक्ति के अश को भी निवृत करन का प्रयास था, पर जो ज्ञान, दशन, चारित्र के हेतु, प्रसस्त राग के अन्तर्गत, शरीर राग का जो सम्बन्ध है, उसको जाग्रत अवस्था मे, पूण सावधानी के साथ परित्याग कर लेने पर आत्मा के गुणो का इस शरीर के माध्यम से अधिक विकास का प्रसग बनता है ।

उस गुण विकास को लक्ष्य मे रखते हुए सथारा ग्रहण किया जाता है । वह आत्म हत्या

नही किन्तु आत्म सरक्षण है। आत्महत्या तब मानी जाती, जबकि कलुषित भावना के साथ शरीर को छोडा जाता है। उस अवस्था मे शरीर छोडने मे तो कोई विशेष अन्तर नही रहता पर कलुषित भावो म जितने भी आत्मा के विपरीत गुण हैं, व पाप कर्म के बधन स आयत हो जाते हैं। ऐसे प्रसग पर प्राय कलुषित भाव की तीव्रता होती है। उसमे कर्म बन्धन भी निकाचित होने का प्रसग रहता है, निकाचित-कर्म बधन के रूप मे आत्मा के गुणो को दबाने रूप घात होने मे ऐसी मृत्यु, आत्महत्या की कोटि मे आती है, किन्तु सथारा इसस सर्वथा भिन्न है।

सथारा के समय म कलुषित भाव नही होते, बल्कि अकलुषित प्रशस्त भाव होते हैं, उसम भी जो शरीर के साथ रत्नत्रय हेतु टिकाने का प्रशस्त रागाश है, वह भी उस समय निवृत्त होता है। उस निवृत्ति म आत्मिक गुणो के विकास का जो स्वरूप है, वह कर्मों के कटने से है। अतएव वह आत्महत्या नही, आत्म सरक्षण है। उस अवस्था म पूर्व के राग-द्वेष युक्त बर्ताव का भी शमन होता है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव की साधना बढती है। इसलिये इस सथारे रूप आत्म सरक्षण को प्रकाश के तुल्य कहा जा सकता है, किन्तु इस विधि से शून्य कलुषित भाव के साथ शरीर को छोडना परिपूर्ण अधकार के तुल्य है।

यह प्रसग निश्चय ज्ञानी के द्वारा निर्धारित आयुष्य का विवेक है। पर जिस समय कोई निश्चय ज्ञानी न हो एव श्रुतज्ञान के बल पर सयम आराधना की जा रही हो, उस समय भी सथारा का प्रसग उपस्थित हो तो वैसी स्थिति म उसका आयु की परिसमाप्ति का निश्चित ज्ञान नही होने से सथारा करना, क्या उपर्युक्त सथारे की कोटि म गिना जाएगा? प्रश्न समीचीन है। इस विषयक उत्तर के परिप्रेक्ष्य मे साधको का चिन्तन का अवकाश लेना चाहिये।

साधक, सम्यक् श्रुतज्ञान के सहारे, साधनारत है तो उस साधना के क्षेत्र का एव शारीरिक अवस्थान का भी निरीक्षण-परिक्षण करते रहना चाहिये। साधना करते हुये जब साधक को लगे कि मेरे शरीर म कोई व्याधि नहीं है और न इस शरीर का रत्नत्रय के हेतु प्राण सरक्षण के कारणभूत प्रासुक पदार्थों की ही कमी है। इतना सब कुछ होते हुए भी शरीर दिन प्रतिदिन कमजोर होता हुआ चला जा रहा है और न रत्नत्रय की आराधना हेतु विशेष सत्पुरुषार्थ कर पा रहा हूँ न ही अन्य साधको की सेवा म योगदान दे पा रहा हूँ, बल्कि अन्य साभोगिक साधकों से सेवा ले रहा हूँ। यह मेरे लिये एक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

सेवा करने की तो भावना रहती है न कि सेवा लेने की। पर क्या किया जाय? ऐसी परिस्थिति मे वह स्वय श्रुतबल के आधार पर अनुमान लगाने मे सक्षम हो अथवा अपने अनुमानित विचारो की पुष्टि हेतु शरीर विज्ञानवेत्ताओं से परामर्श कर ले। साथ ही उस समय

मे विराजमान अपेक्षाकृत कोई विशिष्ट श्रुतधर हो और वे इन समग्र विधियो के विज्ञाता लगें तो उनसे भी अपने विचारो की पुष्टि कर लें। इन समग्र परिस्थितियो मे उनका अनुमान एक ही रूप मे फलित एव पुष्ट हा तो सलेखना की विधि अपनावें। सलेखना मे आगे बढने पर सिहावलोकन की तरह अपनी साधनागत तारतम्यता को तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करे, तब उसको लगे कि पूव की अपेक्षा से इस सलेखना के माध्यम से कापायिक शरीर कृश होता हुआ चला जा रहा है और यह शरीर भी प्राय अशक्त एव मृत्यु के सन्निकट पहुँच गया है तब पुन शरीरविज्ञानवेत्ताओ स, मुनिराज श्रुतधर से परामश लें। ऐसी अवस्था मे उसे लगे कि यह शरीर अधिक समय तक रहने वाला नही है, तब वह साधक समभाव से सबसे क्षमायाचना के साथ सथारा ग्रहण कर सकता है। अनुमान कभी गलत सिद्ध न हो जाय इस आशका से कदाचित् विशिष्ट व्यक्ति विशेष का आगार भी रखा जा सकता है। एसा सथारा भी आत्म सरक्षण का हेतु बनता है। आत्म हत्या का नहीं।

व्याधि आदि परिस्थिति मे तो सागारिक सथारा ग्रहण करना ही विशेष लाभप्रद कहा जा सकता है, किन्तु इस प्रकार के विवेक विज्ञान से विकल होकर भावावेश या कलुपित भावना स शरीर परित्याग का उपक्रम, विधिवत सथारो की श्रेणी मे कसे आ सकता है? अर्थात नही आ सकता।

अट्ठमो वग्गो अष्टम वर्ग

उत्थानिका

सातवें वर्ग की विवेचना के अनन्तर क्रम प्राप्त आठवें वर्ग का विवेचन आता है। आठवें वर्ग में दस अध्ययन दस रानियों के नाम से बतलाए गए हैं।

ये दसों महारानियां श्रेणिक राजा की धर्म पत्नियां थीं। दसों महारानियों ने नन्दा देवी की तरह प्रभु महावीर के सान्निध्य में संयम जीवन स्वीकार किया। दसों रानियों के संयम जीवन लेने का कारण इस प्रकार है—

एक बार चरम तीर्थंकर सर्वज्ञ–सर्वद्रष्टा प्रभु महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक बगीचे में पधारे। भगवान के चरणों में काली आदि दसों रानियां उपस्थित हुईं। विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार कर उन्होंने प्रभु से निवेदन किया—

"भगवन्! हमारे पुत्र जो युद्ध में गए हुए हैं, उन्हें हम सकुशल लौटते हुए देख सकेंगी?"

अगम्य ज्ञानी प्रभु ने जिज्ञासा का समाधान दिया—"देवियो! तुम्हारी यह कामना अब पूर्ण नहीं हो सकती। तुम्हारे दसों पुत्र युद्ध में काम आ चुके हैं। महाराजा चेटक के द्वारा उनका प्राणान्त कर दिया गया है।"

इस दुःखद घटना को सुनते ही महारानियों को अत्यन्त वेदना हुई। पुत्र वियोग जन्य दुःख में विलाप-रुदन करने लगीं, किन्तु वीतराग महाप्रभु के ज्ञानोपदेश ने उनके मोहान्धकार को चीर कर ज्ञान का अभिनव आलोक प्रदान किया। परिणामस्वरूप सभी ने संसार से विरक्त होकर संयम जीवन स्वीकार कर लिया।

सभी ने विभिन्न प्रकार का तप कर्म किया। कई वर्षों तक संयम पर्याय का पालन किया, अन्त में सभी कर्मों का क्षय करके सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

क्र. सं.	नाम	संयम पर्याय वर्ष	विशेष तप
१	काली देवी	आठ	रत्नावली तप
२	सुकाली देवी	नव	कनकावली तप
३	महाकाली देवी	दस	लघुसिंह निष्क्रीडित तप
४	कृष्णा देवी	[illegible]	महासिंह निष्क्रीडित तप
५	[illegible]	[illegible]	सप्त-सप्त, अष्ट-अष्ट, नव-नव, भिक्षु प्रतिमा तप

क स	नाम	सयम पर्याय वप	विशेप तप
६	महाकृष्णा देवी	तेरह	लघुसवतोभद्र तप
७	वीरकृष्णा देवी	चौदह	महासवतोभद्र तप
८	रामकृष्णा देवी	पन्द्रह	भद्रोतर नामक तप
९	पितृसेनकृष्णा देवी	सौलह	मुक्तावली तप
१०	महासेनकृष्णा देवी	सत्रह	ग्रायबिल वघमान तप

इसके ग्रतिरिक्त ग्रौर भी ग्रनेक प्रकार की उपवास, वेला ग्रादि तपश्चर्याए की ।

—

अट्ठमो वग्गो अष्टम वर्ग

उत्थानिका

सातवें वग की विवेचना के अनन्तर क्रम प्राप्त आठवें वग का विवेचन आता ह । आठवे वग मे दस अध्ययन दस रानियो के नाम से बतलाए गये है ।

य दसो महारानिया श्रेणिक राजा की धम पत्निया थी । दसा महारानियो ने नन्दा देवी की तरह प्रभु महावीर के सान्निध्य मे सयम जीवन स्वीकार किया । दसो रानियो के सयम जीवन लेने का कारण इस प्रकार है—

एक बार चरम तीर्थंकर सवज्ञ-सवद्रष्टा प्रभु महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक बगीचे मे पधारे । भगवान के चरणो मे काली आदि दसो रानिया उपस्थित हुई । विधिपूवक वन्दन-नमस्कार कर उन्होन प्रभु से निवेदन किया—

"भगवन ! हमारे पुत्र जो युद्ध मे गए हुए है, उन्हे हम सकुशल लौटते हुए देख सकगी ?"

अगम्य ज्ञानी प्रभु न जिज्ञासा का समाधान दिया—'देवियो ! तुम्हारी यह कामना अब पूण नही हो सकती । तुम्हारे दसो पुत्र युद्ध म काम आ चुके है । महाराजा चेटक के द्वारा उनका प्राणान्त कर दिया गया है ।"

इस दु खद घटना को सुनते ही महारानियो को अत्यन्त वेदना हुई । पुत्र वियोग जन्य दु ख से विलाप-रुदन करन लगी, किन्तु वीतराग महाप्रभु के ज्ञानोपदेश ने उनके मोहान्धकार को चीर कर ज्ञान का अभिनव आलोक प्रदान किया । परिणामस्वरूप सभी ने ससार से विरक्त होकर सयम जीवन स्वीकार कर लिया ।

सभी न विभिन्न प्रकार का तप कम किया । कई वर्षों तक सयम पर्याय का पालन किया, अन्त मे सभी कर्मों का क्षय करके सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

क्र स	नाम	सयम पर्याय वष	विशेष तप
१	काली देवी	आठ	रत्नावली तप
२	सुकाली देवी	नव	कनकावली तप
३	महाकाली देवी	दस	लघुसिंह निष्क्रीडित तप
४	कृष्णा देवी	ग्यारह	महासिंह निष्क्रीडित तप
५	सुकृष्णा देवी	बारह	सप्त-सप्त, अष्ट-अष्ट, नव-नव, दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमातप

क्र स	नाम	सयम पर्याय वप	विशेप तप
६	महाकृष्णा देवी	तेरह्	लघुसवतोभद्र तप
७	वीरकृष्णा देवी	चौदह्	महासवतोभद्र तप
८	रामकृष्णा देवी	पन्द्रह्	भद्रोतर नामक तप
९	पितृसेनकृष्णा देवी	सौलह्	मुक्तावली तप
१०	महासेनकृष्णा देवी	सत्रह्	ग्रायबिल वघमान तप

इसके ग्रतिरिक्त ग्रार भी ग्रनेक प्रकार की उपवास, बेला ग्रादि तपश्चर्याए की ।

अट्ठमो वग्गो   अष्टम वर्ग

प्रथम अध्ययन—काली

97 जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

हे भगवन् ! मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाक सूत्र के सातवें वग का यह अर्थ प्रतिपादित किया, तो आठवें वर्ग का क्या अर्थ बतलाया है ? तब आर्य सुधर्मा ने फरमाया—

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । तजहा—

हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के आठवें वग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये ह । जैसे—

सगहणी गाहा—

1 काली, 2 सुकाली, 3 महाकाली, 4 कण्हा, 5 सुकण्हा, 6 महाकण्हा। 7 वीरकण्हा य बोधव्वा, 8 रामकण्हा तहेव य । 9 पिउसेणकण्हा नवमी दसमी, 10 महासेणकण्हा य ।।1।।

१—काली, २—सुकाली, ३—महाकाली, ४—कृष्णा, ५—सुकृष्णा, ६—महाकृष्णा, ७—वीरकृष्णा, ८—रामकृष्णा, ९—पितृसेनकृष्णा १०—महासेनकृष्णा ।

जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भते ! अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

हे भगवन् ! प्रभु ने आठवें वग के दस अध्ययन बतलाए है, तो भगवन् ! प्रभु ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?

एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए । तत्थ ण चपाए नयरीए कोणिए राया वण्णओ । तत्थ

हे जम्बू ! उस काल उस समय म चम्पा नामक नगरी थी । पूर्णभद्र नामक उद्यान था । चम्पा नगरी के कोणिक राजा राज्य करते थे । उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा

ण चपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लकमाउया काली नाम देवी होत्था वण्णग्रो। जहा नदा जाव सामाइयमाइयाइ एक्कारस ग्रगाइ ग्रहिज्जइ। वहूहि चउत्थ[1] जाव^A ग्रप्पाण भावेमाणे विहरइ।

की पत्नी, कोणिक राजा की छोटी माता काली नामक रानी थी।

नन्दा महारानी की तरह काली रानी ने भी श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर सामायिक ग्रादि ग्यारह ग्रगो का ग्रध्ययन किया। ग्रनेक उपवास, बेले ग्रादि तपश्चर्या करती हुई विचरण करने लगी।

काली आर्या द्वारा रत्नावली तप की आराधना

98 तए ण सा काली ग्रज्जा ग्रण्णया कयाइ जेणेव ग्रज्जचदणा ग्रज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी—

एक दिन काली ग्रार्या, ग्रन्य किसी समय मे जहा पर चन्दनवाला नामक ग्रार्या थी, उधर ग्राती है, ग्राकर इस प्रकार कहन लगी—

"इच्छामि ण ग्रज्जाग्रो! तुब्भेहि ग्रब्भणुण्णाया समाणी रयणावलि तव उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए।"

हे ग्रार्या प्रवर! ग्रापकी ग्राज्ञा प्राप्त होने पर म रत्नावली नामक तप स्वीकार कर विचरण करना चाहती हूँ।

ग्रहासुह देवाणुप्पिए! मा पडिबध करेहि।

चन्दनवाला ग्रार्या ने कहा—ह भद्रे! जैसी तुम्हारी ग्रात्मा को सुख हो, वैसा करो। शुभ कार्य मे किंचित् मात्र भी विलम्ब मत करो।

तए ण सा काली ग्रज्जा ग्रज्जचदणाए ग्रब्भणुण्णाया समाणी रयणावलि तव उवसपज्जित्ता ण विहरइ, तजहा—

चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ 2 त्ता। छट्ठ करेइ, करेत्ता

तदनन्तर काली ग्रार्या, चन्दनवाला ग्रार्या की ग्राज्ञा को प्राप्त कर रत्नावली तप करती हुई, विचरण करने लगी। जैसे—एक उपवास करती है, करके सब प्रकार के दुग्धादि रसो से पारणा करती है। पारणा करती वेला करती है। सब प्रकार के रस से पारणा करके तेला करती है, सब प्रकार के

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठ छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउवीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छव्वीसईम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय

रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके आठ बेले करती है, सब प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, फिर उपवास करती है उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके तेला करती है, तेला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके चोला करती है चोला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके पचोला करती है, पचोला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके छ उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सभी प्रकार के रस युक्त, भोजन से पारणा करती है, पारणा करके आठ उपवास करती है आठ उपवास करके सब प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके नव उपवास करती है, नव उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके दस उपवास करती है, दस उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके ग्यारह उपवास करती है, ग्यारह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है पारणा करके बारह

पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोत्तीस छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छव्वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउवीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता

उपवास करती है, बारह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती ह, पारणा करके तेरह उपवास करती है, तेरह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके चौदह उपवास करती है, चौदह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके पन्द्रह उपवास करती है, पन्द्रह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके सोलह उपवास करती है, सोलह उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ३४ बेले करती है, फिर सोलह उपवास करती है, सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा किया, पारणा करके १५ उपवास करती है, पन्द्रह उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १४ उपवास करती है, १४ उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १३ उपवास करती है, १३ उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १२ उपवास करती है, १२ उपवास करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके ११ उपवास करती है, ११ उपवास करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके १० उपवास करती है, १० उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ६ उपवास करती है, नव

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठ छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता।

उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ८ उपवास करती है, आठ उपवास करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके ७ उपवास करती है, ७ उपवास करके सभी रसो से पारणा करती है, पारणा करके ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके सभी रसो से पारणा करती है, पारणा करके ५ उपवास करती है, ५ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है पारणा करके ४ उपवास करती है, पारणा करके ३ उपवास करती है, ३ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है। पारणा करके २ उपवास करती है, २ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है, पारणा करके एक उपवास करती है, उपवास करके सब रसो से पारणा करती है, पारणा करके आठ बेले करती है। आठ बेले करके सब प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है करके तेला करती है। तेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है।

एव खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी एगेण सवच्छरेण तिहि मासेहि बावीसाए य अहोरत्तेहि अहासुत्त जाव^ आराहिया भवइ।

यह रत्नावली तप कर्म की पहली परिपाटी है। जो एक वर्ष, तीन मास, बावीस दिनो मे सूत्रानुसार आराधित होती है।

99—तयाणतर च ण दोच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करेत्ता विगइवज्ज पारेइ। छट्ठ करेइ,

एक परिपाटी करने के बाद दूसरी परिपाटी करती है। उस परिपाटी मे उपवास करती है, करके विकृति—दधि, दुग्ध, घी, तेल,

करेत्ता विगइवज्ज पारेइ । एव जहा पढमाए परिवाडीए तहा बीयाए वि, नवर—सव्वपारणए विगइवज्ज पारेइ जाव^ आराहिया भवइ ।

दही, मीठा छोडकर पारणा करती है । पारणा करके दो उपवास करती है, करके विकृति, वज भोजन से पारणा करती है, पारणा करके बेला करती है प्रथम परिपाटी की तरह तेले आदि करती ह, पारणे मे सभी रसो स रहित भोजन करती ह, प्रथम परिपाटी की तरह ही दूसरी परिपाटी करती है। यह परिपाटी भी एक वष, तीन मास, बाईस दिन मे आराधित होती ह ।

तयाणतर च ण तच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करेत्ता अलेवाड पारेइ । सेस तहेव । नवर—अलेवाड पारेइ ।

इसके बाद तीसरी परिपाटी मे उपवास करती है, करके अलेपकृत—जिस भोजन मे घी, तल आदि का लेप न हो ऐसे भोजन से पारणा करती है । आगे के तप,प्रथम परिपाटी के अनुसार जानने चाहिये ।

एव चउत्था परिवाडी । नवर सव्वपारणए आयबिल पारेइ । सेस त चेव ।

इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी समझ लेनी चाहिये । अन्तर केवल इतना ही है कि पारणे मे आयम्बिल तप करती है । शेष पहली परिपाटी के अनुसार जानना चाहिये ।

सगहणी गाहा—
पढमम्मि सव्वकाम पारणय बिइयए
विगइवज्ज ।
तइयम्मि अलेवाड आयबिलमो
चउत्थम्मि ॥1॥

प्रथम परिपाटी मे दुग्ध, घी आदि सभी रसो से पारणा किया जाता है । दूसरी परिपाटी मे रसा रहित पारणा किया जाता है । तीसरी परिपाटी मे लेप रहित भोजन से पारणा किया जाता है । चौथी परिपाटी मे पारणे मे आयम्बिल किया जाता है ।

तए ण सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्म पचहि सवच्छरेहि दोहि य मासेहि अट्ठावीसाए य दिवसेहि अहासुत्त जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचदण

वह काली आर्या रत्नावली तप कम का पाच वप, दो मास, अट्ठाईस दिनो मे यथासूत्र विधि के अनुसार पूर्ण करती है, पूर्ण करके वह आर्या चन्दनबाला जी के पास आती है, आकर के आर्या प्रवर चन्दनबाला महासती को वन्दन—नमस्कार करती है, करके उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार, पाँच उपवास आदि तपस्या से अपनी

अज्ज वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है।

काली आर्या को मोक्ष प्राप्ति

100—तए ण सा काली अज्जा तेण उरालेण जाव[A] धमणिसतया जाया यावि होत्था। से जहा इगालसगडी वा जाव[B] सुहुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेण, तेएण तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोहेमाणी—उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

वह काली आर्या इस उदार तप की आराधना से जिसकी धमनिया प्रत्यक्ष दिखलाई देने लगती है, शरीर—अस्थियो का पिंजर मात्र बन गया था। जिस प्रकार कोयलो की गाडी चलने पर कड-कड की आवाज करती है, उसी प्रकार उठते—बैठते महासती की हड्डिया कड-कड का शब्द करने लगी। महासती जी भस्माच्छादित अग्नि के समान तप—तेज की शोभा से अत्यन्त उपशोभित हो रही थी।

तए ण तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता—वरत्तकाले अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे[52] बले वीरिए[53] पुरिसक्कार-परक्कमे तावता[55] मे सेय कल्ल जाव[C] जलते अज्जचदण अज्ज आपुच्छित्ता अज्जचदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए सलेहणा—झूसणा—झूसियाए भत्तपाण—पडियाइक्खियाए काल अणवकखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहेत्ता कल्ल जेणेव

किसी दिन उस काली आर्या को अध-रात्रि के समय मे एक विचार उत्पन्न हुआ, भगवती सूत्र में वर्णित स्कदक अनगार की तरह चिन्तन करने लगी कि मेरा शरीर तपश्चर्या के कारण कृश हो गया, तथापि मेरे मे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम, श्रद्धा, धृति, सवेग विद्यमान है। अत मुझे सूर्य—उदय होते ही आर्या चन्दनबाला जी से पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त कर सलेखना सेवन से सेवित हो, अन्न जल का परित्याग कर, मृत्यु की आकाक्षा नही करती हुई जीवन व्यतीत करू। इस प्रकार विचार करती है, विचार करके सूर्योदय होने पर जहा आर्या चन्दनबाला महासती जी थी, वहा पर आती है, आकर के वन्दन—नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार

अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचदण अज्ज वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी- इच्छामि ण अज्जो ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी सलेहणा जाव विहरित्तए । अहासुह ।

करके इस प्रकार कहने लगी—

आर्या प्रवर ! आपकी आज्ञा होने पर मैं सलेखना सथारा द्वारा अन्न-जल का परित्याग कर मृत्यु की अकाक्षा किये विना जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ ।

आर्या चन्दनबाला जी ने कहा—

जैसा तुम्हे सुख हो, वैसा करो किन्तु शुभ काय मे किंचित मात्र भी प्रमाद मत करो ।

आर्या चन्दनबाला जी की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर काली आर्या सलेखना-सथारा से युक्त होकर विचरण करने लगती है ।

सूत्रानुसार रत्नावली तप यन्त्र
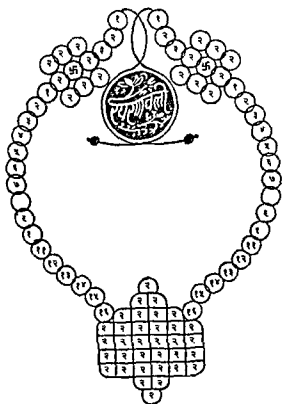
तपस्या काल
एक परिपाटी का काल १ वर्ष, ३ मास, २२ दिन
चार परिपाटी का काल ५ वर्ष, २ मास, २८ दिन

तप के दिन
एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष,—२४ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ४ वर्ष, ३ मास, ६ दिन

पारणा
एक परिपाटी के पारणे ८८
चार परिपाटी के पारणे ३५२

तए ण सा काली अज्जा अज्जचदणाए अब्भणुण्णाया समाणी सलेहणा[56]–झूसणा–झूसिया जाव विहरइ। तए ण सा काली अज्जा अज्जचदणाए अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ अट्ठ सवच्छराइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ, नग्गभावे जाव चरिमुस्सासेहि सिद्धा। निक्खेवग्रो।

उस काली आर्या ने चन्दनबाला जी के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। पूरे आठ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। एक मास की सलेखना से आत्मा का शोधन कर, साठ भक्त अनशन का छेदन करके जिस उद्देश्य के लिए साध्वी बनी थी, उस उद्देश्य को अर्थात् सिद्ध स्वरूप, चरम श्वासोच्छ्वास की समाप्ति के साथ प्राप्त कर लिया।

अतकृद्दशाग सूत्र के अष्टम वर्ग का प्रथम अध्ययन श्रवण करा कर सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे—मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के अष्टम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह सार बतलाया है।

द्वितीय अध्ययन—सुकाली

सुकाली द्वारा कनकावली तप की आराधना

101— तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ ण सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नाम देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खता जाव[A] बहूहिं जाव[B] तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

अष्टम वग के प्रथम अध्ययन का अर्थ श्रवण करने के अनन्तर, जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन्! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है?

आय सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

हे जम्बू! उस काल उस समय मे चपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक बगीचा था। कौणिक राजा राज्य करता था। उस नगर मे श्रेणिक राजा की पत्नी, कोणिक राजा की छोटी माता, सुकाली नाम का देवी भी निवास करती थी। जिस प्रकार काली देवी ने सयम जीवन अगीकार किया, उसी प्रकार सुकाली देवी ने भी किया। सयम जीवन अगीकार करके, बहुत से उपवास, बेले आदि तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।

एस ण सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचदणा अज्जा जाव[C] इच्छामि ण अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्म उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए! एव जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवर—तिसु ठाणेसु अट्ठमाइ करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइ। एक्काए

वह सुकाली आर्या अन्य किसी समय आर्या चन्दनबालाजी जहा स्वय विराजमान थी, उधर आती है, आकर के कहने लगी—आर्या प्रवर! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं कनकावली नामक तप कम स्वीकार करके विचरण करना चाहती हूँ। जिस प्रकार रत्नावली तप होता है, उसी प्रकार कनकावली तप भी होता है। विशेषता इतनी ही है कि रत्नावली तप मे काली देवी ने जिन तीन स्थानो पर बेले किये, कनकावली तप म उन्ही तीन स्थानों पर सुकाली देवी ने आठ तेले किये। कनकावली तप मे भी

परिवाडीए संवच्छरो, पंच मासा बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा। सेसं तहेव। नववासा परियाओ जाव[D] सिद्धा।

चार परिपाटियां होती हैं। प्रथम परिपाटी में एक वर्ष, पाँच मास, बारह दिन लगते हैं। और चार परिपाटियों में पांच वर्ष, नौ मास, और अट्ठारह दिन लगते हैं, शेष वर्णन काली देवी की तरह जानना चाहिये।

आर्या सुकाली ने नौ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर अंत में सब कर्मों से विनिर्मुक्त हो सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

सूत्रानुसार कनकावली तप यन्त्र
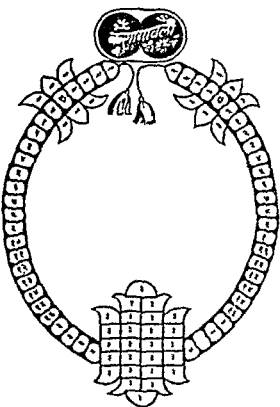
तपस्या काल
एक परिपाटी का काल १ वर्ष, ५ मास, १२ दिन
चार परिपाटी का काल ५ वर्ष, ६ मास, १८ दिन

तप के दिन
एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, २ मास, १४ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ४ वर्ष, ६ मास, २६ दिन

पारणे
एक परिपाटी के पारणे ८८
चार परिपाटी के पारणे ३५२

तृतीय अध्ययन—महाकाली

महाकाली द्वारा क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना

102– एव महाकाली वि । नवर– खुड्डागसीहनिक्कीलिय तवोकम्म उवसपज्जित्ताण विहरइ तजहा–

काली देवी की तरह ही महाकाली देवी का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेषता इतनी है कि महाकाली न सयम जीवन स्वीकार कर "क्षुल्लक (लघु) सिह निष्क्रीडित तप" की आराधना करती है । इस तप मे सिह की क्रीडा की तरह चढते–उतरते उपवासो की परिपाटी होती है । आराधना क्रम इस प्रकार है—

चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालस करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता

महाकाली महासती सव प्रथम उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, चार उपवास करती है, चार उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों मे पारणा करती है, पारणा करके, तला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, पचोला करती है, पचोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके चोला करती है, चोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों मे पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ उपवास करके सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता, चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता, बारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ,2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ,2

पारणा करती है, पारणा करके, पाच उपवास करती है, पाच उपवास करके सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों स पारणा करती है, पारणा करके, नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ८ उपवास करती है, ८ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों स पारणा करती है, पारणा करके नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, पारणा करती है। पारणा करके, ७ उपवास करती है, ७ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों स पारणा करती है, पारणा करके, ८ उपवास करती है, ८ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों स पारणा करती है, पारणा करके, ५ उपवास करती है ५ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों स पारणा करती है। पारणा करके, चार उपवास करती है चार उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट

त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ,2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता ।

पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ५ उपवास करती है, ५ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, चोला करती है, चोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट

सूत्रानुसार खुड्डागसिंहनिकीलिय तप यन्त्र
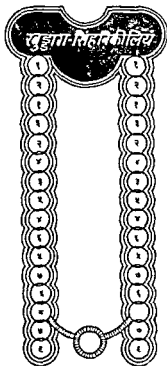
तपस्या काल

एक परिपाटी का काल ६ मास, ७ दिन

चार परिपाटी काल २ वर्ष, २८ दिन

तप के दिन

एक परिपाटी के तपोदिन ५ मास, ४ दिन

चार परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, ८ मास, १६ दिन

पारणे

एक परिपाटी के पारणे ३३

चार परिपाटी के पारणे १३२

पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्ह् दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव^ सिद्धा।

यह एक परिपाटी होती है। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी परिपाटी भी समझ लेना चाहिए। प्रथम परिपाटी मे छ मास सात दिवस लगते हैं। चारो परिपाटिया मे दो वर्ष अट्ठाईस दिवस लगते है।

इस तप की आराधना करने के अनन्तर महाकाली ने अनेक फुटकर तपश्चर्याए की। अन्त मे काली महासती की तरह यह भी सलेखना सथारा पूर्वक सभी कर्मों का अन्त कर सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त करती हैं।

चतुर्थ अध्ययन—कृष्णा

कृष्णा देवी द्वारा महासिहनिष्क्रीडित तप की आराधना

103— एव कण्हा वि । नवर-महालय सीहणिक्कीलिय तवोकम्म जहेव खुड्डाग नवर—चोत्तीसइम जाव नेयव्व। 'तहेव ओसारेयव्व' एक्काए वरिस छम्मासा अट्ठारस य दिवसा । चउण्ह छव्वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता । सेस जहा कालीए जाव[^] सिद्धा ।

महाकाली देवी की तरह ही कृष्णा देवी का वरान भी जानना चाहिये । विशेपता इतनी है कि महाकाली ने लघुसिह-निष्क्रीडित तप किया था और कृष्णा देवी ने "महानिष्क्रीडित तप" किया । इन दोनो तपो मे अन्तर यह हे कि लघुसिहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर नौ उपवाम तक वढते हैं । और "महानिष्क्रीडित तप" मे एक उपवास से लेकर सोलह उपवास तक वढते हैं । फिर सोलह उपवास से पीछे पन्द्रह आदि क्रमश नीचे उतरना होता है ।

"महानिष्क्रीडित तप" की एक परिपाटी मे एक वर्ष, छ मास, १८ दिन लगते हैं ।

चारो परिपाटियो मे छ वर्ष, दो मास वारह अहोरात्र लगते है ।

शेप वरान काली महारानी की तरह जानना चाहिये ।

कृष्णा महासती अन्त मे सब कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है ।

सूत्रानुसार तप यन्त्र
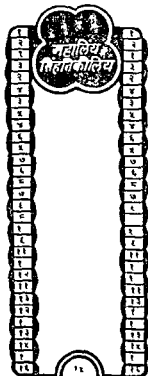
तपस्या काल
एक परिपाटी काल १ वष, ६ मास, १८ दिन
चार परिपाटी का काल ६ वष, २ मास, १२ दिन

तप के दिन
एक परिपाटी के तपोदिन १ वष, ४ मास, १७ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ५ वर्ष, ६ मास, ८ दिन

पारणे
एक परिपाटी के पारणे ६१
चार परिपाटी के पारणे २४४

पचम अध्ययन—सुकृष्णा

सुकृष्णा द्वारा भिक्षुप्रतिमा की आराधना

104—एव सुकण्हा वि, नवर—सत्तसत्तमिय भिक्खुपडिम[58-59] उवसपज्जित्ता ण विहरइ।

पढमे सत्तए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्क पाणयस्स।

दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दो दो पाणयस्स पडिगाहेइ।

तच्चे सत्तए तिण्णि तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स, तिण्णि तिण्णि दत्तीओ[60] पाणयस्स।

चउत्थे सत्तए चत्तारि—चत्तारि दत्तीओ भोयणस्स, चत्तारि—चत्तारि दत्तीओ पाणयस्स।

पचमे सत्तए पच पच दत्तीओ भोयणस्स, पच पच दत्तीओ पाणयस्स।

छट्ठे सत्तए छ-छ दत्तीओ भोयणस्स, छ-छ दत्तीओ पाणयस्स।

सत्तमे सत्तए सत्त सत्त दत्तीओ भोयणस्स, सत्त सत्त दत्तीओ पाणयस्स पडिगाहेइ।

एव खलु एय सत्तसत्तमिय भिक्खुपडिम एगूणपण्णाए रातिदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खासएण

कृष्णा देवी की तरह ही सुकृष्णा देवी का वर्णन भी जानना चाहिए।

विशेषता यह है कि—सुकृष्णा साध्वी जी ने सप्त-सप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा अगीकार की थी। इस प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है— प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति—पानी की ग्रहण करती है। द्वितीय सप्ताह मे दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण करती है। तीसरे सप्ताह मे तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण करती है। इसी प्रकार चतुर्थ सप्ताह मे चार-चार दत्ति, पाचवें सप्ताह मे पाच दत्ति, छठे सप्ताह मे छ दत्ति, सातवें सप्ताह मे सात-सात दत्ति भोजन एव पानी की ग्रहण करती है।

सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा के अन्तर्गत ४९ दिन-रात मे १९६ भिक्षाएँ ग्रहण कर सूत्रगत विधि के अनुसार इसका

अहासुत्त जाव[A] आराहेत्ता जेणेव अज्जचदणा अज्जातेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचदण अज्ज वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी-

आराधन करके, जिधर चन्दनबाला आर्या थी, उधर आती है,आकर के, वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार कर, इस प्रकार कहने लगी—हे आर्या प्रवर ! आपकी आज्ञा होने पर मै अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने की इच्छा रखती हू ।

इच्छामि ण अज्जाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ताण विहरेत्तए ।

अहासुह देवाणुप्पिए ! मा पडिबध करेहि ।

आर्या प्रवर चन्दनबाला जी ने फरमाया-हे भद्रे ! जसा तुम्हे सुख हो वस करो किन्तु शुभ काय मे किंचित भी विलम्ब मत करो ।

105— तए ण सा सुकण्हा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ—

पढमे अट्ठए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ । एक्केक्क पाणयस्स जाव[A] अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्ठट्ठ पाणयस्स ।

एव खलु एय अट्ठट्ठमिय भिक्खुपडिम चउसट्ठीए रातिदिएहि दोहि य अट्ठासीएहि भिक्खासएहि अहासुत्त जाव[B] आराहित्ता नवनवमिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ—

इस प्रकार आर्या प्रवर चन्दनबाला जी की आज्ञा प्राप्त होने पर सुकृष्णा आर्या अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है । प्रथम अष्टक-आठ दिनो मे एक भोजन की दत्ति और एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है । दूसरे अष्टक मे दो भोजन की दत्ति और दो पानी की दत्ति ग्रहण करती है । इसी प्रकार बढते हुये आठवें अष्टक मे आठ-भोजन की दत्ति और आठ ही पानी की दत्ति ग्रहण करती है । इस प्रकार यह अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा का चौसठ अहोरात्र मे दो सौ अट्ठासी भिक्षाम्रो को ग्रहण कर सूत्रानुसार आराधना करती है ।

इसी प्रकार नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करती है ।

सत्तसत्तमियाभिक्खू पडिमा
७
१४
२१
२८
३५
४२
४९
४९ दिवसा १९६ दत्तिओ

अट्ठअट्ठमिया भिक्खू-पडिमा
८
१६
२४
३२
४०
४८
५६
६४
६४ दिवसा २८८ दत्तिओ

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव[C] नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव नव पाणयस्स ।

प्रथम नवक-नौ दिनो मे एक-एक भोजन की दत्ति और एक-एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है। दूसरे नवक मे दो-दो भोजन की दत्ति और दो-दो पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इसी प्रकार बढते-बढते नौवें नवक में नौ दत्ति भोजन की और नौ दत्ति पानी की ग्रहण करती है।

नवनवमिया भिक्खुपडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१
८१ दिवस ४०५ दत्तिओ									

एवं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[D] आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव[E]। दसमे दसए दस दस दत्तीओ

इस नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा को इक्यासी अहोरात्र के चार सौ पांच भिक्षाओं द्वारा यथा सूत्र विधि के अनुसार पूर्ण करती है।

इस प्रकार नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा आर्या दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है प्रथम दशक दस दिनो मे एक-एक भोजन की दत्ति और

दसदसमिया भिक्खू पडिमा										
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३		३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००
१०० दिवसा ॐ ५५० दत्तिओ										

भोयणस्स पडिगाहेइ, दस दस पाणयस्स। एव खलु एय दसदसमिय भिक्खुपडिम एक्केण राइंदियसएण अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहि अहासुत्ता जाव[F] आराहेइ, आराहेत्ता बहूहि चउत्थ – छट्ठट्ठम– दसम – दुवालसेहि मासद्धमासखमणेहि विविहेहि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तए ण सा सुकण्हा अज्जा तेण ओरालेण तवोकम्मेण जाव सिद्धा। निक्खेवओ।

एक-एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते दसवें दशक में दस भोजन की दत्ति और दस पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इस प्रकार दस दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा को सौ अहोरात्र में साढ़े पाँच सौ भिक्षाओं द्वारा सूत्रानुसार विधि से आराधित करती है। आराधना करने के अनन्तर अनेक उपवास बेला आदि से लेकर १५ दिन, मासखमण आदि तपानुष्ठान द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है।

वह सुकृष्णा आर्या इस उदार एवं श्रेष्ठ तप से अत्यन्त दुर्बल हो जाती है। अन्तिम समय में संलेखना संथारा द्वारा सभी कर्मों का क्षय करके मुक्ति प्राप्त करती है।

हे जम्बू! इस प्रकार प्रभु ने अष्टम वर्ग के पाँचवें अध्ययन का सार बतलाया है।

षष्ठ अध्ययन—महाकृष्णा

महाकृष्णा द्वारा लघुसर्वतोभद्र तप की आराधना

106–एव महाकण्हा वि नवर-खुड्डाग सव्वओभद्द पडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ–

सुकृष्णा आर्या की तरह महाकृष्णा आर्या का वर्णन भी समझना चाहिये।

विशेषता यह है–महाकृष्णा आर्या क्षुल्लकसवतोभद्र प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है। उसकी विधि इस प्रकार है –

चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियपारेइ, 2त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता

सव प्रथम उपवास करती है, उपवास करके, सव प्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो स पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती ह पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है पारणा करके, उपवाम करती है, उपवास

चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय। पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ ।

करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है पारणा करके तेला करती है, तेला करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है पारणा करके बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है ।

एव खलु एय खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढम परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं य अहासुत्त चउत्थ करेइ, करेत्ता विगइवज्ज पारेइ पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ

इस प्रकार क्षुल्लकसर्वतोभद्र तप की पहली परिपाटी तीन मास, दस दिनों में सूत्रोक्त विधि के अनुसार पूर्ण करती है। पूर्ण करके, दूसरी परिपाटी करती है, उसमें सबसे पहले उपवास करती है, पारणे में विगय का छोड़ती है। पारणा करके फिर आगे जिस

जाव^A आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए वि चत्तारि परिवाडीओ। पारणा तहेव जाव सिद्धा।

निक्खेवओ।

प्रकार रत्नावली तप का वर्णन किया गया, उसी प्रकार यहा क्षुल्लकसर्वतोभद्र मे भी चारो परिपाटियो मे पारणे आदि समझने चाहियें।

चारो परिपाटियो मे एक वर्ष, एक मास, दस दिन लगते हैं। महाकृष्णा आर्या का शेष वर्णन काली–महाकाली आर्या की तरह जान लेना चाहिये।

महाकृष्णा आर्या भी सभी कर्मों का क्षय कर अन्त मे सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है।

हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम वर्ग के छठे अध्ययन म महाकृष्णा आर्या का सजीवनसार इस प्रकार बतलाया है।

सप्तम अध्ययन —वीरकृष्णा

वीरकृष्णा का महासर्वतोभद्र तप की आराधना

107–एव वीरकण्हा वि नवर–महालय सव्वओभद्द तवोकम्म उवसपज्जित्ता ण विहरइ। तजहा–पढमालया–

महाकृष्णा देवी के वर्णन की तरह ही वीरकृष्णा देवी का वर्णन भी समझ लेना चाहिये।

विशेषता यह है कि वीरकृष्णा देवी आर्या महासवतोभद्र नामक तप विशेष को

पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

छट्ठी लया—

छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

सत्तमो लया—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता

करती है, सात करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके एक उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पचोला करती है, पचोला करके सब प्रकार के रसों से पारणा करती है ।

इस प्रकार पांचवीं लता समाप्त होती है ।

छठी लता— सब प्रथम बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है । पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, पचोला करती है, पचोला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, छः करती है, छः करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, सात करती है, सात करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है ।

इस प्रकार छट्ठी लता समाप्त होती है ।

सातवीं लता— सब प्रथम पचोला करती है, पचोला करके, सब प्रकार के रसों से पारणा करती है । पारणा करके, छः उपवास करती है, छः करके, सब प्रकार के रसों से पारणा

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता श्रट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता ।

एवकाए कालो श्रट्ठ मासा पच य दिवसा । चउण्ह दो वासा श्रट्ठ मासा वीस दिवसा । सेस तहेव जाव सिद्धा ।

करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात करके, सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है । चौला करके, सब प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

इस प्रकार सातवी लता समाप्त होती है ।

इन सबको मिलाकर एक परिपाटी होती है । इस एक परिपाटी का समय श्राठ मास पाच दिवस है । इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, परिपाटी भी होती है । चारो परिपाटियो का कुल समय दो वप, श्राठ मास, वीस दिवस होते हैं ।

शेष वणन महाकृष्णा देवी की तरह ही समझना चाहिये ।

वीरकृष्णा महासती जी भी श्रन्त मे सभी कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व श्रवस्था प्राप्त करती है ।

।। सप्तम श्रध्ययन समाप्त ।।

अष्टम अध्ययन—रामकृष्णा

रामकृष्ण द्वारा भद्रोत्तरप्रतिमा तप की आराधना

108– एवं रामकण्हा वि, नवरं– भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा–

वीरकृष्णा आर्या की तरह ही रामकृष्णा आर्या का वर्णन भी समझना चाहिये।

विशेषता यह है कि —

रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है। उसकी विधि इस प्रकार है —

पढमा लया–

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता।

प्रथम लता सर्व प्रथम पचोला करती है, पचोला करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, छह उपवास करती है, छह करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है, पारणा करके, नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है।

भद्रोत्तर प्रतिमा की इस प्रकार प्रथम लता समाप्त होती है।

बीया लया–

सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियंपारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं

द्वितीय लता सब प्रथम सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, आठ करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा किया, पारणा करके, छह उपवास किये, छह करके

करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता ।

सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इस प्रकार दूसरी लता समाप्त होती है ।

तइया लया—
वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता ।

तृतीय लता सर्व प्रथम नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, छ उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके आठ उपवास किये, आठ करके सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इसी प्रकार तीसरी लता समाप्त होती है ।

चउत्थी लया—
चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता

चतुथ लता सव प्रथम छ उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, आठ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इस प्रकार चतुर्थ लता समाप्त होती है ।

पचमी लया—
अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता

पचम लता सव प्रथम आठ उपवास किये, आठ उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता ।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा । चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा । सेस तहेव जहा कालो जाव सिद्धा ।

पारणा किया, पारणा करके, छ उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो स पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा किया ।

इन पाच लताम्रो के पूर्ण होन पर एक परिपाटी पूर्ण होती है । इसी प्रकार अवशेष तीन परिपाटिया भी होती हैं, परन्तु पारणे क्रमश विगय रहित अलेपकृत और आयम्बिल युक्त होते है ।

प्रथम परिपाटी में छ मास, बीस दिन लगते हैं । चारो परिपाटियो मे दो वर्ष, दो महिने, बीस दिन लगते हैं ।

महासती रामकृष्णा का अवशेष वर्णन काली आर्या की तरह जानना चाहिये ।

रामकृष्णा आर्या भी अन्त में सभी कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है ।

नवम अध्ययन—पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा द्वारा मुक्तावली तप की आराधना

109- एवं[A] पिउसेणकण्हा वि, नवरं मुत्तावलि तवोकम्मं उवसपज्जित्ता ण विहरइ, तजहा—

रामकृष्णा महासती की तरह पितृसेन कृष्णा महासती के विषय मे भी जानना चाहिये।

विशेषता यह है कि पितृसेन कृष्णा आर्या मुक्तावली नामक तप स्वीकार करके विचरण करने लगती है। उसकी विधि इस प्रकार है—

चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता। छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ

सव प्रथम उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी रसो से पारणा करती है। पारणा करके, पाच उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसों से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, छह उपवास करती है, छह करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा

करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउवीसइम करेइ करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छव्वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइम करेइ, करेत्ता, सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइम करेइ, करेत्ता, सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ

करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है। पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ करके सभी प्रकार के रसा से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, नव उपवास करती है, नव करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, दस करती है, दस करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके, ग्यारह उपवास करती है, ग्यारह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है उपवास करके, सभी प्रकार के रसा से पारणा करती है। पारणा करके, बारह उपवास करती है बारह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके उपवास करती ह्। उपवास करके, सभी प्रकार के रसा से पारणा करती है। पारणा करके, तेरह उपवास करती है, तेरह करके सभी प्रकार के रसा से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसा से पारणा करती है, पारणा करके, चौदह उपवास करती है, चौदह करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पन्द्रह उपवास करती है

करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, ।

पन्द्रह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है पारणा करके, सोलह उपवास करती है, सोलह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पुन उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, पन्द्रह उपवास करती है, पन्द्रह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है।

तपस्या काल—
एक परिपाटी का काल ११ मास, १५ दिन
चार परिपाटी का काल ३ वर्ष, १० मास

तप के दिन—
एक परिपाटी के तपोदिन २८५ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ३ वर्ष, दो मास

पारणे
एक परिपाटी के पारणे ६०
चार परिपाटी के पारणे २४०

एव तहेव श्रोसारइ जाव चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ ।

पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है । पारणा करके, इस प्रकार घटते घटते श्रन्त मे एक उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है । इस प्रकार प्रथम परिपाटी मे सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

एवकाए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा । चउण्ह तिण्णि वरिसा दस य मासा सेस जाव सिद्धा ।

इस एक परिपाटी मे ११ महिने, १५ दिवस का समय लगता है । चारो परिपाटिया का काल तीन वर्ष, दस मास होता हैं । शेष वर्णन काली श्रार्या की तरह जानना चाहिये ।

श्रन्त मे महासती पितृसेन कृष्णा सलेखना सथारा पूवक सभी कर्मों का क्षय करके सिद्धत्व श्रवस्था प्राप्त करती है ।

।। नवम श्रध्ययन समाप्त ।।

दशम अध्ययन—महासेनकृष्णा

महासेनकृष्णा द्वारा आयबिल वर्धमान तप की आराधना

110– एवं[A]–महासेणकण्हा वि, नवर–आयबिलवड्ढमाण तवोकम्म उवसपज्जित्ता ण विहरइ, तजहा–

महासती काली देवी की तरह ही महासती महासेनकृष्णा का वर्णन भी जानना चाहिये।

विशेष—महासती महासेनकृष्णा आयम्बिल वधमान तप को स्वीकार करके विचरण करने लगती है। जिसकी विधि इस प्रकार है—

आयबिल करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता बे आयबिलाइ करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता तिण्णि आयबिलाइ करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता चत्तारि आयबिलाइ करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता पच आयबिलाइ करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता छ आयबिलाइ करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ, 2 त्ता।

एवकुत्तरियाए वड्ढीए आयबिलाइ वड्ढति चउत्थ-तरियाइ जाव आयबिलसय करेइ, करेत्ता चउत्थ करेइ।

सव प्रथम आयम्बिल करती है, करके, उपवास करती है, उपवास करके दो आयम्बिल करती है, दो करके, फिर एक उपवास करती है। एक उपवास करके, तीन आयम्बिल करती है। तीन आयम्बिल करके एक उपवास करती है, उपवास करके, चार आयम्बिल करती है। चार आयम्बिल करके, उपवास करती है। उपवास करके, पाच आयम्बिल करती है। पाच करके, उपवास करती है। उपवास करके, छ आयम्बिल करती है। छ करके, उपवास करती है, उपवास करके, सात आयम्बिल, फिर उपवास, फिर आठ आयम्बिल, इस प्रकार एकान्तरित उपवास मे आयम्बिल को वढाते-बढाते सौ आयम्बिल तप करती है, सौ आयम्बिल करके उपवास करती है।

तए ण सा महासेणकण्हा अज्जा आयबिलवड्ढमाण तवोकम्म चोद्दसहि वासेहि तिहि य मासेहि वीसहि य अहोरत्तेहि अहासुत्त जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या आयम्बिल वधमान तप १४ वर्ष, ३ मास, २० अहोरात्र तक सूत्र की विधि के अनुसार सम्यक्तया काया मे स्पर्श करती है। स्पर्श करके, जिधर, चन्दनबाला आर्या विराजमान थी, उधर आती है, आकर के, आर्या प्रवर

उवागया, उवागच्छित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता बहूहिं चउत्थ जाव[B] भावेमाणी विहरइ।

चन्दनबाला को वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके बहुत उपवास-बेला आदि तपश्चर्या मे अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है।

111—तए ण सा महासेणकण्णा अज्जा तेण ओरालेण जाव तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

तब महासेनकृष्णा आर्या, उस उदार तप मे कृश होकर भी तप तेजश्री से उपशोभित प्रतीत होती है। उस महासेन कृष्णा आर्या को किसी समय पिछली रात्रि मे स्कदक अनगार की तरह विचार उत्पन्न होता है। और प्रात वह आर्या प्रवर चन्दनबालाजी मे पूछती है, पूछ करके सलेखना सथारा लेकर जीवन-मरण की आकाक्षा नही करती हुई, विचरण करने लगती है।

तए ण तीसे महासेणकण्हा अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले चित्ता जहा खदयस्स जाव अज्जचदण अज्ज आपुच्छइ। जाव[A] सलेहणा काल अणवकखमाणी विहरइ।

तएण सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ सत्तरस वासाइ परियाय पालइत्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण भूसित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठ आराहेइ आराहित्ता चरिमउस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा।

महासेनकृष्णा आर्या, आर्या प्रवर चन्दनबालाजी के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करती है। अध्ययन करके पूरा सत्रह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर, एक मास के सलेखना सथारा से अपनी आत्मा को शोषित करती हुई, अनशन द्वारा ६० भक्त का छेदन कर, जिस अर्थ के लिये सयम जीवन स्वीकार किया था, यावत् उस अर्थ को सिद्ध कर लेती है अर्थात् चरम उच्छ्वास-नि श्वास की समाप्ति के साथ सिद्धत्व अवस्था प्राप्त कर लेती हैं।

अट्ठ य वासा आई एक्कोत्तरियाए जाव सत्तरस एसो खलु परियाओ सेणियभज्जाण नायव्वो ॥।॥

श्रेणिक राजा की दसो रानियो की दीक्षा पर्याय प्रारम्भ से पहली रानी के आठ वर्ष से लेकर, एक वर्ष बढाते हुए, दसवी रानी की दीक्षा पर्याय सत्रह वर्ष समझना चाहिये ।

। दशम अध्ययन समाप्त ।

आयम्बिल वर्धमान तप

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८०	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

निक्षेप : उपसहार

112—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण अयमट्ठे पण्णत्ते !

इस प्रकार हे जम्बू ! धर्म तीर्थ के प्रवतक मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के अष्टम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादित किया है । उन्होने जिस प्रकार फरमाया है, वैसा ही मैं कहता हू ।

अतगडदसाण अगस्स एगो सुयखधो । अट्ठ वग्गा । अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जति । तत्थ पढमविइयवग्गे दस दस उद्देसगा । तइयवग्गे तेरस उद्देसगा । चउत्थ-पचमवग्गे दस दस उद्देसगा । छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा । सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा । अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा ।

अन्तकृद्दशागसूत्र का एक श्रुतस्कध है । आठ वर्ग है । इसका आठ दिवसो मे ही उपदेश देते ह । उनमे प्रथम-द्वितीय वर्ग मे दस-दस अध्ययन होते हैं । तृतीय वर्ग मे १३ उद्देशक, चतुर्थ-पचम वर्ग में दस-दस उद्देशक, छट्ठे वर्ग मे सोलह उद्देशक, सप्तम वर्ग मे तेरह उद्देशक, अष्टम वर्ग मे दस उद्देशक होते हैं ।

सेस जहा नायाधम्मकहाण ।

जिस विषय का वर्णन प्रस्तुत सूत्र मे नही किया गया है, उसे ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिये ।

—०—

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा तप करके अपने शरीर को सुखाना, क्या अपने आपकी हिंसा नही है ? तप से शारीरिक-मानसिक शुद्धि के साथ आत्म शान्ति कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान विधिवत् सम्यक्ज्ञान के साथ तप करना अपने आपकी हिंसा नही, बल्कि अहिंसा है, क्योकि मानव कितनी भी सावधानी रखे, फिर भी कुछ न कुछ अधिक खाने मे आ ही जाता है, अधिक खाना प्राणियो के लिये अहितकर है, क्याकि खाद्य पदार्थों के अभाव मे अन्य कई प्राणियो की मृत्यु तक हो जाती है । इस मरण की हिंसा का पाप मरने वाले को तो लगता ही है किन्तु खाद्य पदार्थों का दुरुपयोग करने वाले मानव का भी परम्परा से लगता है । नित्य भोजन करने वाला, रसना पर नियन्त्रण नही कर पाता । इसीलिये नित्य भोजन शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक हाता है एव इस प्रकार की वृत्ति से प्रतिदिन अधिक कम बन्धन भी करता ह, जिससे की आत्मा के गुणा के दबने का प्रसग आता ह । यह एक प्रकार से स्व हिंसा का प्रसग भी बन जाता है । यदि मानव कम से कम महिने के चार उपवास भी करता है एव रसनेन्द्रिय को सम्यक्ज्ञान-पूवक नियन्त्रित करता है, तो उपयु क्त हिंसा से छूट सकता है । रसनेन्द्रिय पर सयम करने से अन्य इन्द्रिया भी सयमित होती है और उपवास से आत्मशुद्धि, शारीरिक स्वास्थ्य बुद्धि निमलता आदि उपलब्धिया भी सहज रूप से होने लगती है । अतएव प्रति माह मे चार उपवास भी मानव के लिये स्व पर सरक्षण के हेतु बनते हैं । कदाचित् स्वय की प्रसन्नता क साथ सुदीघ समय तक तपश्चरण भी वह करता है, तो वह भी अनशन तप के साथ साथ शरीर के उपर रहे हुए ममत्व भाव को कम करता है, एव समत्व भाव की प्राप्ति मे सहायक बनता है। सुदीघ-तपश्चरण के पश्चात् यदि विधिवत् अर्थात् खाद्य पदार्थों का नियमित एव सयमित सेवन हो तो उसके शरीर की अभिवृद्धि व्यवस्थित रूप से अधिक होती है ।

तपश्चर्या से पूव जैसा शरीर था, उसमे अधिक पारण से शरीर मजबूत हो जाता है, साथ ही उसका आत्मबल एव मनोबल आदि मे भी वृद्धि होती है ।

आयुर्वेदिक, प्राकृतिक उपचार की दृष्टि मे भी शारीरिक स्वस्थता के लिय बहुत दिना तक व्यक्ति को भूखा रख कर कायाकल्प किया जाता है । अत सुदीघ तपश्चरण भी स्व-पर रक्षण ह एव हिंसा नही, अहिंसा का प्रमुख परिचायक है ।

शात क्रान्ति के जन्मदाता आचाय गुरुदेव स्व श्री गणेशीलालजी म सा फरमाया करते थ कि जिसको अधिक जीना है, वह अधिक तपश्चया करे ।

जिज्ञासा रत्नावली तप की विधि क्या है ?

समाधान रत्नावली तप मे सबसे पहले उपवास किया जाता है । उपवास के बाद एक बेला फिर एक तेला, फिर आठ बेले किये जाते हैं । इसके बाद एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार उपवास, पाच उपवास, छ, सात, आठ, नव, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह पन्द्रह, सौलह उपवास किये जाते हैं । फिर ३४ बेले करके १६ उपवास से १५, १४, १३ आदि उतरते-उतरते एक उपवास करना होता है । तद्नन्तर आठ बेले, एक तेला, एक बेला और अन्त मे एक उपवास करना होता है । इस प्रकार पहली परीपाटी पूर्ण होती है । इसके पारणे मे घृत, दुग्ध आदि सभी रस लिये जाते हैं । दूसरी, तीसरी, चौथी परिपाटी भी इसी प्रकार होती है, किन्तु पारणे, दूसरी परिपाटी म विगय रहित, तीसरी मे लेप रहित एव चौथी मे आयम्बिल करने होते हैं । एक परिपाटी को पूर्ण करने मे एक वर्ष, तीन मास, बाईस दिवस लगते हैं ।

जिज्ञासा कनकावली तप की विधि क्या है ?

समाधान कनकावली तप की विधि रत्नावली तप की तरह ही होती है । अन्तर केवल इतना ही है कि रत्नावली तप के तीनो स्थानो पर जहा बेले किये जाते हैं, कनकावली मे वहा तेले करने होते है । इसकी प्रथम परिपाटी मे एक वर्ष, पाच मास, बारह दिवस लगते हैं । चारो परिपाटियो मे ५ वर्ष, ९ मास, १८ दिवस लगते हैं ।

जिज्ञासा क्षुल्लक (लघु) सिंह निष्क्रीडित तप की विधि क्या है ?

समाधान क्षुल्लक सिंह निष्क्रीडित तप मे सब प्रथम उपवास तद्नन्तर क्रमश बेला, उपवास, तेला, बेला, चौला, तेला, पचौला, चौला, छ, पाच, सात, छ, आठ, सात, नौ, आठ, नौ, सात, आठ, छ, सात, पाच, छ चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला, उपवास करना होता है । यह प्रथम परिपाटी की विधि है । पारणे मे दूध, घी आदि सभी प्रकार के रस लिये जा सकते हैं । दूसरी परिपाटी मे विगय रहित पारणे होते हैं । तीसरी परिपाटी मे लेप रहित पारणे होते हैं चौथी परिपाटी के पारणे मे आयम्बिल करने होते हैं । प्रथम परिपाटी में छ मास सात दिवस लगते हैं । चारो परिपाटियो मे २ वर्ष, २८ दिवस लगते हैं ।

जिज्ञासा महासिंहनिष्क्रीडित तप की विधि क्या है ?

समाधान लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की तरह ही महासिंहनिष्क्रीडित तप होता है । अन्तर केवल इतना ही है कि लघु मे एक उपवास से लेकर नौ तक आगे बढते हैं किन्तु महासिंहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर सौलह तक किये जाते है । सौलह से पीछे क्रमश एक तक उतरना होता है । इसकी एक परिपाटी मे एक वर्ष, छ मास, अठारह दिवस लगते हैं । चारो परिपाटियो का समय छ वर्ष, दो मास, अठारह दिवस होते है ।

जिज्ञासा सप्त–सप्तमिका, अष्ट–अष्टमिका, नव-नवमिका, दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा की विधि क्या है ?

समाधान सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा की स्वरूप विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति भोजन और एक दत्ति पानी ग्रहण किया जाता ह । दूसरे सप्ताह मे दो दत्ति भोजन औरदो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है । इस प्रकार तीसरे सप्ताह मे तीन-तीन, चौथे सप्ताह मे चार-चार वढते-वढते सातवें सप्ताह मे सात-सात दत्ति भाजन पानी की ग्रहण की जाती है । इस प्रकार सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा मे ४९ दिन लगते है और १९६ दत्तिए भिक्षा में ग्रहण की जाती हैं ।

साधु या साध्वी के पात्र मे दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी, जब तक धारा अखण्डित बनी रहे तब तक, जा आहार पानी पात्र मे आ जाता है उसे एक दत्ति कहते हैं । धारा टूट जाने के वाद जो आहार-पानी आता है उसे उस दत्ति के अन्दर नही माना जा सकता । अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम आठ दिनो मे एक-एक दत्ति भोजन-पानी, इस प्रकार वढते वढते आठवें आठ दिनो मे आठ-आठ दत्ति भाजन-पानी की ली जाती ह । इस प्रतिमा मे ६४ दिन लगते है । दो सौ अट्ठासी भिक्षाए ग्रहण की जाती हैं । नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम के नौ दिवस मे एक दत्ति भोजन, एक दत्ति पानी, इस प्रकार वढते-वढते नौवें नवदिवसो मे नवदत्ति भोजन और नवदत्ति पानी लिया जाता है । इसमे ८१ दिवस लगते है । ४०५ दत्तिया ग्रहण की जाती है ।

दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम के दस दिवसो मे एक दत्ति भोजन, एक दत्ति पानी ग्रहण किया जाता है । वढते-वढते दसवें दस दिवसो मे दस दत्ति भोजन और दस दत्ति पानी ग्रहण किया जाता ह । इसमे १०० दिन लगते है । ५५० दत्तिए ग्रहण की जाती हैं ।

जिज्ञासा लघुसवतोभद्र तप की विधि क्या है ?

समाधान लघुसवतोभद्र तप की विधि इस प्रकार है—

उपवास, वेला, तेला, चौला, पचौला, तेला, चौला, पचौला, वेला, तेला, चोला, वेला, उपवास, वेला, तेला, चौला, वेला, तेला, चौला, पचौला, उपवास, चौला पचौला, उपवास, वेला, तेला ।

इस प्रकार प्रथम परिपाटी सम्पूर्ण होती है । पारणो मे सभी प्रकार के दुग्ध, घृत आदि रस लिये जाते हैं । इसी प्रकार की दूसरी परिपाटी के पारणो मे सभी रसो का त्याग तथा तीसरी परिपाटी के पारणे मे लेप रहित आहार, चौथी परिपाटी के पारणो मे आयम्बिल करने होते हैं ।

इस परिपाटी मे १०० दिन लगते हैं, जिसमे २५ दिन पारणे के आते हैं । चारो परिपाटियो मे ४०० दिन लगते हैं । जिसमे १०० दिन पारणे के आते है ।

जिज्ञासा महासर्वतोभद्र तप की विधि क्या है ?

समाधान महासर्वतोभद्र तप की विधि इस प्रकार है —

प्रथम लता उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, छ , सात

द्वितीय लता चौला, पचौला, छ , सात, एक, बेला, तेला

तृतीय लता सात, एक, बेला, तेला, चौला, पचौला, छ

चतुथ लता तेला, चौला, पचौला, छ , सात, एक, बेला

पचम लता छ , सात, एक, बेला, तेला, चौला, पचौला

पष्ठ लता तेला, तेला, चौला, पचौला, छ , सात, एक

सप्तम लता पचौला, छ , सात, एक, बेला, तेला, चौला ।

इस प्रथम परिपाटी के पारणे मे दुग्ध-घृत आदि रसा को लिये जाते है । दूसरी परिपाटी के पारणे विगय रहित, तीसरी परिपाटी के पारणे लेप रहित और चौथी परिपाटी के पारणे आयम्बिल से किये जाते हैं । चारा परिपाटियो मे दो वष, आठ मास, दस दिवस लगते हैं ।

जिज्ञासा भद्रोत्तर प्रतिमा तप की विधि क्या है ?

समाधान "भद्रोत्तर प्रतिमा" तप मे चार परिपाटियाँ होती हैं । प्रत्येक परिपाटी मे पाच लताए होती है, जिनकी तप विधि इस प्रकार है —

प्रथम लता पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास ।

द्वितीय लता सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास ।

तृतीय लता नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास ।

चतुथ लता छ उपवास, सात उपवास आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास ।

पचम लता आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास ।

प्रथम परिपाटी मे सभी रसो को, दूसरी म विगय रहित, तीसरी म लेप रहित आहार पारणे मे लिया जाता है । चौथी परिपाटी मे पारणे मे आयम्बिल किया जाता है । एक परिपाटी का समय ६ मास, १० दिवस है । चारा परिपाटियो का समय दो वष, दो मास, बीस दिवस है ।

जिज्ञासा मुक्तावली तप की विधि क्या है ?

समाधान मुक्तावली तप की भी चार परिपाटिया होती है । प्रथम परिपाटी के अनुसार ही सभी परिपाटिया होती हैं । अन्तर इतना ही होता है कि प्रथम परिपाटी मे पारणे मे घृतादि

रसो का, दूसरी परिपाटी के पारणे मे विगय रहित आहार, तीसरी परिपाटी के पारणे मे लेप रहित आहार ग्रहण किया जाता है। चतुथ परिपाटी के पारणे मे आयम्बिल करने होते हैं।

एक परिपाटी की विधि इस प्रकार है —

एक, दो, एक तीन, एक, चार, एक पाच, उपवास, के क्रम से बढते है, बढते-बढते १६ उपवास करने होते है। तदनन्तर क्रमश नीचे उतरना होता ह। जैसे सोलह उपवास, एक उपवास पन्द्रह उपवास, एक उपवास, उतरते उतरते अन्त मे एक उपवास आता है।

एक परिपाटी का काल ११ मास १५ दिवस है। चारो परिपाटियो का काल ३ वष, दस मास होते हैं।

जिज्ञासा आयम्बिल वधमान तप की विधि क्या है ?

समाधान आयम्बिल वधमान तप मे सव प्रथम एक आयम्बिल, फिर एक उपवास तदनन्तर दो आयम्बिल फिर एक उपवास, इस प्रकार बढते-बढते सौ आयम्बिल और एक उपवास तक करना होता है।

यह तप चौदह वष तीन मास, बीस दिन मे पूण होता है।

जावपूर्ति परिशिष्ट 'A'

1–A— श्रौपपातिक सूत्र= श्री घासीलाल जी मा सा पृ 4 से 26 ।।

B— धम्मो कहिम्रो । परिसा जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि ।।

C— नाम श्रणगारे कासवगोत्तेण सत्तुस्सेहे समचउरससठाणसठिए वज्जरिसहणारायसघयणे कणयपुलयनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महात्तवे श्रोराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबभचेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविउलतेयलेस्से श्रज्ज सुहम्मस्स थेरस्स श्रदूरसामते उड्ढजाणू श्रहोसिरे झाणकोट्ठोवगए सजमेण तवसा श्रप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

तए ण से श्रज्जजबू नाम श्रणगारे जायसड्ढे जायससए जाय फोउहल्ले, सजायसड्ढे सजाय ससए, सजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नससए, उप्पन्नकोउहल्ले समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नससए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति । उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव श्रज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति उवागच्छित्ता श्रज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो श्रायाहिणपयाहिण करेइ । करेत्ता वदति नमसति वदित्ता नमसित्ता श्रज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे श्रभिमुह पजलिउडे विणएण ।।

2–D— तित्थयरेण, सयसबुद्धेण, पुरिसुत्तमेण, पुरिससीहेण, पुरिसवरपुडरीएण, पुरिसवरगधहत्थिणा, लोगुत्तमेण, लोगनाहेण, लोगहिएण, लोगपइवेण, लोगपज्जोयगरेण श्रभयदएण, सरणदएण, चक्खुदएण, मग्गदएण, बोहिदएण, धम्मदएण, धम्मदेसएण, धम्मनायगेण, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरत-चक्कवट्टिणा, श्रप्पडिहयवरनाणदसणधरेण, वियट्टछउमेण, जिणेण, जावएण तिन्नेण, तारएण, बुद्धेण, बोहएण, मुत्तेण, मोग्रगेण, सव्वन्नेण, सव्वदरिसणेण, सिवमयलमरूश्रमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिश्र सासय ठाण ।।

E–F— जाय पूर्ति D ।।

3·4–A,B,C,D,E— सूत्र स 2 जाव पूर्ति D ।।

5–A— तु गे गगणतलमणुलिहतसिहरे नाणाविहगुच्छगुम्म–लया–वल्लि–परिगए,

हस-मिग-मयूर-कोच–सारस–चक्कवाय–मयणसाल–कोइलकुलोववेए अणेगतड–कडग–वियर–उज्झर–पवायपब्भारसिहरपउरे अच्छरगण–देवसघ चारण–विज्जाहरमिहुण–सविचिण्णे निच्चच्छणए दसारवर–वोरपुरिस–तेलोक्कबलवगाण, सोमे सुभगे, पियदसणे सुरूवे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।।

B – सव्वोउय, पुप्फ–फल–समिद्धे, रम्मे नदणवणप्पगासे पासाइए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।।

C— औपपातिक सूत्र स 5 (अवशेष पाठ देखें) ।।

6–A— तलवर–माडबिय–कोडुविय–इब्भ–सेट्ठि सेणावइ ।।

B— पोरेवच्च भट्टित्त सामित्त महयरत्त आणाईसर सेणावच्च कारेमाणे पालेमाणे महयाऽहय–णट्ट–गीय वाइयतती–तल–तालतुडिय–घण–मुयग–पडुप्पवाइयरवेण विउलाइ भोगभोगाइ भु जमाणे ।।

8–A— तहा गोयमा वि समयेव पचमुट्ठिय लोय करेइ करित्ता जेणामेव समणे भगव अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ 2 समण भगव अरिट्ठनेमी तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–

आलित्ते ण भते ! लोए, पलित्ते ण भते ! लोए, आलित्तपलित्ते ण भते । लोए जराए मरणेण य । से जहा नामए केई गाहावई आगारसि झियायमाणसि जे तत्थ भडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए त गहाय आयाए एगत्त अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मस वि एगे आया भडे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे ससारवोच्छेयकरे भविस्सइ । त इच्छामि ण देवाणुप्पियाहि सयमेव पव्वाविय, सयमेव मु डाविय, सेहाविय, सिक्खाविय, सयमेव आयार–गोयर–विणय–वेणइय–चरण–करण–जाया–मायावत्तिय धम्ममाइक्खिय ।

तए ण समणे भगव अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ सयमेव आयार जाव धम्ममाइक्खइ–एव–देवाणुप्पिया ! गतव्व चिट्ठियव्व णिसीयव्व तुयट्टियव्व

भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेण संजमियव्वं, श्रंस्सि च णं श्रट्ठे णो पमाएयव्वं।

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवश्रो श्ररिट्ठनेमिस्स श्रंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सोच्चा णिसम्म सम्मं पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए, उट्ठाय, पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ, तए णं से गोयमे श्रणगारे इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरश्रो काउं विहरइ॥

9–A— छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं-मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं श्रप्पाणं॥

10–B— श्रप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं श्रणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे–केसलोए, बंभचेरवासे श्रण्हाणग श्रच्छत्तय श्रणुवाहणय भूमिसेज्जाश्रो, फलगसेज्जाश्रो परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाश्रो निंदणाश्रो खिंसणाश्रो तालणाश्रो, गरहणाश्रो उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा–गामकंटगा श्रहियासिज्जति तमट्ठं श्राराहेइ चरिमुस्सासेहिं॥

11–A— सूत्र सं 2 जावपूर्ति D॥

13–A— जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं श्रट्ठमस्स श्रंगस्स श्रंतगडदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स श्रयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते! वग्गस्स श्रंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं कइ श्रज्झयणा पण्णत्ता॥

14–A— रिद्धत्थिमिय समिद्धा पमुइयजणजाणवया श्राइण्णजणमणुस्सा हलसयसहस्स–सकिट्ठ–विकिट्ठ–लट्ठ पण्णत्त सेउसीमा कुक्कुड–संडेय–गाम पउरा उच्छु–जव–सालि–कलिया, गोमहिस–गवेलग–प्पभूया श्रायारवंतचेइय जुवइ–विविह सण्णिविट्ठ–बहुला–उक्कोडिय–गायगंठि भेयग भड–तक्कर–खंडरक्ख–रहिया खेमा णिरुवद्दवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा श्रणेगकोडिकुडुंबियाइण्ण–णिव्वुय सुहाणउ–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिय–वेलंबग-कहग– पवग– लासग– श्राइक्खगलंख– मंख–तूणइल्ल– तुंबवीणिय–श्रणेगता–

लायराणुचरिया – आरामुज्जाण – अगड – तलाग–दीहिय–वप्पिणगणोववेया नदणवण सन्निभप्पगासा उव्विद्ध–विउल–गभीर–खायफलिहा–चक्क–गय–मुसु ढि–ओरोह–सयग्घि जमलकवाडघणदुप्पवेसा धणुकुडिल–वकपागार–परिक्खित्ता कविसीसगवट्टरइयसठियविरायमाणा अट्टालयचरिय–दार–गोपुर–तोरणसमुण्णयसुविभत्तरायमग्गा छेयायरियरइयदढफलिहइदकीला विवणि-वणिछेत्तसिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा सिंघाडग–तिग–चउक्क–चच्चर–पणियावण विविहवत्थुपरिमडिया सुरम्मा नरवइपविइण्णमहिवइपहा अणेगवर तुरग–मत्तकु जर–रहपहकर–सीय–सदमाणीआइण्णजाणजुग्गा विमउलणवणलिणिसो-भियजला पडुरवरभवणसण्णिमहिया उत्ताणणयण पेच्छणिज्जा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।। औपपातिक सूत्र ।।

B— सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे-रम्मे-नदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।। नायाधम्मकहाओ ।।

C— दित्ते वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणा-इण्णे, बहुधण-बहुजायरूव-रयए, आओगप्पओगसपउत्ते विच्छड्डिय-विउल भत्तपाणे बहुदासी-दास-गो-महिस गवेलगप्पभूए बहुजणस्स ।।

D— पाणि-पाया अहीण-पडिपुण्ण-पचिदिय-सरीरा लक्खण वजण-गुणोववेआ माणुम्माण-प्पमाण पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वग सुदरगी ससि सोमाकार-कत-पिय दसणा ।।

15-E—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे लक्खण-वजण गुणोववेए माणुम्माणप्पमाण पडिपुण्ण सुजायसव्वग सु दरगे ससिसोमागारे कते पियदसणे ।।

F— खीरधाईए, मडणधाईए, मज्जणधाईए, अकधाईए, कीलावणधाईए, बहूहिं, खुज्जाहिं चिलाइयाहिं, वामणियाहिं, वडभियाहिं बब्बराहिं लासियाहिं, लाउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं मुरडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीविदेसपरिमडियाहिं इगियचितिय पत्थियवियाणियाहि सदेसणेवत्थ-गहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणि वदणपरियालपरिवुडे वरिसधरकचुइमहयरवदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ साहरिज्जमाणे अकाओ अक परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे

उवलालिज्जमाणे रम्मसि मणिकोट्टिमतलसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायसि ।।

16–A— तए ण से कलायरिए अणीयस कुमार लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणिरुतपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्यओ य करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ ।

तजहा—लेह, गणिय, रूव, नट्ट, गीय, वाइय, सरगय, पोक्खरगय, समताल, जूय, जणवाय, पासय, अट्ठावय, पोरेकच्च, दगमट्टिय, अन्नविहि, पाणविहि, वत्थविहि, विलेवणविहि, सयणविहि, अज्ज, पहेलिय, मागहिय, गाह, गीइय, सिलोय, हिरण्णजुत्ति, सुवण्णजुत्ति, चुण्णजुत्ति, आभरणविहि, तरुणीपडिकम्म, हत्थिलक्खण, पुरिसलक्खण, हयलक्खण, गयलक्खणं, गोणलक्खण, कुक्कुडलक्खण, छत्तलक्खण, डडलक्खण, असिलक्खण, मणिलक्खण, कागणिलक्खण, वत्थुविज्ज, खधारमाण, नगरमाण वूह, पडिवूह, चार, पडिचार, चक्कवूह, गरुलवूह, सगडवूह, जुद्ध, निजुद्ध, जुद्धातिजुद्ध, अट्ठिजुद्ध, मुट्ठिजुद्ध, बाहुजुद्ध, लयाजुद्ध, ईसत्थ, छरुप्पवाय, धणुव्वेय, हिरण्णपाग, सुवण्णपाग, सुत्तखेड, वट्टखेड, नालियाखेड, पत्तच्छेज्ज, कटगच्छेज्ज, सजीव, निज्जीव, सउणिरूअमिति ।

तए ण से कलायरिए अणीयस कुमार, लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरूअपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्यओ य करणओ य सिहावेइ सिक्खावेइ सिहावेत्ता, सिक्खावेत्ता अम्मापिउणं उवणेइ ।

तए ण अणीयसकुमारस्स अम्मापियरो त कलायरिय मधुरेहि वयणेहि विपुलेण वत्थ-गध-मल्लालकारेण सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विपुल जीवियारिह पीइदाण दलयति । दलइत्ता पडिविसज्जेंति ।

तए ण से अणीयसे कुमारे वावत्तरिकलापडिए णवगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीइरई गधव्वनट्टकुसले हयजोही, गयजोही, रहजोही, बाहुजोही, बाहुप्पमद्दी ।।

B— सरिव्वयाण, सरित्तयाण, सरिसलावण्ण रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं-सरिसएहितो इब्भकुलेहितो आणिल्लियाण ।।

C— बत्तीस सुवण्णकोडीग्रो, मउडे, मउडप्पवरे बत्तीस कु डलजुए, कु डलजुयप्पवरे, बत्तीसे हारे हारप्पवरे, बत्तीस अद्धहारे, अद्धहारप्पवरे, बत्तीस एगावलीग्रो एगावलिप्पवराग्रो, एव मुत्तावलीग्रो, एव कणगावलीग्रो एव रयणावलीग्रो, बत्तीस कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एव तुडियजोए, बत्तीस खोमजुयलाइ, खोमजुयप्पवराइ एव वडगजुयलाइ एव पट्टजुयलाइ एव दुगुल्लजुयलाइ बत्तीस सिरीग्रो, बत्तीस हिरीग्रो, बत्तीस धिईग्रो कित्तीग्रो, बुद्धीग्रो, लच्छीग्रो, बत्तीस णदाइ, बत्तीस भद्दाइ बत्तीस तले तलप्पवरे, सव्वरयणामए, णियगवरभवणकेऊ बत्तीस झए झयप्पवरे, बत्तीस वये वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएण वएण, बत्तीस णाडगाइ णाडगप्पवराइ बत्तीसबद्धेण णाडएण, बत्तीस ग्रासे ग्रासप्पवरे, सव्वरयणामए, सिरिघरपडिरूवए, बत्तीस हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए बत्तीस जाणाइ जाणप्पवराइ, बत्तीस जुगाइ जुगप्पवराइ, एव सिबियाग्रो, एव सदमाणीग्रो, एव गिल्लीग्रो थिल्लीग्रो, बत्तीस वियडजाणाइ वियडजाणप्पवराइ, बत्तीस रहे पारिजाणिए बत्तीस रहे सगामिए, बत्तीस ग्रासे ग्रासप्पवरे, बत्तीस हत्थी हत्थीप्पवरे, बत्तीस गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएण गामेण, बत्तीस दासे दासप्पवरे, एव चेव दासीग्रो, एव किकरे, एव कचुइज्जे, एव वरिसघरे, एव महत्तरए, बत्तीस सोवण्णिए, ग्रोलवणदीवे, बत्तीस रुप्पामए ग्रोलवणदीवे, बत्तीस सुवण्णरूप्पामए ग्रोलवणदीवे, बत्तीस सोवण्णिए उक्कचणदीवे, बत्तीस पचरदीवे, एव चेव तिण्णि वि, बत्तीस सोवण्णिए थाले, बत्तीस रुप्पमए थाले, बत्तीस सुवण्णरूप्पमए थाले, बत्तीस सोव्वण्णियाग्रो पत्तीग्रो 3, बत्तीस सोवण्णियाइ थासयाइ 3, बत्तीस सोवण्णियाइ मल्लगाइ 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो तालियाग्रो 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो कावइग्राग्रो, बत्तीस सोवण्णिए ग्रवएडए 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो ग्रवयक्काग्रो 3, बत्तीस सोवण्णिए पायपीढए 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो भिसियाग्रो 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो करोडियाग्रो 3, बत्तीस सोवण्णिए पल्लके 3, बत्तीस सोवण्णियाग्रो पडिसेज्जाग्रो, बत्तीस हसासणाइ, बत्तीस कोंचासणाइ, एव गरूलासणाइ, उण्णयासणाइ, पणयासणाइ दोहासणाइ, भद्दासणाइ

पक्खासणाइ, मगरासणाइ, वत्तीस पउमासणाइ वत्तीस विसासोवत्थियासणाइ वत्तीस तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव वत्तीस सरिसवसमुग्गे, वत्तीस खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव वत्तीस पारिसीओ, वत्तीस छत्ते, वत्तीस छत्तधारीओ, चेडीओ, वत्तीस चामराओ, वत्तीस चामरधारीओ चेडीओ, वत्तीस तालियटधारीओ चेडीओ, वत्तीस करोडियाओ, वत्तीस करोडियाधारीओ चेडीओ, वत्तीस खीरधाईओ, जाव वत्तीस अकधाईओ, वत्तीस अगमद्दियाओ, वत्तीस उम्मद्दियाओ, वत्तीस ण्हावियाओ, वत्तीस पसाहियाओ, वत्तीस वण्णगपेसीओ, वत्तीस चुण्णगपेसीओ, वत्तीस कोट्ठागारीओ, वत्तीस दवकारीओ, वत्तीस उवत्थाणियाओ, वत्तीस णाटइज्जाओ, वत्तीस केडु विणीओ, वत्तीस महाणसिणीओ, वत्तीस भडागारिणीओ, वत्तीस अज्झाधारिणीओ, वत्तीस पुप्फधारिणीओ, वत्तीस पाणीधारिणीओ, वत्तीस बलीकारिओ, वत्तीस सेज्जाकारीओ, वत्तीस अब्भितरियाओ पडिहारीओ, वत्तीस बाहिरियाओ पडिहारीओ, वत्तीस मालाकारीओ, वत्तीस पेसणकारीओ, अण्ण वा सुबहु हिरण्ण वा सुवण्ण वा कस वा दूस वा विउलधण-कणग0 जाव सतसारसावएज्ज, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दाउ, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ ।

तए ण से अणीयसे कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेग हिरण्णकोडि दलयइ, एगमेग सुवण्णकोडि दलयइ, एगमेग मउड मउडप्पवर दलयइ एव त चेव सव्व जाव एगमेग पेसणकारि दलयइ, अण्ण वा सुबहु हिरण्ण वा जाव परिभाएउ तए ण से अणीयसकुमारे उप्पि पासायवरगए ।।

17-D— जेणेव भद्दिलपुर नयरे जेणेव सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे ।।

E— जणसद्द च जणकलकल च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था ।। जहा गोयमा जहा अणगारे जाए ।।

F— सूत्र स 9—10 तक ।।

G— अत्ताण झूसित्ता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरणाणदसण समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा ।।

18-A— अणिहय, विऊ, देवजसे ।।

19-B— सूत्र स 9—10 ।।

20 C—ण भते । समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स ण भते ! अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ? ।।

D— सूत्र स 17 प्रारभ से परिसा निग्गया तक ।।

21-A— अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा ।।

22-B— बीयाए पोरिसीए झाण झियायति तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसभता मुहपोत्तिय पडिलेहति, पडिलेहित्ता भायणवत्थाइ पडिलेहति पडिलेहित्ता भायणाइ पमज्जति भायणाइ उग्गाहेति उग्गाहेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमिं वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी ।।

C— उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

D— चवलमसभता जुगतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रिय सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरिय ।।

23-A— तुट्ठचित्तमाणदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण ।।

B— नीय मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे ।

तए ण सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइ अणुगच्छइ तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराण मोयगाण थाल भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता ।।

24-A— सूत्र स 22 जाव पूर्ति C ।।

B— सूत्र स 5 वित्थिण्णा से पमुदिय पक्कीलिया ।।

C— मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

D— सूत्र स 5 दुवालस देवलोगभूयाए ।।

E— सूत्र 24 जाव पूर्ति C की तरह ।।

25-A— सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पलगवल-गुलिय-अयसि कुसुमप्पगासा सिरिवच्छकिय-वच्छा कुसुम-कुण्डल भद्दलया ।।

B— भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

C— जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरित्तए ।।

D— सूत्र 21 मा पडिबध करेह तक ।।

E— सज्झाय करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाण झियाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहि सघाडएहि बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

26-A— सूत्र स 20 तेण कालेणं समाणा तक ।।

B— सरीसए सरित्ताए सरिव्वए नीलुप्पल-गवल गुलिय अयसिकुसुमप्पगासे सिरिवच्छकियवच्छे कुसुम-कुडल भद्दालए नलकुब्बरसमाणे ।।

C— जुत्ता-जोइय सम-खुर वालिहाण-समालिहियसिगेहि, जबूणयामयकलायजुत्त-परिविसिट्ठेहि, रययामयघटा-सुत्तरज्जुयपवरकचणणत्थपग्गहोग्गहियएहि, णीलुप्पलकयामेलएहि, पवरगोणजुवाणएहि णाणामणि-रयण घटियाजाल-परिगय, सुजायजुगजोत्तररज्जुयजुग-पसत्यसुविरचियणिम्मिय, पवरलक्खणो-ववेय धम्मिय जाणप्पवर जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । तए ण ते कोडु बियपुरिसा एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल एव तहत्तिआणाए विणएण वयण जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मिय जाणप्पवर जुत्तामेव ।।

D— तए ण सा देवई देवी अतो अंतेउरसिण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-

मगलपायच्छित्ता, किच वरपायपत्तणेउर-मणिमेहला हार-रचिय उचियकडग-खुडडागएगावली- कठसुत्त–उरत्थगेवेज्ज–सोणिसुत्तग–णाणामणि–रयण-भूसण विराइयगी, चीणसुयवत्थपवरपरिहिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरिया, वरचदणवदिया, वराभरणभूसीयगी, कालागरूधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरा, बहूहि खूज्जाहि, चिलाइयाहि, णाणादेस–विदेसपरिमडियाहि, सदेसणेवत्थगहियवेसाहि, इगिय–चिंतिय–पत्थियवियाणियाहि–कुसलाहि, विणीयाहि, चेडियाचक्कवालवरिसधर–थेरकचुइज्ज–महत्तरगवदपरिक्खित्ता अतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मिय जाणप्पवर दुरूढा ।

तए ण सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरूहित्ता बहूहि खुज्जाहि जाव महत्तरगवदपरिक्खित्ता भगव अरिट्ठनेमि पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, तजहा–सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाण अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण, मणस्स एगत्तीभावकरणेण, जेणेव भगव अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगव अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिण गरेइ, करित्ता वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता सुस्सूसमाणी, णमसमाणी, अभिमुहा विणएण पजलिउडा जाव ।।

27–A— सूत्र 26 ।

28–B— कयबलिकम्मा कयकोउयमगल ।।

30–चित्तमाणदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस–विसप्पमाण ।।

31–A— मणसकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया ।।

32–A— कयबलिकम्मे कयकोउय–मगल–पायच्छित्ते सव्वालकार ।।

B— चित्तमाणदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण हियया।।

C— करयल पल्हत्थमुही अट्टज्जाणोवगया ।।

34–D— पगेण्हइत्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता हरिणेगमेसि देव मणसि करेमाणे-करेमाणे चिट्ठइ ।

तए ण तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे हरिणेगमेसिस्स देवस्स आसण चलइ । तए ण हरिणेगमेसी देवे आसण चलिय पासइ, पासित्ता, ओहि पउजति । तए ण तस्स हरिणेगमेसिस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—एव खलु जबुद्दीवे दीवे भारहेवासे वारवई नयरीए पोसहसालाए कण्हे नाम वासुदेवे अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता ण मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ । त सेय खलु मम कण्हस्स वासुदेवस्स अतिए पाउब्भवित्तए । एव सपेहेइ, सपेहित्ता उत्तर-पुरच्छिम दिसीभाग अववकमति, अववकमित्ता, विउव्वियसमुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ दड निसिरइ । तजहा—

(1) रयणाण, (2) वयराण, (3) वेरुलियाण, (4) लोहियक्खाणं, (5) मसारगल्लाण, (6) हसगब्भाण, (7) पूलगाण, (8) सोगधियाण, (9) जोइरसाण, (10) अकाण, (11) अजणाण, (12) रयणाण, (13) जायरूवाण, (14) अजणपुलयाण, (15) फलिहाण, (16) रिट्ठाण अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हत्ति, परिगिण्हइत्ता कण्हमणुकपमाणे देवे तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरिय—सजणितगयणपयारो वाघुण्णितविमलकणगपयर-गवडिसगमउडुक्कडाडोवदसिणिज्जो, अणेगमणि—कणग—रयण—पहकरपरि-मडितभत्तिचित्तविणिउत्तमगुणजणियहरिसे, पॅखोलमाणवरललितकुण्ड-लुज्जलियवयणगुणजणितसोमरूवे, उदित्तो विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणदो, सरयचदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठग-धुद्धुयाभिरामो मेरुरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाण असखपरिमाणनामधेज्जाण मज्झकारेण वीइवयमाणो, उज्जोयतो पभाए

विमलाए जीवलोग बारावइ पुरवर च कण्हस्स य तस्स पास उवयइ दिव्वरूवधारो ।

तए ण से देवे अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए (एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो–) ताओ उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चडाए सोहाए उद्धयाए जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अतरिक्खपडिवण्णे दसद्धवन्नाइ सखिखिणियाइ पवरवत्थाइ परिहिए–कण्ह वासुदेव एव वयासी–

"अह ण देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, ज ण तुम पोसहसालाए अट्ठमभत्त पगिण्हित्ता ण मम मणसि करेमाणे चिट्ठसि, त एस ण देवाणुप्पिया ! अह इह हव्वमागए । सदिसाहि ण देवाणुप्पिया ! कि करेमि ? कि दलामि ? कि पयच्छामि ? कि वा ते हिय–इच्छित ।"

तए ण से कण्हे वासुदेवे त हरिणेगमेसि देव अतलिक्खपडिवन्न पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहिय ।।

35–A— बालभावे विण्णय परिणयमेत्ते जोव्वणग ।।

B— भवित्ता आगाराओ अणगारिय ।। ।।

C— कताहि पियाहि मणुण्णाहि वग्गूहि ।।

36–A— वासघरसि अब्भितरओ सचित्तकम्मे, वाहिरओ दूमिय–घट्ठमट्ठे, विचित्तउल्लोय–चिल्लियतले, मणि–रयण–पणासियघयारे, बहुसम–सुविभत्तदेसभाए, पचवण्ण–सरस–सुरभिमुक्क–पुप्फपु जोवयारकलिए, कालागुरूपवर–कु दुरूक्कतुरुक्क–धूवमघमघतगधुद्धयाभिरामे, सुगधि–वर–गधिए, गधवट्टिभूए, तसि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगणवट्टिए, उभओविब्बोयणे, दुहओ उण्णए, मज्झे णय–गभीरे, गगा–पुलिण–वालुय–उद्दालसालिसए, उवचिय–खोमिय–दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे, सुविरइयरयत्ताणे, रत्तसुय–सवुए, सुरम्मे, आइणगरूय–बूर–णवणोय–तूलफासे, सुगध–वरकुसुम-चुण्ण–सयणोवयारकलिए, अद्धरत्तकालसमयसि सुत्त–जागरा ओहीरमाणो

ओहीरमाणी अयमेयारूव ओराल, कल्लाण, सिव, धण्ण, मगल्ल सस्सिरिय महासुविण पासित्ता ण पडिवुद्धा ।

हार–रयय–खीरसागर–ससककिरण-दगरय–रययमहसिल–पडुरतरोरु-रमणिज्ज–पेच्छणिज्ज, थिर–लट्ठ–पउट्ठ–वट्ट–पीवर–सुसिलिट्ठ–विसिट्ठ–तिक्खदाढाविडबियमुह, परिकम्मियजच्चकमलकोमलमाइअसोभतलट्ठउट्ठ, रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजीह, मूसगयपवर–कणगतावियआवत्तायत–वट्टतडिविमलसरिसणयण, विसालपीवरोरु, पडिपुण्णविपुलखध, मिउसिविसयसुहुमलक्खण–पसत्यविच्छिण्ण–केसरसडोवसोभिय, ऊसिय–सुणिम्मिय–सुजाय–अप्फोडिय–लगूल, सोम, सोमाकार, लीयायत, जभायत, णहयलाओ ओवयमाण णिययवयणमइवयत ।।

B— तए ण सा देवई देवी अयमेयारूव ओराल जाव–सस्सिरिय महासुविण पासित्ता ण पडिवुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाय हियया धाराहयकलवपुप्फग पिव समूसियरोमकूवा त सुविण ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसभताए अविलवियाए रायहससरिसोए गईए जेणेव वसुदेवस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वसुदेव-राय ताहि इट्ठाहि कताहि, पियाहि, मणुण्णाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धण्णाहि मगल्लाहि सस्सिरीयाहि मिय–महुर–मजुलाहि गिराहि सलवमाणी सलवमाणी पडिवोहेइ, पडिवोहित्ता वसुदेवेण अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिरयण–भत्तिचित्तसि भद्दासणसि णिसीयइ णिसीइत्ता आसत्या वीसत्या सुहासणवरगया वसुदेव राय ताहि इट्ठाहि कताहि जाव–सलवमाणी सलवमाणी एव वयासी—

एव खलु अह देवाणुप्पिया ! अज्ज तसि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगण0 त चेव जाव–वियगवयणमइवयत सीह सुविणे पासित्ता ण पडिवुद्धा, तण्ण देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? तए ण से कण्हे राया देवईए देवीए अतिय एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 जाव हयहियए धाराहय णीवसुरभिकुसुमचचुमालइयतणुयऊसवियरोमकूवे त सुविण ओगिण्हइ,

ओगिण्हित्ता ईह पविसइ, ईह पविसित्ता अप्पणो साभाविएण मइपुव्वएण बुद्धिविण्णाणेण तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहण करेइ तस्स0 देवइ देवि ताहि इट्ठाहि कताहि जाव मगल्लाहि मिय–महुर–सस्सिरि0 सलवमाणे सलवमाणे एव वयासी––

ओराले ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, कल्लाणे ण तुमे जाव सस्सिरीए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग–तुट्ठि–दीहाउ–कल्लाण–मगल्लकारए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एव खलु तुम देवाणुप्पिए ! णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाणराइदियाण विइक्कताण अम्ह कुलकेउ, कुलदीव, कुलपव्वय, कुलवडेंसय, कुलतिलग, कुलकित्तिकर, कुलणदिकर, कुलजसकर, कुलाधार, कुलापायव, कुलविवद्धणकर, सुकुमालपाणि–पाय, अहीणपडिपुण्णपचिदियसरीर, जाव ससिसोमाकार, कत, पियदसण, सुरूव देवकुमारसमप्पभ दारग पयाहिसि ।

से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कते वित्थिण्ण–विउल–बल–वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । त उराले ण तुमे जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्यतुट्ठि, जाव मगलकारए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेइ ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अतिय एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 करयल0 जाव एव वयासी–"एवमेय देवाणुप्पिया ! तहमेय देवाणुप्पिया ! अवितहमेय देवाणुप्पिया ! असदिद्धमेय देवाणुप्पिया ! इच्छियमेय देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेय देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेय देवाणुप्पिया ! से जहेय तुज्झे वयह" त्ति कट्टु त सुविण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता वसुदेवेण रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि–रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवल जाव गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयणिज्जसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एव वयासी-"मा मे से उत्तमे पहाणे मगल्ले सुविणे अण्णेहि पावसुमिणेहि पडिहम्मिस्सइ" त्ति कट्टु देव–गुरुजणसबद्धाहि

पसत्थाहि मगल्लाहि धम्मियाहि कहाहि सुविणजागरय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए ण वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयसि कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठगमहाणिमित्त-सुत्तत्यधारए, विविहसत्यकुसले, सुविणलक्खणपाठए सद्दावेह ।" तए ण ते कोडुबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता वसुदेवस्स रण्णो अतियाओ पडिणिक्खमति पडिणिक्खमित्ता सिग्घ तुरिय चवल चड वेइय जेणेव सुविणलक्खणपाढगाण गिहाइ तेणेव उवागच्छति तेणेव उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाठए सद्दावेंति । तए ण ते सुविणलक्खणपाठगा वसुदेवस्स रण्णो कोडु बियपुरिसेहि सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ0 ण्हाया कय0 जाव सरीरा सिद्धत्यग-हरियालियकयमगलमुद्धाणा सएहि सएहिं गेहेहितो णिग्गच्छति, णिग्गच्छित्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता करयल वसुदेव जएण विजएण वद्धावेंति । तए ण ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवेण रण्णा वदिय-पूइअ-सक्कारिअ-सम्माणिआ समाणा पत्तेय पत्तेय पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति । तए ण से वसुदेवे राया देवइ देविं जवणियतरिय ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल पडिपुण्णहत्थे परेण विणएण ते सुविणलक्खणपाठए एव वयासी—"एव खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी अज्ज तसि तारिसगसि वासघरसि जाव सीह सुविणे पासित्ता ण पडिबुद्धा, तण्ण देवाणुप्पिया । एयस्स ओरालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए ण सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो अतिय एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 त सुविण ओगिण्हति, ओगिण्हित्ता ईह अणुप्पविसति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहण करेंति, तस्स0 अण्णमण्णेण सद्धि सचालेंति, सचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइ उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एव वयासी—"एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह सुविणसत्थसि बायालीस सुविणा, तीस महासुविणा, बावत्तरि सव्वसुविणा दिट्ठा । तत्थ ण देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थयरसि वा

चक्कवट्टिसि वा गब्भ वक्कममाणसि एएसि तीसाए महासुविणाण इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता ण पडिबुज्झति । तजहा–

"गय–वसह–सीह–अभिसेय–दाम–ससि दिणयर झय कुभ ।
पउमसर–सागर–विमाण–भवण–रयणुच्चय–सिहिं च ।।"

वासुदेवमायरो वा वासुदेवसि गब्भ वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्ह महासुविणाण अण्णयरे सत्त महासुविणे पासित्ता ण पडिबुज्झति । बलदेवमायरो वा बलदेवसि गब्भ वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्ह महासुविणाण अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता ण पडिबुज्झति । मडलियमायरो वा मडलियसि गब्भ वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्ह महासुविणाण अण्णयरे एग महासुविण पासित्ता ण पडिबुज्झति । इमे य ण देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग–तुट्ठि0 जाव मगल्लकारए ण देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया । रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एव खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण जाव वीइक्कताण तुम्ह कुलकेउ जाव पयाहिइ । से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा । त ओराले ण देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग–तुट्ठि–दीहाउअ–कल्लाण0 जाव दिट्ठे ।

तए ण से वसुदेवराया सुविणलक्खणपाढगाण अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एव वयासी– "एवमेय देवाणुप्पिया ! जाव से जहेय तुब्भे वयह" ति कट्टु सुविण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविणलक्खण ।।

C— विउलेण असण–पाण–खाइम–साइम–पुप्फ–वत्थ–गध–मल्लालकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विउल जीवियारिह पीइदाण दलयइ, दलयित्ता पडिविसज्जेइ ।।

D— पाणिपाय अहीण–पडिपुण्ण–पचिदिय–सरीर लक्खण–वजण–गुणोववेअ

माणुम्माण–प्पमाण–पडिपुण्ण–सुजाय–सव्वग–सु दरग ससिसोमाकार–कत –पिय–दसण ।।

E— तए ण ताम्रो श्रगपडियारिश्रो देवइ देवि नवण्ह् मासाण जाव दारय पयाय पासति, पासित्ता सिग्घ तुरिय चवल वेइय, जेणेव वसुदेवे राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता वसुदेव राय जएण विजएण वद्धावेति । वद्धावित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए श्रजलि कट्टु एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी नवण्ह मासाण जाव दारग पयाया । त ण श्रम्हे देवाणुप्पियाण पिय णिवेएमो, पिय मे भवउ ।

तए ण से वसुदेवे राया तासि श्रगपडियारियाण श्रतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 ताश्रो श्रगपडियारियाश्रो महुरेहि वयणेहि विपुलेण य पुप्फगधमल्लालकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता मत्थयधोयाश्रो करेइ, पुत्ताणुपुत्तिय वित्ति कप्पेइ, कप्पित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए ण से वसुदेवे राया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी— खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बारवइ नयरिं श्रासित्त जाव परिगीय करेह, करित्ता चारपरिसोहण करेह, करित्ता माणुम्माणवद्धण करेह, करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण से वसुदेवे राया श्रट्ठारससेणीप्पसेणीश्रो सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—"गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए श्रब्भितरबाहिरिए उस्सुक्क उक्कर श्रभडप्पवेस श्रदडिमकुडडिम श्रधरिम श्रधारणिज्ज श्रणुद्धुयमुइग श्रामिलायमल्लदाम गणियावरणाडइज्जकलिय श्रणेग तालायराणुचरित पमुइय पक्कीलियाभिराम जहारिह ठिइवडिय दसदिवसिय करेह, करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणति ।

तए ण से वसुदेवे राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य जाएहि दाएहि भोगेहि दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एव च ण विहरइ ।

तए ण तस्स श्रम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्म करेन्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरिय करेन्ति, करित्ता ततिय दिवसे चदसूरदसणिय करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असूइजातकम्मकरणे सपत्ते बारसाहदिवसे विपुल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त–णाइ–णियग–सयण–सबधि–परिजण बल च बहवे गणणायग–दडनायग जाव आमतेइ ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय–मगल–पायच्छित्ता सव्वालकारविभूसिया महइमहालयसि भोयणमडवसि त विपुल असण पाण खाइम साइम मित्तणाइ0 गणणायग जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभु जेमाणा एव च ण विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा आयता चोक्खा परमसूइभूया त मित्तणाइनियगसयणसबधिपरिजण0 गणणायग0 विपुलेण पुप्फगधमल्लालकारेण सक्कारेंति, समाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासी–।। (नाया १/१/७४-८१)

37–A— जजुव्वेद–सामवेद–अहव्वणवेद–इतिहास पचमाण निघट्टुछट्ठाण चउण्ह वेदाण सगोवगाण सरहस्साण सारए, वारए, धारए, पारए, सडगवी, सट्ठितत विसारए, सखाणे सिक्खाकप्पे, वागरणे, छदे निरुत्ते जोइसामयणे अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिवायएसु नयेसु ।।

C— कयबलिकम्मे कयकोउय–मगल-पायच्छित्त सव्वालकार ।।

B— औपपातिक सूत्र 15 ।।

D— औपपातिक सूत्र 70 ।।

38–A— पुरिसा मोम दारिय गेण्हित्ता कण्णतेउरसि ।।

39–B— जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमसमाणे पजलिउडे अभिमुहे विणएण ।।

40–A— निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते ! निग्गथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गथ पावयण, रोएमि णं भंते ! निग्गथ पावयण, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गथ पावयणं । एवमेय भंते । तहमेय भंते । अवितहमेय भंते ! इच्छियमेय भंते ! पडिच्छियमेय भंते ! इच्छिय–पडिच्छियमेय भंते । से जहेय तुब्भे वयह ! नवरि देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । तओ पुच्छा मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेहि ।

तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिट्ठनेमिं वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणामेव हत्थिरयणे तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिरयणवरगए महयाभड–चडगर–पहकरेण बारवईए नयरीए मज्झमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करित्ता एवं वयासी–एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्मे निसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी–धन्नोसि तुमं जाया ! सपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्थोसि तुमं जाया ! कयलक्खणोसि तुम जाया । जण्णं तुमे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्मे निसते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी– एवं खलु अम्मयाओ ? मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्मे निसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ । तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए ण सा देवई देवी त अणिट्ठ अकत अप्पिय अमणुण्ण अमणाम अस्सुयपुव्व फरूस गिर सोच्चा निसम्म इमेण एयारूवेण मणोमाणसिएण महया पुत्तदुक्खेण अभिभूया समाणी सेयागय–रोमकूवपगलत-विलिणगाया सोयभर–पवेवियगि नित्तेया दीण–विमण–वयणा करयलमालिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर-लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण – पडतखुम्मिय – सचुण्णियधवलवलय – पब्भट्ठ – उत्तरिज्जा सूमालविकिण्ण-केसहत्था मुच्छावसनट्ठचेय-गरूई परसुनियत्त व्व चपगलया निव्वत्तमहे व्व इदलट्ठी विमुक्कसधि–बधणा कोट्टिमलसि सव्वगेहि धसत्ति पडिया ।

तए ण सा देवई देवो ससभमोवत्तियाए तुरिय कचणभिगारमुहविणिग्गय–सीयल–जलविमलधाराए परिसिचमाणनिव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय–तालविट–वीयणग–जणियवाएण सफुसिएण अतेउरपरिजणेण आसासिया समाणी मुत्तावलि–सन्निगास–पवडत–अंसुधाराहि सिचमाणी पओहरे, कलुण–विमण–दीणा रोयमाणी कदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी गयसुकुमाल कुमार एव वयासी–

"तुम सि ण जाया ! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय–ऊसासिए हियय-णदि–जणणे उबरपुप्फ व दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण पासणयाए ? णो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओग सहित्तए । त भु जाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वय जीवामो । तओ पच्छा अम्हेहि कालगएहि परिणयवए वड्ढिय–कुलवसततु–कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से गयसुकुमाले अम्मापिऊहि एव वुत्ते समाणे अम्मापियरो एव वयासी– तहेव ण त अम्मो ! जहेव ण तुब्भे मम एव वयह– "तुम सि ण जाया । अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय–उस्सासिए

हियय-णदि करे उयरपुप्फ व दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण पासणयाए ? णो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओग सहित्तए । त भु जाहि ताय जाया । विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वय जीवामो । तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवसततुकज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।" एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सभ्भरागसरिसे सुविणदसणोवमे सडण-पडण-विद्ध सण-धम्मे पच्छा पुर च ण अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ । के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ । तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता ण अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।

तए ण त गयसुकुमाल कुमार अम्मापियरो एव वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य मणिमोत्तिय-सख-सिल प्पवाल-रत्तरयणसतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगाम दाउ पगाम भोत्तु पगाम परिभाएउ । त अणुहोहि ताव जाया ! विपुल माणुस्सग इड्ढिसक्कारसमुदय । तओ पच्छा अणुभूय कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से गयसुकुमाले अम्मापियर एव वयासी—तहेव ण त अम्मयाओ! ज ण तुब्भे मम एव वयह- "इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिइपज्जयागए जाव पव्वइस्ससि ।' एव खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्ध सणधम्मे पच्छा पुर च ण अवस्स विप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता

अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो सचाएति गयसुकुमाल कुमार बहूहि विसयाणुलोमाहि आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि सजमभउव्वेयकारियाहि पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एव वयासी–

एस ण जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए ससुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खपहीणमग्गे, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधारए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहि दुत्तरे, तिक्ख कमियव्व, गरुअ लबेयव्व, असिधारव्वय चरियव्व ।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाण निग्गथाण आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रहए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

तुम च ण जाया । सुहसमुचिए नो चेव दुहसमुचिए, नाल सीय नाल उण्ह नाल खुह नाल पिवास नाल वाइय–पित्तिय–सिभिय–सन्निवाइय विविहे रोगायके, उच्चावए गामकटए, बावीस परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्म अहियासित्तए । त भुजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से गयसुकुमाले अम्मापिऊहि एव वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी– तहेव ण त अम्मयाओ ! ज ण तुब्भे मम एव वयह–"एस ण जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे पुणरवि त चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ

पव्वइस्ससि ।" एव खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराणं कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव ण धीरस्स । निच्छियववसियस्स एत्थ कि दुक्कर करणयाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।।

41–B— भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

42–A— भोगा असुई वत्तासवा पित्तासवा ।।

B— सुक्कासवा सोणियासवा दुरुय–उस्सास नीसासा दुरुय–मुत्त–पुरीस–पूय–बहुपडिपुण्णा उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाणग–वत–पित्त–सुक्क–सोणियसभवा अधुवा अणितिया असासया सडण–पडण–विद्ध सणधम्मा पच्छा पुर च ण अवस्स ।।

C— मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

43–A— विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि ।।

B— तए ण से गजसुकुमालस्स पिया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गजसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थ, महग्घ, महरिह विपुल रायाभिसेय उवट्ठवेह । तए णं ते कोडु बियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणति । तए ण त गजसुकुमाल कुमार अम्मा-पियरो सीहासणवरसि पुरत्याभिमुह निसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाण कलसाण सव्विड्ढीए जाव महया रवेणं महया महया रायाभिसेएण अभिसिचति ।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएण विजएण वद्धावित्ता एव वयासी–भण जाया ! कि देमो, कि पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा पियरो एव वयासी–इच्छामि णं अम्मयाओ कुत्तियावणाओ रयहरण च पडिग्गह च आणिउं कासवग च सद्दाविउ । निक्खमणं जहा महब्बलस्स ।

तए ण गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइ गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरण पडिग्गह च उवणेह, सयसहस्सेण कासवग सद्दावेह । तए ण ते कोडु बियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइ, तहेव जाव कासवग सद्दावेंति । तए ण से कासवए गयसुकुमालस्य कुमारस्स पिउणा कोडु बियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल0 गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियर जएण विजएण वद्धावेइ, वद्धावित्ता एव वयासी–सदिसतु ण देवाणुप्पिया । ज मए करणिज्ज ? तए ण से गय–सुकुमालस्स पिया त कासवग एव वयासी–तुम देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि । तए ण से कासवे एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एव सामी ! तहत्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गधोदएण हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुह बधइ, मुह बधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ ।

तए ण सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हसलक्खणेण पडसाडएण अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं, गधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहि वरेहिं गधेहिं, मल्लेहिं अच्चित्ता सुद्धे वत्थे बधइ, सुद्धे वत्थे बधित्ता रयणकरडगसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार–वारिधार–सिंदुवार–छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइ सुयवियोग–दूसहाइ असूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एव वयासी–एस ण अम्ह गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहुसु तिहिसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ ।

तए ण तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्च पि उत्तरावक्कमण

पव्वइस्ससि ।" एव खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोगनिप्पिवासाण दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव ण धीरस्स । निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्कर करणयाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।।

41–B— भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

42–A— भोगा असुई वत्तासवा पित्तासवा ।।

B— सुक्कासवा सोणियासवा दुरूय–उस्सास नीसासा दुरूय–मुत्त–पुरीस–पूय–बहुपडिपुण्णा उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाणग–वत–पित्त–सुक्क–सोणियसभवा अधुवा अणितिया असासया सडण–पडण–विद्ध सणधम्मा पच्छा पुर च ण अवस्स ।।

C— मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

43–A— विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहिं य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि ।।

B— तए ण से गजसुकुमालस्स पिया कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गजसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थ, महग्घ, महरिह विपुल रायाभिसेय उवट्ठवेह । तए ण ते कोडुबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणति । तए ण त गजसुकुमाल कुमार अम्मा-पियरो सीहासणवरसि पुरत्थाभिमुह णिसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएण सोवण्णियाण कलसाण सव्विड्ढीए जाव महया खेण महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचति ।

महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचित्ता करयल-जाव जएण विजएण वद्धावेंति, जएण बिजएण वद्धावित्ता एव वयासी–भण जाया ! किं देमो, किं पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए ण से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी–इच्छामि ण अम्मयाओ कुत्तियावणाओ रयहरण च पडिग्गह च आणिउ कासवग च सद्दाविउ । णिक्खमण जहा महब्बलस्स ।

तए ण गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराम्रो तिण्णि सयसहस्साइ गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरण पडिग्गह च उवणेह, सयसहस्सेण कासवग सद्दावेह । तए ण ते कोडु बियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराम्रो तिण्णि सयसहस्साइ, तहेव जाव कासवग सद्दावेंति । तए ण से कासवए गयसुकुमालस्य कुमारस्स पिउणा कोडु बियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल0 गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियर जएण विजएण वद्धावेइ, वद्धावित्ता एव वयासी–सदिसतु ण देवाणुप्पिया । ज मए करणिज्ज ? तए ण से गय–सुकुमालस्स पिया त कासवग एव वयासी–तुम देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे णिक्खमणपाम्रोग्गे म्रग्गकेसे कप्पेहि । तए ण से कासवे एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एव सामी ! तहत्ति म्राणाए विणएण वयण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गधोदएण हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए म्रट्ठपडलाए पोत्तीए मुह बधइ, मुह बधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे णिक्खमणपाम्रोग्गे म्रग्गकेसे कप्पेइ ।

तए ण सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हसलक्खणेण पडसाडएण म्रग्गकेसे पडिच्छइ, म्रग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण पक्खालित्ता म्रग्गेहिं वरेहिं, गधेहिं, मल्लेहिं म्रच्चेइ, म्रग्गेहिं वरेहिं गधेहिं, मल्लेहिं म्रच्चित्ता सुद्धे वत्थे बधइ, सुद्धे वत्थे बधित्ता रयणकरडगसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार–वारिधार–सिदुवार–छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइ सुयवियोग–दूसहाइ म्रसूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एव वयासी–एस ण म्रम्ह गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहूसु तिहिसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य म्रपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ ।

तए ण तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्च पि उत्तरावक्कमण

सीहासण रयावेंति, दोच्च पि उत्तरावक्कमण सीहासण रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति सेया0 ण्हावित्ता पम्हल–सुकुमालाए सुरभीए गधकासाईए गायाइ लूहेति, लूहित्ता सरसेण गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिपति अणुलिपित्ता णासाणिस्सासवायवोज्झ, चक्खुहर, वण्ण–फरिसजुत्त, हयलालापेलवाऽइरेग, धवल, कणगखचिततकम्म, महरिह, हसलक्खणपडसाडग परिहिति, परिहित्ता हार पिणद्धेति, पिणद्धित्ता अद्धहार पिणद्धेति, पिणद्धित्ता एव जहा सूरियाभस्स अलकारो तहेव जाव चित्त रयणसकडुक्कड मउड पिणिद्ध ति, किं बहुणा ? गथिम–वेढिम–पूरिम सघाइमेण चउव्विहेण मल्लेण कप्परुक्खग पिव अलकिय–विभूसिय करेंति ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिया कोडुवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखभसयसण्णिविट्ठ, लीलट्ठियसालभजियाग जहा रायप्पसेणइज्जे विमाणवण्णओ, जाव मणिरयणघटियाजालपरिक्खित्त पुरिससहस्सवाहिणि सीय उवट्ठवेह उवट्ठवेत्ता मम एयमाणतिय पच्चप्पिणह । तए ण ते कोडु वियपुरिसा जाव पच्चप्पिणति । तए ण से गयसुकुमाले कुमारे केसालकारेण, वत्थालकारेण, मल्लालकारेण, आभरणालकारेण चउव्विहेण अलकारेण अलकारिए समाणे पडिपुण्णालकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरसि पुरत्थाऽभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हसलक्खण पडसाडग गहाय सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरसि सण्णिसण्णा । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा, रयहरण पडिग्गह च गहाय सीह अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, सीय दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरसि सण्णिसण्णा । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा सगयगय

जाव रूप–जोव्वण-विलासकलिया सु दर–थण0 हिम–रयय–कुमुदकु देदुप्पगास सकोरटमल्लदाम धवल आयवत्त गहाय सलील उवरि धारेमाणी धारेमाणी चिट्ठइ। तए ण तस्स गयसुकुमालस्स उभओ पासि दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारू जाव कलियाओ, णाणामणि–कणग–रयण–विमल–महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त–दडाओ, चिल्लियाओ, सखक–कुन्देन्दुदगरय–अमयमहियफेणपु जसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलील वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठति। तए ण तस्स गयसुकुमालस्स उत्तरपुरत्थिमेण एगा वरतरुणी सिंगारगार जाव कलिया सेय रययामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमहामुहाकिइसमाणभिगार गहाय चिट्ठइ। तए ण तस्स गयसुकुमालस्स दाहिणपुरत्थिमेण एगा वरतरूणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तकणगदड तालवेट गहाय चिट्ठइ।

तए ण तस्स गयसुकुमाल कुमारस्स पिया कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसय, सरित्तय, सरिव्वय, सरिसलावण्ण–रूप–जोव्वण–गुणोववेय, एगाभरण–वसणगहियणिज्जोय कोडु बियवरतरुणसहस्स सद्दावेह। तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसय सरित्तय जाव सद्दावेंति। तए ण ते कोडु बियपुरिसा हट्ठतुट्ठ–ण्हाया, कयवलिकम्मा, कयकोउय–मगल–पायच्छित्ता एगाभरण–वसण–गहिय–णिज्जोया जेणेव गयकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावित्ता एव वयासी–सदिसतु ण देवाणुप्पिया! ज अम्हेहि करणिज्ज। तए ण से गयसुकुमालस्य कुमारस्स पिया त कोडु बियवरतरुणसहस्स पि एव वयासी–तुब्भे ण देवाणुप्पिया! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स सीय परिवहेह। तए ण ते कोडु बियपुरिसा गयसुकुमालस्स जाव पडिसुणेत्ता ण्हाया जाव गहिय–णिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय परिवहति।

तए ण गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीय दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया,

तजहा–सोत्थिय–सिरिवच्छ जाव दप्पणा, तयाणतर च ण पुण्णकलसभिगार जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहती पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया, एव जहा उववाइए तहेव भाणियव्व जाव आलोय च करेमाणा जयजयसद्द च पउजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तयाणतर च ण बहवे उग्गा भोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया।

तए ण से गयसुकुमाल–कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहि हय–गय–रह–पवरजोह–कलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स–कुमारस्स पुरओ मह आसा आसवरा, उभओ पासि णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसगेल्ली। तए ण से गयसुकुमाल–कुमारे अब्भुग्गयभिगारे, परिग्गहियतालियटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरबालवीयणाए, सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेण, तयणतर च बहवे लट्ठिग्गाहा, कु तग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा, तयाणतर च ण अट्ठसय गयाण, अट्ठसय तुरयाण अट्ठसय रहाण, तयाणतर च ण लउड–असि–कोतहत्थाण बहूण पायत्ताणीण पुरओ सपट्ठिय, तयाणतर च ण बहवे राईसर–तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ सपट्ठिया बारवईए नयरीए मज्झमज्झेण जेणेव अरहओ अरिट्ठनेमि तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण तस्स गयसुकुमाल–कुमारस्स बारवईए नयरीए मज्झमज्झेण णिग्गच्छमाणस्स सिघाडग–तिय–चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उवावइए, जाव अभिणदता य अभित्थुणता य एव वयासी–जय जय णदा! धम्मेण जय जय णदा! तवेण, जय जय णदा! भद्द ते अभग्गेहि णाण-दसण-चरित्तमुत्तेहि, अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समण-धम्म, जियविग्घो वि य वसाहि त देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग–दोसमल्ले, तवेण धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठ कम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण

सुक्केण, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडाग च धीर ! तेलोक्करगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तर केवल च णाण, गच्छ य मोक्ख पर पद जिणवरोवदिट्ठेण सिद्धिमग्गेण अकुडिलेण, हता परीसहचमु , अभिभविय गामकटकोवसग्गाण, धम्मे ते अविग्घमत्यु, त्ति कट्टु अभिणदति, य अभिथुणति य ।

तए ण से गयसुकुमाले कुमारे बारवईए नयरीए मज्झ-मज्झेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्सबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसेए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणि सीय ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरूहइ । तए ण त गयसुकुमाल कुमार अम्मापियरो पुरओ काउ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो जाव णमसित्ता एव वयासी-एव खलु भते ! गयसुकुमाले कुमारे अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव किमग ! पुण पासणयाए, से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पके जाए जले सवुड्ढे णोवलिप्पइ पकरएण, णोवलिप्पइ जलरएण, एवामेव गयसुकुमाले कुमारे कामेहि जाए, भोगेहि सवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएण णोवलिप्पइ भोगरएण णोवलिप्पए मित्त-णाइ-णियग-सयण-सबधिपरिजणेण । एस ण देवाणुप्पिया ! ससारभयुव्विग्गे भोए जम्मण-मरणेण देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वतेइ, त एय ण देवाणुप्पियाण अम्हे सीसभिक्ख दलयामो, पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया । सीसभिक्ख ।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमाल कुमार एव वयासी—अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध ! तए ण से गयसुकुमाले—कुमारे अरहया अरिट्ठणेमिणा एव वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो जाव णमसित्ता उत्तर-पुरत्थिम दिसिभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्ला-लकार-ओमुयइ । तए ण सा गयसुकुमाल-कुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरणमल्ला—लकार पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी गयसुकुमाल कुमार एव वयासी—घडियव्व जाया ! जइयव्व जाया ! परिक्कमियव्व जाया ! अस्सि च ण अट्ठे, णो

पमाएयव्व ति कट्टु गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मा-पियरो अरिट्ठणेमि वदति, नमसति, वदित्ता णमसित्ता जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसि पडिगया ।

तए ण से गयसुकुमाले कुमारे सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, करित्ता जेणेव अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भगव अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता जाव नमसित्ता एव वयासी–

आलित्ते ण भते ! लोए, पलित्ते ण भते ! लोए, आलित्त पलित्ते ण भते ! लोए जराए मरणेण य । से जहाणामए केई गाहावई अगारसि झियायमाणसि, जे से तत्थ भडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए, त गहाय आयाए एगत अवक्कमइ एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि एगे आया भडे इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए समए अणुमए बहुमए भडकरडगसमाणे, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, मा ण पिवासा, मा ण चोरा, मा ण वाला, मा ण दसा, मा ण मसगा, मा ण वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायका परीसहोवसग्गा फुसतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खेमाए नीसेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ । त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वाविय, सयमेव मुण्डाविय, सयमेव सेहाविय, सयमेव सिक्खाविय, सयमेव *आयार-गोयर विणयवेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तिय धम्म-*माइक्खिय ।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमाल कुमार सयमेव पव्वावेइ, जाव धम्ममाइक्खइ–एव देवाणुप्पिया ! गतव्व, एव चिट्ठियव्व, एव निसीयव्व, एव तुयट्टियव्व, एव भु जियव्व, एव भासियव्व, एव उट्ठाए उट्ठाय पाणेहि भूएहि जीवेहि सत्तेहि, सजमेण सजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे णो किचि पि पमाइयव्व । तए ण से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स इम एयारुव धम्मिय उवएस सम्म सपडिवज्जइ ।

C— भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार–पासवण–खेल-जल्ल–सिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिंदिए ।।

44–A—वग्घारियपाणी अणिमिसनयणे सुक्कपोग्गल–निरुद्धदिट्ठी ।।

45–A—पत्थिए दुरंत पंत-लक्खणे हीण पुण्णचाउद्दसिए सिरि-हिरि-धिइ कित्ती ।।

B—भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

46–A—विउला कक्खडा पगाढा चंडा रुद्दा दुक्खा ।।

B—विउल कक्खड पगाढ चंड रुद्द दुक्ख ।।

C—निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे ।।

D—बुद्धे मुत्ते अंतयडे परिनिव्वुए सव्वदुक्ख ।।

47–A—फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहपंडुरे पभाए, रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह–गुंजद्धराग बंधुजीवग पारावयचलण नयण परहुयसुरत्तलोयण जासुमिणकुसुम जलियजलण तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर रुवाइरेगरेहन्त सस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए, तस्स दिणकर–परंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे बालातवकुंकुमेण खइएव्व जीवलोए, लोयणविसआणुआसविगसतवि-सददंसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ।

B—कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल–पायच्छित्ते सव्वालंकार ।।

C—आउर भूसिय पिवासिय दुब्बल ।।

48–A—अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता ।।

49–B—भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडियं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए जाव ऐगराइयं महापडिमं ।।

C—गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेण गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पिक्खवइ, पिक्खवित्ता भीए तत्थे

तसिए उव्विग्गे सजाय मए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयसि वेयणा पाउब्भूआ– उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चडा दुक्खा दुरहियासा ।

तए ण से गयसुकुमाले अणगारे तस्स पुरिसस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे त उज्जल जाव दुरहियास वेयण अहियासेइ ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स त उज्जल जाव दुरहियास वेयण अहियासेमाणस्स सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण तदावरणिज्जाण कम्माण खएण कम्मरयविकिरणकर अपुव्वकरण अणुप्पविट्ठस्स अणते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे । तओ पच्छा ।।

50–A— दुरत–पत–लक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसिए सिरि–हिरि–धिइ–कित्ति ।।

B— सूत्र 47 पुरिस जुण्ण से अतोघरसि तक ।।

51–A— पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा ।।

52–A— सूत्र स 45 ।।

53–B—सूत्र स 2 जावपूर्ति D ।।

54–A— जइ ण भत्ते ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स ण भते । अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ।।

B— सूत्र स 6 ।।

C— औपपातिक सूत्र 14 ।।

D— औपपातिक सूत्र 15 ।।

5L–A, B, C, D,– सूत्र स, 2 जावपूर्ति D ।।

57–A— सूत्र स 5 तीसे ण बारवईए से सूत्र स 6 तक ।।

B— सूत्र 6 ।।

C— सूत्र 7 एव सूत्र 9–10 ॥

58–A, B, C, D— सूत्र 2 जावपूर्ति D ॥

E— सूत्र 5–6 ॥

F— सूत्र 6 ॥

G— अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा ॥

H— सूत्र 39 जावपूर्ति B ॥

I— सूत्र 32 ॥

J— देवीए तीसे महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जाम धम्म कहेइ । तजहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण मुसावायाओ वेरमण अदिण्णादाणाओ वेरमण सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥

59–A-B— सूत्र 5 ॥

60–C— चइत्ता सुवण्ण एव धण्ण धण बल वाहण कोस कोट्ठागार पुर अतेउर चइत्ता विउल धण कणग रयण मणि–मोत्तिय–सख–सिल–प्पवाल–सतसार सावएज्ज विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाण दाइयाण ॥

D— भवित्ता अगाराओ अणगारिय ॥

E— रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य ॥

F— अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय ॥

61–A,B,C,D— सूत्र 60 । मे अतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय ॥

62–A— मणसकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टझाणोवगए ॥

63–A— सूत्र 62 जावपूर्ति A ॥

64–A— तिग चउक्क–चच्चर–चउम्मुह–महापहपहेसु हत्थिखध वरगया महया महया सद्देण ॥

B— सूत्र 5 वित्थिण्णा से देवलोयभूया तक ॥

C— भवित्ता अगाराओ अणगारिय ॥

65–A— परिग्गहिय दसणह सिरसावत्त मत्थए अजलि ॥

B- भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

66-A— एव रूप्पकलसाण, सुवण्णरूप्पकलसाण, मणिकलसाण, सुवण्णमणिकलसाण, रूप्पमणिकलसाण, सुवण्णरूपमणिकलसाण, भोमेज्जकलसाण सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेण सव्वसमुदएण सव्वादरेण सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसभमेण सव्वपुप्फगधमल्लालकारेण सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएण महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेण महया समुदएण महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएण सख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइग-दु दुभिघोसरवेण महया महया ।।

B— जीविय ऊसासा हिययाणदजणिया, उबरपुप्फ पिव दुल्लहा सवणयाए ।।

67-A— भासासमिया एसणासमिया आयाण-भड-मत्त-णिक्खेव-णासमिया उच्चारपासवण-खेल-सिघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिया, मणसमिया वइसमिया कायसमिया मणगुत्ता वइगुत्ता कायगुत्ता, गुत्ता गुत्तिदिया ।।

B— मुण्डेभावे केसलोए बभचेरवासे अण्हाणग अच्छत्तय अणुवाहणय भूमिसेज्जाओ फलगसेज्जाओ परघरप्पवेसे लद्धावलद्धाइ माणावमाणाइ परेसि हीलणाओ निंदणाओ खिसणाओ तालणाओ गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा बावीस परीसहोवसग्गा-गामकटगा अहियासिज्जति ।।

68-A— वर्ग 5 सूत्र 64-65 ।

71-A— दित्ते, वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहुधन-बहुजायरूव-रयए, आओगप्पओगसपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिसगवेलगप्पभूए बहुजणस्स ।।

B— चेइए अहापडिरूव उग्गह उगिण्हइ, अहापडिरूव उग्गह उगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे ।।

C— इसी सूत्र मे एव खलु जबू से तहेव विउले सिद्धे तक ।।

72-A— किण्होभासे नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे

णिद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीयच्छाए णिद्धे णिद्धच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए, घण–कडिय–कडिच्छाए रम्मे महामेहे ।।

76–A— पच्छिग्रपिडगाइ गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पुप्फच्चय करेइ, करेत्ता अग्गाइ वराइ पुप्फाइ गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं ।।

77–A— तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह ।।

B— उपरोक्त सूत्र मे तएण से घाएमाणे विहरइ तक ।।

78–A— उवलद्धपुण्णपावे, आसव-सवर-निज्जर-किरियाहिगरणवधमोक्खकुसले, असहेज्जदेवा-सुर-नाग - सुवण्ण-जक्ख रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं णिग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गथे पावयणे निस्सकिए निक्कखिए निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिजपेमाणुरागरत्ते । अयमाउसो ! निग्गथे पावयणे अट्ठे, अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवगुयदुवारे, चियत्ततेउरपरघरदारप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोपवासेहिं चाउद्दस्सट्ठमुद्दिट्ठ पुण्णमासिणिसु पडिपुण्ण–पोसह सम्म अणुपालेमाणे समणे निग्गथे फासुएसणिज्जेण असण-पाण–खाइम साइमेण वत्थ-पडिग्गह-कबल-पायपु छणेण पीढ-फलग-सिज्जा-सथारएण ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे।।

79–B—पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेण विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे ।।

C— तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह ।।

D— एव भासइ, एव पण्णवेइ, एव परूवेइ—"एव खलु देवाणुप्पिया !

समणे भगव महावीरे, आइगरे तित्थयरे सयसबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव सपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जमाणे इहामागए, इह सपत्ते, इह समोसढे इहेव रायगिहे णयरे बाहिं गुणसिलए चेइए अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ। त महप्फल खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाण अरहताण भगवताण णामगोयस्स वि सवणयाए, किमग पुण अभिगमण-वदण णमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आयरिस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए ।।

80-A—दसणह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु ।।

B—सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय ।।

C—मोग्गरपाणिणा जक्खेण अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरतेण कल्लाकल्लि बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे ।।

81-A—पण्णवणाहिं सण्णवणाहिं विण्णवणाहिं परूवणाहिं आघवेत्तए पण्णवेत्तए सण्णवेत्तए विण्णवेत्तए ।।

84-A—नमसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाण मगल देवय चेइय ।।

B—आयाहिण पयाहिण करेता वदइ नमसइ वदिता नमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ । तजहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए काइयाए ताव सकुइयग्गहत्थपाए णच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासइ । वाइयाए ज ज भगव वागरेइ 'एवमेय भते! तहमेय भते! अवितहमेय भते! असदिद्धमेय भते! इच्छियमेय भते! पडिच्छियमेय भते! इच्छिय पडिच्छियमेय भते! से जहेय तुब्भे वदह' अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ माणसियाए महया सवेग जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तो ।।

85-A—पत्तियामि ण भते! निग्गथ पावयण, रोएमि ण भते! निग्गथ पावयण ।।

B—से ण वासीचदणकप्पे समतिणमणि-लेट्ठुकचणे समसुहदुक्खे इहलोग

परलोग अप्पडिबद्धे जीविय-मरण निरवकखे ससार-पारगामी कम्मनिग्घायणट्ठाए एव च ण ।।

C—भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

D—छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणे ।।

E—बीयाए पोरिसीए झाण झियाइ तइयाए पोरिसीए जहा गोयमसामी जाव रायगिहे नयरे उच्च–नीय–मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरिय ।।

86–A—नीय मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

B—हीलेमाणे निंदेमाणे खिसेमाणे गरिहेमाणे तेज्जेज्जमाणे ।।

87–A—तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते गमणागमणाए पडिक्कमेइ पडिक्कमेत्ता एसण–मणेसण आलोएइ आलोएत्ता भत्तपाण ।।

88–A,B,C,D,E,F,G,H,I,J—सूत्र 71 ।।

89–A—पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहसुहेण विहरमाणे जेणामेव पोलासपुरे नयरे सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे ।।

B—भगव गोयमे छट्ठक्खमणपारणयसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, बीयाए पोरिसीए झाण झियायइ तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसभन्ते मुहपोत्तिय पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणाइ वत्थाइ पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणाइ पमज्जइ पमज्जित्ता भायणाइ उग्गहेइ उग्गहित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी ।

इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगसि ।।

C—नीय–मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए । अहासुह देवाणुप्पिया । मा पडिबध ।

तए ण भगव गोयमे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसभते जुगतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरिय सोहेमाणे सोहेमाणे जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरिय ।।

90–A—नीय मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

92–A—नमसइ–सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाण मगल देवय ।।

B—उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते गमणागमणाए पडिक्कमेइ पडिक्कमेत्ता एसणमणेसण आलोएइ आलोएत्ता भत्तपाण ।।

93–A—नायाधम्मकहा 1/1/101 ।।

B—मु डा भवित्ता अगाराओ अणगारिय ।।

C—उवागच्छित्ता अम्मापिऊण पायवडण करेइ करेत्ता एव वयासी–एव खलु अम्मयाओ । मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए "तए ण तस्स अइमुत्तस्स अम्मापियरो एव वयासी-" धण्णो सि तुम जाया । सपुन्नो सि तुम जाया । कयत्थो सि तुम जाया । ज ण तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो दोच्च पि तच्च पि एव वयासी एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते । से वि य ण मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिये मु डे भवित्ता ण अगाराओ अणगारिय ।।

94–A—त चेव ण जाणसि ? ज चेव ण जाणसि ।।

B—तिरिक्ख–जोणिय मणुस्स देवेसु ।।

C—य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा

पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामकाइ चेव अइमुत्त कुमार एव वयासी ।।

97-A—छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं ।।

98-A—अहाअत्थ अहातच्च अहामग्ग अहाकप्प सम्म काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया ।।

99-A—एव खलु एसा रयणावलोए तवोक्कम्मस्स बिइया परिवाडी एगेण सवच्छरेण तिहि मासेहिं वावीसाए य अहोरत्तेहिं जाव ।।

100-A—विउलेण पयत्तेण पग्गहिएण कल्लाणेण सिवेण धण्णेण मगल्लेण सस्सिरीएण उदग्गेण उदत्तेण उत्तमेण उदारेण महाणुभागेण तवोकम्मेण सुक्का लुक्खा निम्मसा अट्ठिचम्मावणद्धा किडिकिडियाभूया किसा ।।

B—उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्द गच्छइ ससद्द चिट्ठइ, एवामेव कालीए वि अज्जा ससद्द गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, उवचिए तवेण अवचिए मस सोणिएण ।।

C—पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा ।।

101-A-B—सूत्र न 7 मे एग खलु जबू से भावेमाणे विहरइ तक+जाव पूर्ति A ।।

C—तेणेव उवागया उवागच्छित्ता एग वयासी ।।

D- पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अत्ताण भूसिता सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव चरिमुस्सासेहिं ।।

102-A—सूत्र न 98 ।।

103-A—सूत्र न 98 ।।

104-A—सूत्र न 98 ।।

105-A-C—दत्ति पडिगाहेइ ।।

B-D-E—सूत्र न 98 ।।

F—सूत्र न 100 ।।

106-A—सूत्र न 98 ।।

108–A—सूत्र न 98 ॥

109–A—सूत्र न 98 ॥

110–A—सूत्र न 98 ॥

B—छट्ठट्ठम–दसम–दुवालसेहि मासद्धमासखमणेहि विविहेहि तवोकम्मेहि अप्पाणं ॥

111–A—तए ण सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अब्भणुणाया समाणी सलेहणा झूसणा–झूसिया भत्तपाण–पडियाइक्खिया ॥

परिशिष्ट 'B'

1 समय (काल विशेष)

(i) काला परमनिरूद्धा अविभज्जो त तु जाण समय तु । (जोतिष्क 8)

(ii) काल पुनर्योगविभागमेति निगद्यतेऽसौ समयो विधिज्ञै । (वराच 27–3)

(iii) अणोरण्वतरव्यतिक्रमकाल समय । चोद्दसरज्जुआगासपदेसकमणमेत्तकालेण जा चोद्दसरज्जुकमणक्खमो परमाणु तस्स एगपरमाणुक्कमणकालो समओ णाम ।
(धव पु 4 318)

2 काल (काल)

(i) कालो परमनिरूद्धो अविभागी त विजाण समआ त्ति । सुहमो अमुत्तिअगुरुगलहुवत्तण-लक्खणो कालो । (ज गो प 13–4)

(ii) वतमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वतमानसमय कालो भव्यते । (प्रव सा ज व 23)

3 चेइय (चैत्य)

(i) चीयत इति चेइय । चितति वा । तत चेतनाभावो वा जायते चेतिय ।
(उ चू पृ 181)

जा / चिति वेदिका स युक्त होता है, वह चत्य है। जो चेतन प्राणियो से आकीर्ण होता है, वह चैत्य है।

4 अज्ज (आय)

(i) गुणैगु णवद्भिर्वा अयन्त इत्यार्या ।
(स सि 3-36, त वा 3 36, 2, रत्न क टी 3 -1, त वृति श्रुत 3 36)

जो गुणा मे युक्त हो, अथवा गुणी जन जिनकी सेवा सुश्रुषा करते ह, उन्हें आय कहते है।

(ii) आराद हेयधर्मेभ्यो याता प्राप्ता उपादेयधर्मैरित्यार्या ।
(प्रज्ञाप मण्डल व 1-37, पृ 55)

5 थेर (स्थविर)

(i) सीदत साधून् स्थिरीकरोतीति स्थविर । (प्रसाटी पृ 24)

जो सयम मे अस्थिर व्यक्ति को स्थिर करता है, वह स्थविर है।

(ii) स्थविरो वृद्ध । (योगशा स्वा विव 4 90)

(iii) धम विषीदता प्रोत्साहक स्थविर । (व्यव भा मलय वृ 34, पृ 13)

धम मे खेद, खिन्न हाने वालो को जो प्रोत्साहित किया करता है, उसे स्थविर कहते है ।

6 समण (श्रमण)

(1) श्राम्यतीति श्रमण । (प्राटी प 402)

जा श्रम / तपस्या करते है, वे श्रमण हैं ।

7 उवासग (उपासक)

(1) उपासति तत्वज्ञानार्थमित्युपासका । (सू चू 2 पृ 367)

जा तत्त्वज्ञान की सप्राप्ति के लिए मुनियो की उपासना करते हैं, वे उपासक । श्रमणापासक ह ।

उवासगदसा (उपासकदशा)

जिस अग मे श्रमणा के उपासक श्रावका के नगर व उद्यान आदि के साथ शीलव्रत गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पापघोपवास के ग्रहण की विधि का विवेचन हा तथा प्रतिमा, उपसग, सलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायापगमन और देवलोकगमन आदि की भी चर्चा की गई हो, उसे उपासकदशा कहते है ।

8 अतगडदसा (अन्तकृद्दशाङ्ग)

अन्तो विनाश , स च कमणस्तत्फल भूतस्य वा ससारस्य, कृतो यैस्तेऽन्तकृतस्ते च तीर्थंकरादयस्तेषा दशा दशाध्ययनानीति तत्सख्यया अन्तकृद्दशा इति ।

जिस अग मे प्रत्येक तीथकर के तीथ मे हाने वाले दश दश अन्तकृत् केवलियो का वणन किया गया हा उसे अन्तकृद्दशाग कहते हैं । जैसे वधमान जिनेन्द्र के तीथ मे । नमि 2 मतग 3 सोमिल 4 रामपुत्र 5 सुदर्शन 6 यमलीक 7 वलीक 8 किष्कम्बल 9 पालम्ब और 10 अष्टपुत्र, इनका वणन इस अग मे किया गया है ।

(नन्दी हरि वृत्ति पृ 104)

9 महावीर

(1) महाणा वीरो महावीरा । (दसचू पृ 73)

(11) महन्त वीरिय यस्स स भवति महावीरो । (आवचू 1 पृ 86)

जिसका वीय / पराक्रम महान् है, वह महावीर है ।

10 जोयण (योजन)

(1) चउकोसेहि जोयण × × × × । (ति प 1—116)

चार कासो का एक याजन होता है ।

11 देवलोग (देव + लोग)

(i) देव—देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तर हेतौ वाह्यविभूतिविशेषै द्वीपाद्रि–समुद्रादिषु यथेष्ट दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवा । (स सि 4—1)

अभ्यन्तर हेतुभूत देवगति नामकम का उदय होने पर जो वाह्य वभव के साथ द्वीप, पवत एव समुद्र आदि प्रदेशो मे इच्छानुसार क्रिडा किया करते हैं, वे देव कहलाते हैं ।

(ii) लोग (लोक) –

अत्थि अणन्ताणन्त आगास तस्या मज्झयारम्मि ।
लोओ अणाइनिहणो तिभेयभिण्णो हवइ णिच्चो । (पउमच 3—18)

जो अनन्तानन्त आकाश के ठीक मध्यभाग मे स्थित होता हुआ अनादि–अनन्त है तथा –अत्र , मध्य और ऊध्व लोक के भेद से तीन प्रकार का है, उसे लोक कहा जाता है ।

12 नदणवण (नदनवन)

णदति जेण वणयर-जोतिस-भवण-वेमाणिया विज्जाहरमणुया य तेण णदण ।
(नचू पृ 5)

जहा व्यतर, ज्योतिष्क, भवनपति, वैमानिक विद्याधर और मनुष्य आनन्द मनाते ह, वह नदन (वन) है।

13 जक्खायतण (जक्ख + आयतण) (यक्षायतन)

(i) जक्ख (यक्ष)—यक्षा श्यामावदाता गम्भीरास्तुन्दिला वृन्दारका प्रियदशना मानोन्मानप्रमाणयुक्ता रक्तपाणि–पादतल–नख–तालु–जिह्वोष्ठा भास्करमुकुट-धरा नानारत्नविभूषणा वटवृक्षध्वजा । (त भा 4 13)

जो वण से श्याम, गम्भीर, तुन्दिल (विशाल उदर वाले) और वृन्दारक (मनोहर) होते हैं, जिनका दशन रुचिकर होता है, जो मान व उन्मान प्रमाण से युक्त होते हैं, जिनके हस्ततल, पादतल, नख, तालु, जीभ एव ओष्ठ लाल होते है, जा चमकत हुए मुकुट के धारक होते है, अनेक रत्नो मे विभूपित होते है तथा वटवृक्ष की ध्वजा मे सहित होते हैं, वे यक्ष कहलाते हैं ।

(ii) आयतण (आयतन)—एत्य तस्मिन् यतति आयतण । (दमचू पृ 101)

जहाँ आकर प्रवत्ति की जाती है, वह आयतन/स्थान है ।

अर्थात् जहाँ यक्ष आकर प्रवृत्ति करते है, वह यक्षायतन है ।

14 वासुदेव

वासवाद्यै सुरै सर्वै योऽच्यते मेरुमस्तके प्राप्तवान् पचकल्याणक वासुदेवस्ततो हि स ॥ (भाप्तस्व 32)

वासव (इन्द्र) आदि सब देवों के द्वारा मेरु के शिखर पर जिसकी पूजा की जाती है तथा जिसने पाच कल्याणका को प्राप्त किया है उसे वासुदेव कहा जाता है ।

15 बलदेव (बल+देव)

(।) बल—द्रविणदान-प्रियभाषणाभ्यामरातिनिवारणेन यद्धि हित स्वामिन सर्वावस्थासु बलते सवृणोतीतिबलम् । (नीतिवा 22—1, पृ 207)

धनदान और प्रियभाषण के द्वारा जो शत्रु का निवारण करते हुए सभी अवस्थाओं मे स्वामी को बल प्रदान करता है—उसका हित करता है—उसका नाम बल है ।

(ii) देव—(i) दीव्यन्तीति देवा । (दटीप 21)

जो दीप्त हैं, वे देव हैं ।

(ii) दीव्यन्ति—क्रीडन्ति देवा । उनाटी पृ 323)

जो क्रीडा करते रहते है वे देव हैं ।

16 जोव्वण (यौवन)

विशरारुनानारागपल्लवोल्लास-विलासोपवन यौवनम् । (गद्यचि पृ 56),

अविनयविहङ्गलीलावन यौवनम् । (गद्यचि पृ 64)

यौवन गिरते हुए अनेक पत्तो के उल्लास-विलास के उपवन के समान है, अथवा वह अविनयरूप पक्षियो के क्रीडावन जैसा है ।

17 धम्मो (धर्म)

धारेति ससारे पडमाणमिति धम्मो । (दमचू पृ 1)

धारेति दुग्गतिमहापडणे पततमिति धम्मो । (दमचू पृ 9)

जो ससार अथवा दुर्गति में पडती हुई आत्मा को धारण करता है / बचाता है, वह धर्म है ।

18 सामाइय (सामायिक)

जीविद-मरणे लाभालाभे सयोग-विप्पयोगे य ।

बधुरि-सुह-दुक्खादिसु समदा सामाइय णाम ॥ (मूला 1-23)

जीवन और मरण, लाभ और अलाभ सयोग और वियोग, शत्रु और मित्र तथा सुख और दु ख इनमे समान-हर्ष-विषाद से रहित-रहना-इसका नाम सामायिक है ।

19 परिणिव्वाण (परिनिर्वाण)

परि-समन्तान्निर्वाण–सकलकमकृतविकार निराकरणत स्वस्थीभवन परिनिर्वाणम् । (स्थाटी प 22)

जो सवथा कम विकार का निराकरण करता है, वह परिनिर्वाण / मोक्ष है ।

20 अ तेउर (अन्त पुर)

(i) राजस्त्रियो का निवास स्थान । (पाइअ सद् महण्णवो पृ 90)

(ii) The female apartments

(Sanskrit English Dic Page 43)

21 मुच्छिय (आसक्त)

- (i) मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्भोववण्ण त्ति एकार्था । (विपाटी पृ 41)

(ii) मूर्च्छा माहवशान्ममेदमहमस्येत्येवमावेशनम । (प्रन ध 4/104)

(iii) उभयप्रकारस्यापि परिग्रहस्य सरक्षणे उपाजने सस्करणे बधनादौ व्यापारो मनाभिलाप मूर्च्छा । (त वति श्रुन 7 17)

इन्द्रिय विषयो मे जो भावत आसक्ति हुआ करती है, उसे मूर्च्छा कहा जाता है ।

22 पव्वइय (प्रव्रजित)

(i) पव्वइए सजमबहुले सवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणव दुक्खक्खवे तवस्सी । (स्था 4/1)

(ii) प्रव्रजित का अथ है–दीक्षित अथवा मुनि । जो मुनि होता है वह सयम, सवर तथा समाधि से युक्त होता ही है । मुनि का शरीर परूप, कठोर और स्निग्धता से शून्य होता है तथा मन भी स्नेह शून्य होता है अत वह रुक्ष कहलाता है अथवा जो कममल का अपनयन करता है वह लूप या रूक्ष है । वह ससार का पार पाने के कारण तारार्थी कहलाता है । मुनि श्रुताध्ययन के साथ तपस्या करता है इसलिए उपधानवान, विभिन्न तपस्याओ मे रत रहने के कारण तपस्वी व कर्मक्षय के लिए उद्यत रहने के कारण दुख क्षपक कहलाता है । (स्थाटी पृ 174)

(iii) प्रकर्षेण व्रजितो गत प्रवजित आरभपरिग्रहादिति गम्यते । (दशवै नि हरि वृ 164)

जो आरम्भ व परिग्रह से अतिशय दूर जा चूका है, सर्वथा उन्हें छोड चुका है, उसे प्रव्रजित कहा जाता है।

(IV) विरतिपरिणाम सकलसावद्ययोगवि निवृति रूप प्रव्रज्या। (पंचव स्वो वृ 164)

23 नियाण (निदान)

(I) भोगाकाङ्क्षातुरस्यानागत विषय प्राप्ति प्रति मन प्रणिधान सकल्पश्चिन्ताप्रबन्ध स्तुरीयमात निदानम्। (स सि 9/33)

विषयसुख की अभिलाषा रूप भोगाकांक्षा से जिसमे या जिसके द्वारा नियमित चित्त दिया जाता है वह निदान कहलाता है।

(II) देविंद-चक्कवट्टित्तणाइगुणरिद्धिपत्थणामइय। अहम णिआणचित्तण-मन्नाणाणुगयमच्चत। (ध्यान श 9)

(III) निदानम्—अवखण्डनं तपसश्चारित्रस्य वा, यदि अस्य तपसो ममास्ति फल ततो जन्मान्तरे चक्रवर्ती स्यामध भरताधिपति महामण्डलिक सुभगो रूपवानित्यादि। (त भा सिद्ध व 7/32)

यदि इस तप या चारित्र का कुछ फल मुझे प्राप्त होने वाला है तो उसके प्रभाव से मैं भवान्तर मे चक्रवर्ती, अर्धचक्री, महामाण्डलिक सुभग, और सुन्दर होऊं, इस प्रकार के विचार से जो अनुष्ठित तप व चारित्र का खण्डन करना है उसका नाम निदान है।

24 वालुयप्पभा (वालुकाप्रभा)

(I) सात नारकियो म से तीसरी नारकी। (ठा 7 पत्र 388)

25 नरए (नरक)

(I) पापकृत प्राणिन आत्यन्तिक दुःख नृणन्ति नयन्तीति नरकाणि। (त वा 2 50, 2, 3)

(II) नरान् प्राणिन कायति पातयति खली करोति इति नरक कर्म। (धव पु 1, पृ 201)

(III) को नरक ? परवशता। (रत्नमा 13)

असातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त हुई शीत व उष्ण आदि की वेदना से जो नरो का शब्द कराते हैं, रूलाते हैं वे नरक कहलाते हैं।

26 जम्बूदीवे (जबू द्वीप)

(I) भूमण्डल के मध्य म जो द्वीप है, वह जम्बूद्वीप है। (लोक प्रकाश सर्ग 15 श्लो 6)

(II) तन्मध्ये मेरुनाभिवृतो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप । (त सू 3–9)

(III) प्रतिनिशिष्टजम्बूवृक्षासाधारणाधिकरणत्वाज्जम्बूद्वीप ।
(त वा 3, 7, 1/त श्लो 3—7)

उत्तरकुरुक्षेत्रो के मध्य मे पृथिवी स्वरूप अनादिनिधन जबूवृक्ष स्थित है। उससे उपलक्षित होन से उसका जम्बूद्वीप नाम पडा ।

27 **केवलि** (केवली)

(I) निरावरणज्ञाना केवलिन । (स सि 6—13)

(II) तव नियम-नाणरूक्ख आरूढो केवली अभियनाणी । (श्रा नि 89)

(III) शेप कमफलापेक्ष शुद्धो दुद्धा निरामय । सवज्ञ सवदर्शी च जिनो भवति केवली ।
(त भा 10 श्लो 6 पृ 319)

(IV) केवलि त्ति भणिदे केवलणाणिणो तित्थयरकम्मुदयविरहिदा घेतव्वा ।
(ध पु 6 पृ 246)

(V) केवलानि सम्पूर्णानि शुद्धानि अनन्तानि वा ज्ञानादीनि यस्स सन्ति स केवली ।
(औपपा अभय वृ 10 पृ 15)

(VI) केवल ज्ञान दशनम् चास्यास्तीति केवली । (प्रज्ञाप मलय व 314 पृ 531)

जो केवल सदृष्य समस्त लोक को जानत व देखते है तथा केवलज्ञान व चारित्र से सम्पन्न हैं, वे केवली कहलाते है ।

28 **पर्याय** (पर्याय)

(I) पर्याय गुणा विशेपा धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (प्रज्ञाटी पृ 179)

(II) पर्याया पयवा पयया धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (विभामहटी 1 पृ 47)

(III) क्रमवर्तिन पर्याया । (श्राव नि हरि व मलय वृ 978)

(IV) परिभेदमेति गच्छतीति पर्याय । (धव पु 1 पृ 84)

इन्दन व शकनादि क्रियारूप भावान्तरो तथा इन्द्र व शक्र आदि सज्ञान्तरो को पयाय कहा जाता है ।

29 **उवट्ठाणसाला** (बाहर का स्थान)

(I) आस्थान-मण्डप या वह स्थान जहा विभिन्न विपया पर चर्चा की जाती है वह सभा स्थान । (णाया 1,1,)
(निर 1 1)

30 **जक्खिणी** (यक्षिणी)

यक्ष योनिक स्त्री या देविया की एक जाति विशेप । (श्राव म)

31 गुत्त (गुप्त)

(i) गुत्ती णाम मणसा असोभणं संकप्पं वज्जयतो वाया य वज्जमेन भासता ।
(दशवै चू 8/280)

मन में उत्पन्न होने वाले दुष्ट संकल्प को छोडकर वचन में केवल आवश्यक कार्य के लिए भाषण करने वाले पुरुष को गुप्त कहते हैं ।

32 बंभ (ब्रह्म)

(i) मेहुणसण्णाविजएण पंचपरियारणापरिच्चाओ । बंभे मणवत्तीए जो सो बंभ सुपरिसुद्ध ।
(वसिष वि 14 पृ 13)

(ii) नव ब्रह्म गुप्तिसनाथमुपस्थसंयमो ब्रह्म । 'भीमो भीमसेन' इति न्यायाद् ब्रह्मचर्यम बृहत्वाद ब्रह्मात्मा तम चरणं ब्रह्मचर्यमात्मारामतेत्यर्थ ।
(योग शा स्वो विव 4 93 पृ 316)

वैक्रियिक और औदारिक शरीर में सम्बंधित जो विषयभोगों की अभिलाषा होती है उसका मन वचन काय व कृत कारित अनुमति से त्याग करना ब्रह्म है ।

33 मासखमण (मासखमण)

(i) लगातार एक मास के उपवास करना । (नाया 1 1 वि पा 2/1)

34 अगाइ (अग)

(i) अङ्गति गच्छति व्याप्नोति त्रिकालगोचराशेषद्रव्य पर्यायानित्यङ्गशब्दनिष्पत्त ।
(धव पु 9 पृ 194)

जो त्रिकाल विषयक समस्त द्रव्य पर्यायों को व्याप्त करता है, वह अंग कहा जाता है । यह अग शब्द का निरुक्त्यर्थ है ।

35 पुप्फा (पुष्प)

(i) पुप्फाणि अ कुसुमाणि अ फुल्लाणि तहेव होति पसवाणि सुमणाणि अ सुहुमाणि अ पुप्फाण होनि एगट्ठा ।
(दशहारी प 17)

35 पलसहस्स (पल परिमाण)

(i) एक भार विशेष वर्तमान तोल के अनुसार लगभग 62½ सेर यानि करीब 57 किलो ।
(मधु मु पृ 112 अन्तगडसूत्र)

36 पच्छिपिडगाइ (वास की छबडी)

(i) पच्छी देशी शब्द है जो छोटी टोकरी के लिए प्रयुक्त होता है । व पिटक शब्द पिटारी का बोधक है । (मधु मु पृ 113 अन्तगड सूत्र)

37 भोग [भोग]

[i] शुभविविपयसुखानुभवो भोग अथवा भक्ष्य-पेय लेहयादिसकृदुपयोगाद् भोग ।
(त भा सिद्ध वृ 2 4)

अभीष्ट विषयजनीत सुख के अनुभव का नाम भोग है ।

38 समणोवासग [श्रमणोपासक]

[i] विशिष्टोपदेशाथ श्रमणानुपासते-सेवन्त इति श्रमणोपासका ।
(सूटी 2 प 79)

39 मार [मार]

[i] खणे खणे मारयतीति मारो । (आचू पृ 108)

[ii] मारण प्राणवियोजनमसि-शक्ति कुन्तादि-भि । (ध्यानश हरि वृ 19)

40 हीलेंति [अनादर]

[i] हीलण् निन्दायाम् । (धातु पृ 264)

[ii] हिलेंति निदेंति खिसति गरिहति परिभवति अवमण्णति । (सू 2/2/11)

41 निदंति [निन्दा करना]

[i] निन्दा का अर्थ है किसी के दोषो का वणन करना । (मत पृ 127)

42 खिसइ [निंदा करता है]

[i] खिसइ निंदति परिभवती । (सूटी 1 पृ 243)

43 गरिहति [गर्हित]

[i] गरहिततिवा अकथ्य ति वा अविवित्त ति वा परिहरणीय ति वा एगट्ठा ।
(आवचू 1 पृ 60)

44 पाण [पान]

[i] पीयते इति पानम् । (आटी प 264)

45 जोगी [योगी]

[i] विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइविरहियो णाणी । धम्मुदेसणकुसलो अणुपेहाभावणाजुदो जोई ।

अवियप्पो ठिद्दो णिम्मोहा णिक्कलकओ णियदो णिम्मलसहावजुत्तो जोई सो होई मुणिराओ । (र सा 100–101)

[ii] कदप्पदप्पदलणो डभविहीणो विमुक्कवावारा उग्गतवदित्तगतो जोई विण्णाय परमत्थो । (भावसार 4)

46 इंदठाणे (इन्द्र का स्थान)

A (i) इद इन्दतीति इन्द्र । (अनुद्वामटी प 236)

(ii) ठाण तिट्ठति तहिं तेण ठाण । (आचू पृ 44)

B (i) इद मस्व सहस्सक्ख-वज्जपाणि-पुन्दग दीणि इदस्स एगटिठयाणि ।
(दशजिचू पृ 10)

(ii) ठाण ठाण त्ति वा भेदा त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ 329)

47 असण (अशन)

(i) आसु खुह समेई असण । (आवनि 1588)
जो भूख का शीघ्र शमन करता है वह अशन है ।

(ii) असिज्जइ खुहितेहि ज तमसण । (दशजिचू पृ 152)
जो भूखे व्यक्तियों द्वारा खाया जाता है वह अशन है ।

48 पाण (पानी)

(i) पाणाणुवग्गह पाण ।
जो प्राणों का पोषण करता है वह पान है । (आवनि 1588)

(ii) पीयत इति पानम् ।
जो पीया जाता है वह पान है । (आटी प 264)

49 खाइम (खादिम)

(i) खे माइ खाइमति ।
जो मुखाकाश में समाता है वह खादिम है । (आवनि 1588)

(ii) खाज्जत इति खातिम ।
जो खाया जाता है वह खादिम है । (आवचू 2 पृ 313)

50 साइम (स्वाद्य)

(i) साएइ गुण तम्हो साई । (आवनि 1588)

(ii) सादयति–विनाशयति स्वकीयगुणान् माधुर्यादीन् स्वाद्यमानमिति स्वादिमम् ।
(प्रसारो प 51)

स्वाद लेते समय जिससे माधुर्य आदि गुण विनष्ट हो जाते हैं वे स्वादिम हैं ।

(iii) स्वाद्यत इति स्वादिमम् ।
जिसका आस्वाद लिया जाता है वह स्वादिम है । (आटी पृ 264)

51 कहा [कथा]

[I] कथ्यत इति कहा ।

जो कही जाती है, वह कथा है । [सूत्र 1 पृ 188]

52 कम्म (कम)

(I) त्रियतीति कम ।

(II) क्रियन्ते मिथ्यात्वादिहेतुभिर्जविनेति कर्माणी । (उपा टीप 641)

जो किया जाय वह कम/बन्धन है ।

(III) कम्म जमणायरि ओवएसिअ सिप्पमन्न हाडभिहिय । किसि-वाणिज्जाइय घडलोहाराइभेअ च । (श्रा नि 928)

जो कृपि व वाणिज्य आदि काय आचार्य से भिन्न व्यक्ति के द्वारा उपदिष्ट हो वह कर्म कहलाता है ।

वोय (वीर्य)

(I) विराजयत्यनेनव इति वीरिय

जिससे जीव दीप्त होता है, वह वीय है ।

(II) वीय वीर्यान्तरायक्षयोपशम-क्षयज खल्वात्मपरिणाम । (आव नि हरि व 1513 पृ 783)

वीर्यान्तराय के क्षयोपशम अथवा क्षय से जो आत्मा का परिणाम उत्पन्न होता है, वह वीय है ।

सवेग (सवेग)

(I) सवेगो मोक्षाभिलाप ।

मोक्ष की अभिलापा का नाम सवेग है । (दशवै नि हरि व 57) (श्रा प्र टी 53)

(II) सवेग परमा प्रीतिधम धमफलेपु च । (म पु 10 157)

55 ताव (ताप)

(I) तापयतीति ताप ।

जो तप्त करता है, वह ताप है । (आटी प 14)

56 सलेहणा (सलेखना)

(I) सलिख्यतेडनया शरीर कपायादीनि सलेखना । आवहाटी 2 पृ 233)

(II) सलिख्यते-कृशीक्रियतेऽनयेति सलेखना । (भ टी प 127)

शरीर और कपाय जिसके द्वारा कुरेदे जाते है, कृश किये जाते हैं–

वह संलेखना है ।

(iii) संलिख्यते शरीरकषायादि यया तपःक्रियया सा संलेखना । (पंचा. व्यो. व. 2)

जिस तपश्चरण के द्वारा शरीर व कषाय आदि को कृश किया जाता है, उसे संलेखना कहते हैं ।

57 आराहणा (आराधना)

(i) उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छ(त्थ)रणं । दंसण-णाण-चरित्त तवाणमाराहणा भणिदा । (भ. आ. 2)

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप के उद्योतन, उद्यापन, निर्वहन, साधन एवं निस्तरण-भावान्तर प्रापण को आराधना कहते हैं ।

(ii) आराधना परिशुद्धप्रव्रज्यालाभलक्षणा । (उप. प. वृ. 466)

58 भिक्खुपडिमा (भिक्षुप्रतिमा)

(i) भिक्खु—भेत्ताऽऽगमोवउत्तो दुविह तवो भेयणं च भेत्तव्वं । अट्ठविहं कम्मखुहं तेण निरूत्तं स भिक्खुत्ति । (दशनि. 342)

जो तपस्या से कर्मों का भेदन करता है, वह भिक्षु है ।

(ii) जं भिक्खमत्तवित्ती तेण व भिक्खू (दनि. 344)

(iii) भिक्खणसीला भिक्खू (निभा. 6275)

जो शुद्ध भिक्षा से जीवन यापन करता है, वह भिक्षु है ।

59 (i) पडिमा

प्रतिमा यावज्जीव नियमस्य स्थिरीकरणं प्रतिज्ञा । (पा. दि. पृ. 51)

ग्रहण किये गये नियम को जीवन पर्यन्त स्थिर रखने की प्रतिज्ञा को प्रतिमा कहते हैं ।

60 दंत (दान्त)

(ii) दान्तः य पापस्य उपरतोऽथवा दान्तोनाम इन्द्रियदमनः नो इन्द्रिय दमो च । (प्र. भा. 10 टी. प. 90)

जो पाप से उपरत है, वह दान्त है ।

या जिसने इन्द्रिय व मन का उपशमन किया है, वह दांत है ।

प्रयुक्त ग्रन्थ संकेत सूची

अत –अ तकृतदशा–अगसुत्ताणि भाग 3, जैन विश्व भारती–लाडनू , सन् 1974

अन ध —अनगार धर्मामृत–प आशाधर, मा दि जैन ग्रन्थमाला समिति–बम्बई, सन् 1919

अनुद्वामटी—अनुयोगद्वार मलयधारीय टीका–श्री केसरबाई ज्ञान मन्दिर–पाटन, सन् 1939

आचू—आचाराग चूर्णि–श्री ऋषभदेव केशरीमल, श्वे सस्था–रतलाम, सन् 1941

आटो—आचाराग टीका–मोतीलाल बनारसी दास , दिल्ली, सन् 1978,

आनि—आचाराग नियु क्ति, दिल्ली, सन् 1978

आवचु 1—आवश्यक चूर्णि 1 श्री ऋषभदेवजी केशरीमल श्वे सस्था रतलाम, सन् 1928

आवनि—आवश्यक नियु क्ति, भेरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, वम्बई, स 2038

आवम – आवश्यक सूत्र मलयगिरी टीका–हस्तलिखित

आप्तस्व—आप्त स्वरूप– मा दि जैन ग्रन्थमाला, वम्बई, वि स 1979

आव–हरि व मल हेम टी —आवश्यक सूत्र–हरिभद्र विरचित वृत्ति पर टीप्पण–ले मल धार गच्छिय हेमचन्द्र सूरी, दे ला जैन पुस्तको फण्ड, सूरत ई , 1920

आवहाटी 2—आवश्यक हरिभद्रीया टीका 2, भेरूलाल कन्हैयालाल काठारी धार्मिक ट्रस्ट, वम्बई, स 2038

उचू –उत्तराध्ययन चूर्णि–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1933

उसाटी—उत्तराध्ययन–शान्त्याचार्य टीका–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1973

औपपा अभय वृ —औपपातिक सूत्र वृत्ति लेखक अभयदेव आगमोदय समिति, वम्बई सन् 1916

गद्य चि —गद्य चिन्तामणि–ले वादिभसिंह सूरी टी एस कुप्पुस्वामी शास्त्री–तजोर सन् 1916

जम दी प —जम्बूद्वीप–पण्णत्ति–सगहो आ पद्मनन्दी जैन सस्कृति रक्षक सघ, शोलापुर वि स 2016

जोतिष्क—जोतिष्करण्डक–ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था रतलाम, सन् 1928

ठा —ठाणाग सूत्र–आगमोदय समिति, वम्बई सन् 1918–20

णाया—णायाधम्मकहा सुत्त–आगमोदय समिति, वम्बई सन् 1919

त भा —तत्वार्थ भाष्य भाग 1, 2, स्वोपज्ञ (उमा स्वाति) देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार वम्बई–वि स 1982-86

त वा —तत्वाथ वार्तिक भाग 1 2, अकलकदेव भारतीय ज्ञानपीठ–काशी सन् 1953 57
त वृत्ति—तत्वाथ वृत्ति श्रुतसागर सूरि–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी सन् 1949
त सू —तत्त्वाथ सूत्र–उमास्वामी–निर्णय सागर प्रेस, सन् 1905
ति प —तिलोयपण्णत्ती (प्रथम भाग) यतिवृषभाचार्य जैन सस्कृति रक्षक सघ-शोलापुर 1943 द्वितीय भाग सन् 1951
त भा सिद्ध वृ —तत्वाथ भाष्य वृत्ति-सिद्धसेन गणि देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई, वि स 1982
त वृत्ति श्रुत —तत्त्वाथ वृत्ति–श्रुतसागर सूरि, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1949
त श्लो —तत्त्वाथ श्लोकवार्तिक–विद्यानन्द आचार्य, निणयसागर प्रेस, बम्बई, सन् 1918
ज्ञा सा —ज्ञानसार-पद्मसिंह मुनि–मा दि जैन ग्रन्थमाला, वि स 1975
दअचू —दशवैकालिक अगस्त्यसिंह स्थविर चूर्णि-प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् 1973
दजिचू—दशवैकालिक जिनदासचूर्णि–श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम, सन् 1933
दटी—दशवैकालिक टीका–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई, प्रयाग 47
दनि—दशवैकालिक नियुक्ति–प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् 1973
दसजिचू —दशवैकालिक जिनदास चूर्णि–श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम सन् 1933
दशवै नि. हरि वृ —दशवैकालिक वृत्ति–हरिभद्र–जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई सन् 1918
दशव चू —दशवैकालिक चूर्णि–जिनदास गणिमहत्तर–ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम सन् 1933
धातु —धातुपारायणम्–श्री शाहीबाग, गिरधर नगर जैन श्व मू सघ, अहमदाबाद सन् 1971
ध्यान श —ध्यान शतक (आव हरि वृत्ति पृ 582, 611) प मेधावी आगमोदय समिति मेहसाना, सन् 1966
नचू—नन्दी चूर्णि—प्राकृत टक्स्ट सोसाइटी, बनारस, सन् 1966
नन्दी सू , नन्दी गा —नन्दी सूत्र-देववाचक गणी आगमोदय समिति, बम्बई सन् 1917
नन्दी हरि वृ —नन्दी सूत्र वृत्ति–हरिभद्र सूरि-ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वे सस्था रतलाम सन् 1928
निर —निरयावलिका (अप्रकाशित)
नीनिवा —नीतिवाक्यामृत–सोमदेव सूरि–मा दि जैन ग्रन्थमाला–बम्बई–वि स 1979
निभा —निशिथ भाष्य–सन्मति ज्ञानपीठ 1982

पउमच —पउमचरिउ-विमल सूरि–जैन ग्रन्थ प्रकाशन सभा–राजनगर–सन् 1914

प्रज्ञाप मलय वृ —प्रज्ञापना वृत्ति–मलयगिरी–आगमोदय समिति–मेहसाना सन् 1918

प्रज्ञाटी —प्रज्ञापना टीका–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1918

प्रसाटी —प्रवचनसारोद्धार टीका–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड-बम्बई-द्वितीय सस्करण, सन् 1981

पच स स्वो वृ —पच सग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति-चन्द्रर्पि महत्तर आगमोदय समिति–बम्बई, सन् 1927

प्रव सा ज वृ —प्रवचनसार वृत्ति–जयसेन परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, वि स 1969

भ आ —भगवती आराधना–शिवकोटी आचाय, बलात्कार जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारजा सन् 1935

भटी—भगवती टीका 1–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1918

भगवती टीका 2– ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम, द्वितीय सस्करण, सन् 1940

म पु —महापुराण भाग 1, 2, जिनसेनाचाय–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1951

मूला —मूलाचार–वट्टकेराचाय–मा दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि स 1977

यतिधर्मवि —यतिधर्मविंशिका–हरिभद्र सूरि मा दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

योगशा स्वो विव —योगशास्त्र विवरण–हेमचन्द्राचाय जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर सन् 1926

रत्नक टी —रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका–प्रभाचन्द्राचाय मा दि जैन ग्रन्थमाला–बम्बई– वि स 1982

लोक प्र —लोक प्रकाश (भाग 1 2,3) विनयविजय गणी देवचन्द लालभाई जैन ग्रन्थ पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई–सन् 1926,28,32

वराग च —वरागचरित्त–जटासिंह नन्दी–मा दि जन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई–वी नि 2465

विपा —विपाकश्रुत–सेठ हरगोविन्द दास, कलकत्ता सव 1976

विपाटी —विपाक टीका–आगमोदय समिति, बम्बई सन् 1920

विभामहेटी— विशेषावश्यक भाष्य मलधारीय टीका—दिव्यदर्शन कार्यालय–अहमदाबाद वि स 2489

व्य भा —व्यवहार भाष्य–वकील केशवलाल प्रमचन्द–अहमदाबाद, सन् 1926

स सि —सर्वार्थसिद्धि–पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी–सन् 1955

सू —सूत्रकृताग अग सुत्ताणि भाग 1, जैन विश्व भारती लाडनू सन् 1974

सूचू 1—सूत्रकृताग चूर्णि प्रथम श्रुतस्कन्ध–प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, सन् 1975

सूचू 2—सूत्रकृताग चूर्णि-द्वितीय श्रुतस्कन्ध-ऋषभदेव केशरीमल श्वे संस्था, रतलाम, सन् 1941
सूटी 1—सूत्रकृताग टीका-प्रथम श्रुतस्कन्ध-आगमोदय समिति, बम्बई, सन 1919
सूटी 2—सूत्रकृताग टीका-द्वितीय श्रुतस्कन्ध-श्री गाडी पार्श्वनाथ जैन ग्रन्थालय, सन् 1953
स्था —स्थानाग-अग सुत्ताणि भाग 1, जन विश्व भारती-लाडनू, सन् 1974
स्थाटी —स्थानाग टीका-सेठ माणेकलाल चूनीलाल, अहमदाबाद, सन् 1937
[*नोट—परिभाषाओ के सकलन मे विशेषत जन लक्षणावली तथा निरुक्त कोश ग्रन्थो का आधार लिया गया है ।*]